UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182843

UNIVERSAL
LIBRARY

ज्ञानपीठ-लोकोदय ग्रन्थमाला-सम्पादक और नियामक
श्री० लक्ष्मीचन्द जैन, एम० ए०

CHECKED 1959

प्रकाशक
मंत्री, भारतीय ज्ञानपीठ
दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस

प्रथम संस्करण
१९५४ ई०
मूल्य तीन रुपये

Checked 1969

मुद्रक
जे० के० शर्मा
इलाहाबाद ला जर्नल प्रेस
इलाहाबाद

ज्ञानपीठ लोकोदय-ग्रंथमाला—हिन्दी ग्रन्थाङ्क—२६

शेर-ओ-सुख़न

[लखनऊ स्कूलके वर्त्तमान शायर]

भाग दूसरा

अर्वाचीन उस्ताद-शायरोंके वर्त्तमान युगीन ख्यातिप्राप्त, प्रतिष्ठित, योग्य उत्तराधिकारी लखनवी शायरोंका जीवन-परिचय एवं कलाम, साहित्यिक विवेचन तथा प्रचीन और वर्त्तमान शायरीकी गतिविधि और परिवर्त्तनका तुलनात्मक अध्ययन

भारतीय ज्ञानपीठ काशी

लखनऊ स्कूलके शायर

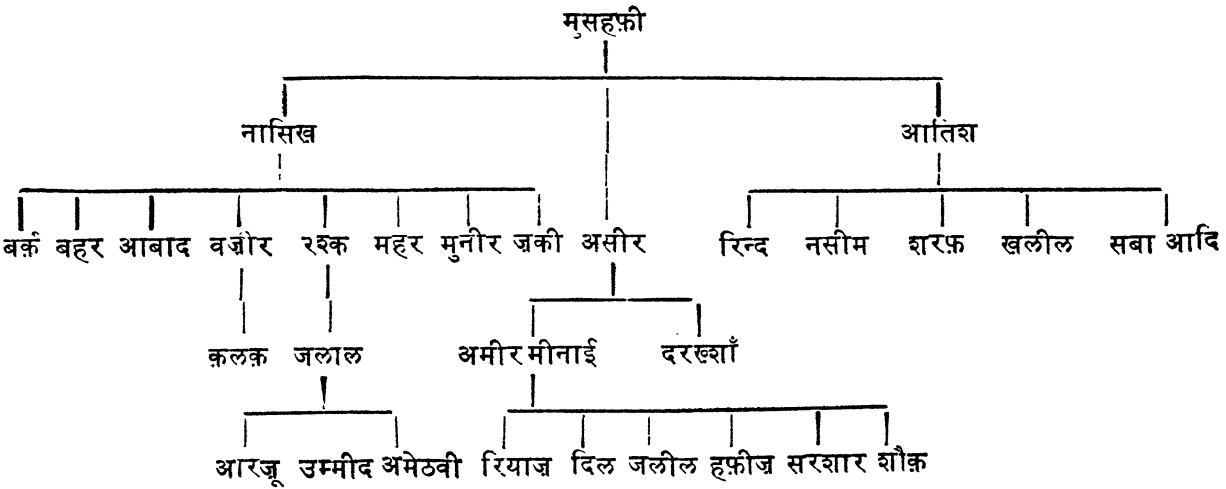

उन्नीसवीं शताब्दीमें हुए जलाल, अमीर मीनाईतकका परिचय शेरोसुख़न प्रथम भागमें दिया जा चुका है। बीसवीं शताब्दीमें ख्याति पाने वाले इनके मुख्य-मुख्य शिष्योंका परिचय प्रस्तुत भागमें मिलेगा।

इन शायरोंके अतिरिक्त—नज़्म तबातबाई, सफ़ी, नज़र, साक़िब, नातिक़, अज़ीज़ और असरका परिचय एवं कलाम भी मिलेगा।

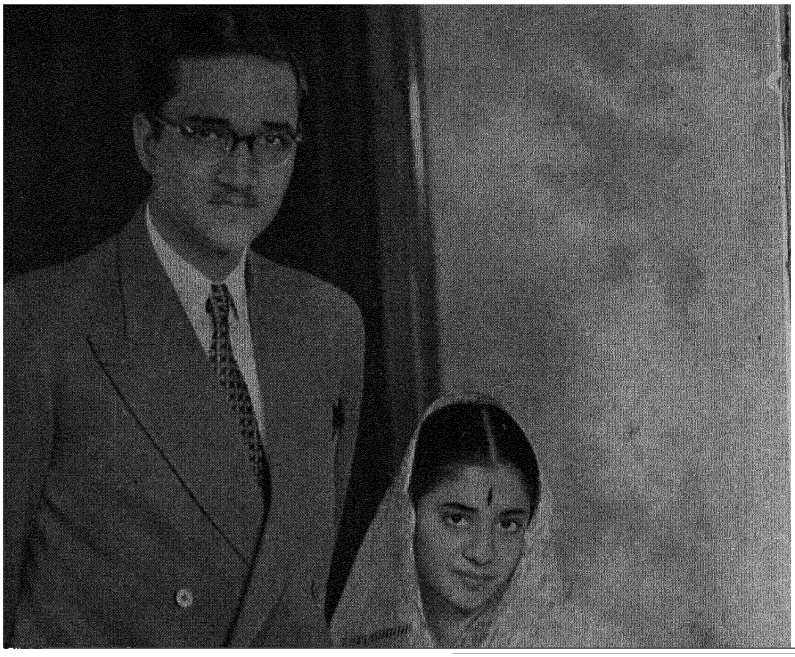

साहू-जैन-कुल-दिवाकर

आयुष्मान् प्राणप्रिय अशोककुमार

और

सौभाग्यवती बहूरानी इन्दु-श्री को

उनके

पाणिग्रहण-संस्कारके परम पुनीत मंगलमय अवसरपर
अनेक शुभ भावनाओं एवं शुभाशीर्वादोंके साथ
उनकी साहित्यिक सुरुचिके सौष्ठव संवर्धनार्थ
मेरी जीवन साधनाके उत्कृष्टतम
शेर-ओ-सुखनके यह २, ३, ४ भाग
उपहार-स्वरूप सस्नेह भेंट

१८ नवम्बर १९५२ ई०]

गोयलीय

विषय-सूची

सिंहावलोकन १७-९६

[प्रारम्भसे ई० स० १९५३ तककी इश्क़िया शायरी]

१. ग़ज़लका अर्थ २१

२. ग़ज़लका उपयुक्त पात्र २२

३. ग़ज़लमें मिश्रण २२

४. इश्क़के भेद २३

५. पाक इश्क़ २९

६. बाज़ारी इश्क़ ३१

७. हबीबका तसव्वुर ३८

८. देहलवी-लखनवी शायरी ४६

९. दाख़िली-ख़ारिजी शायरी ५६

१०. लखनऊकी पुरानी और नई शायरी ६४

११. ग़ज़लकी मुख़ालफ़त ६५

१२. तत्कालीन शायरी ६६

१३. ग़ज़लका कायाकल्प ८९

१४. प्राचीन और नवीन ग़ज़ल ९३

१५. हालीकी राय ९३

१६. ग़ज़लमें खूबियाँ ९४

लखनऊ स्कूलके वर्त्तमानयुगीन शायर

१. नज्म तबातबाई .. ९९
२. सफ़ी लखनवी .. १०२
३. नज़र लखनवी .. १०९
४. साक़िब लखनवी .. ११६
मिर्ज़ाकी शायरी .. ११९
हुस्नो-ओ-इश्क़ .. १२५
हबीबका तसव्वुर .. १२७
मिर्ज़ाकी भाषा .. १२८
मुहावरोंका प्रयोग .. १३०
तुलनात्मक कलाम १३१
चुने हुए अशआर .. १४४
५. आरज़ू लखनवी .. १५८
६. उम्मीद अमेठवी .. १८३
७. रियाज़ ख़ैराबादी .. १८७
मैख़ानये-रियाज़ .. २००
ज़ाहिद-ओ-वाइज़ .. २०९
सौन्दर्य्य-वर्णन .. २१३
माशूक़की हया .. २१४
नज़ाकत .. २१५
शोखियाँ .. २१५
हरजाई माशूक .. २१६
आशिक़की बेअदबियाँ २१८
पाकीज़ा कलाम .. २२१
नीतिपूर्ण .. २२३
गुल-ओ-बुलबुल सम्बन्धी २२३
फुटकर कलाम .. २२५
८. जलील मानिकपुरी .. २३२
९. दिल शाहजहाँपुरी .. २४५
१०. हफ़ीज़ जौनपुरी .. २५२
११. सरशार लखनवी .. २६३
१२. शौक़ रैना .. २६७
१३. नातिक़ लखनवी .. २७३
१४. अज़ीज़ लखनवी .. २७७
१५. असर लखनवी .. २९०
भाषाकी सादगी .. २९१
रंगे-मीर .. २९२
सौन्दर्य्य-वर्णन .. २९३
इश्क़का हमला .. २९७
इश्क़का मर्त्तबा .. २९८
विरह .. ३००
हबीबका रुत्बा .. ३०२
ख़ुदाकी पहचान .. ३२२
मज़हबी दूकानें .. ३०३
ज़ाहिद .. ३०३
हुस्ने-बयान .. ३०४
नैतिक कलाम .. ३०६
प्रेरणात्मक .. ३०६
ये नेता .. ३०७
सम्प्रदायवाद .. ३०७
चुना हुआ कलाम .. ३०९

सूचनायें—

१—शेर-ओ-सुख़नके पहले भागमें प्रारम्भसे १९०० ई० तकके मुख्य-मुख्य ग़ज़लगो शायरोंका परिचय दिया गया था।

२—प्रस्तुत भागमें उनके योग्य उत्तराधिकारी वर्त्तमान ग़ज़लगो उस्तादोंका परिचय और कलाम दिया जा रहा है।

३—मुद्रण शीघ्र हो सके और पाठक सुविधापूर्वक प्राप्त कर सकें, इसलिए ग़ज़लोंके इस खण्डको निम्न तीन भागोंमें विभक्त कर दिया है—

दूसरा भाग—लखनऊ स्कूलके उच्चकोटिके वर्त्तमान युगीन शायर।

तीसरा भाग—देहली-स्कूलके भारतव्यापी सर्वश्रेष्ठ शायर।

चौथा भाग—मिर्ज़ा दाग़के प्रसिद्ध शिष्य और उदीयमान तरुण ग़ज़लगो शायर और शायराएँ।

४—उक्त तीन भागोंमें वर्त्तमान युगीन उन स्वर्गीय और वयोवृद्ध शायरोंका उल्लेख हुआ है, जो १९वीं शताब्दीमें पैदा हुए और बीसवीं शताब्दीके प्रारम्भिक युग १९१५-२० ई० तक ख्यातिके शिखरपर पहुँच गये और मुसल्लिम उल सबूत (प्रामाणिक) उस्ताद समझे गये। जिन्होंने पुराने उस्तादोंकी आँखें देखीं और जिनके हज़ारों शिष्य वर्त्तमान भारत और पाकिस्तानमें मशहूर हैं।

५—इनमेंसे कुछ पुरातन परम्पराके अनुयायी हैं, तो कुछ नवीनताके उपासक, और कुछ ऐसे भी हैं, जिन्होंने प्राचीनता और नवीनताका अत्यन्त कलापूर्ण ढंगसे सम्मिश्रण किया है। ग़रज़ सभी अपने-अपने रंगके माने हुए उस्ताद हैं। इन तीनों भागोंमें हर रंगकी अनुपम गंगा-जमुनी छटा देखनेको मिलेगी।

६—१९१५ ई० तकका काल एक तरहसे पूर्ववर्त्ती शायरोंका अनुकरण युग रहा है। उस समयतक ग़ज़लमें कोई विशेष परिवर्त्तन दृष्टिगोचर नहीं होता। हाँ हाली-ओ-आज़ादके नज़्म-आन्दोलनके शोरके कारण ग़ज़ल कुछ जम्हाइयाँ एवं करवट-सी लेती हुई मालूम होती है। १९१५ ई०के बाद ग़ज़लमें स्पष्टतः जागृतिके चिह्न झलकने लगते हैं। दोनों

महायुद्धोंकी विभीषिकाओं, असहयोग-ख़िलाफ़त, किसान-मज़दूर-आन्दोलनों, साम्प्रदायिक-संघर्षों और स्वराज्य-प्राप्ति एवं भारत-विभाजनके फलस्वरूप जो क्रान्तियाँ हुई, उन सबका ग़ज़लपर भी प्रभाव पड़ा और उसमें उत्तरोत्तर परिवर्त्तन एवं परिवर्धन होते गये। ग़ज़ल अपने प्रारम्भिक कालसे १९५३ ई० तक किस स्थितिसे गुज़रकर कहाँ जा पहुँची है? उसका प्रारम्भमें कैसा रूप था और वर्त्तमानमें कैसा कायाकल्प हुआ है। यह सब तीनों भागोंमें देखनेको मिलेगा। फिर भी हमने पाठकोंकी सुविधाके लिए दूसरे और चौथे भागके सिंहावलोकनोंमें तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करनेका प्रयास किया है।

७—१९वीं शताब्दीके उत्तरार्द्धमें विशेष ख्याति पानेवाले उस्ताद-अमीर, जलाल, तसलीम, दाग़, हाली आदिके हज़ार-हा शिष्योंमें-से हमने केवल चन्द प्रसिद्ध शायरोंका परिचय एवं कलाम दिया है। इससे अधिकका परिचय देना हमारी सामर्थ्य और शक्तिके परे था। बक़ौल मीर—

उम्र थोड़ी है और स्वाँग बहुत

८—ध्यान रहे हमने इन तीनों भागोंमें उन्हीं ग़ज़लगो शायरोंका परिचय दिया है, जो १९वीं शताब्दीमें उत्पन्न हुए और १९२० ई०के पूर्व ही उस्तादीकी मसनदपर आसीन हो गये। १९२० ई०के बाद ख्याति पानेवाले शायरोंका परिचय 'शायरीके नये दौर' और 'शायरीके नये मोड़'में दिया गया है।[1]

९—यद्यपि कई शायर प्रस्तुत तीनों भाग लिखनेसे पूर्व और अधिकांश शायर पुस्तक लिखते-छपते जन्नतनशीं हो गये हैं। फिर भी हमने उनका उल्लेख वर्त्तमान युगीन शायरोंमें किया है, क्योंकि वे सब इसी बीसवीं सदी—दौरेजदीद—के शायर हैं। इसी युगमें वे परवान चढ़े, उस्तादी हैसियत प्राप्त की और फूले-फूले।

१०—प्रस्तुत २, ३, ४ भागोंमें वर्णित ६० शायरोंमें—साक़िब, हसरत, फ़ानी, असग़र, जिगर और सीमाबका परिचय संक्षेपमें शेरो-

---

[1]पृ० ३२३ के बाद इनमें से चन्द शायरोंकी सूची देखी जा सकती है।

शायरीमें दिया जा चुका था। फिर भी ऐतिहासिक क्रमको बनाये रखनेके लिए इनका उल्लेख इन तीन भागोंमें भी किया गया है। इनके बग़ैर इतिहास लँगड़ा-लूला रहता। अतः हमने इनका परिचय और कलाम शेरो-शायरीसे सर्वथा भिन्न और नवीन देनेका प्रयत्न किया है।

११—शायरोंका कलाम उनकी जिन कृतियोंसे चुना गया है, उनका नाम कलामसे पूर्व या बादमें दे दिया गया है। कृतियोंके अतिरिक्त उनका ताज़े-से-ताज़ा कलाम भी देनेका प्रयास किया गया है, और वह जिन पत्र-पत्रिकाओंसे संकलन किया गया है, उनका भी यथास्थान उल्लेख किया गया है। जिन शायरोंके दीवान मुद्रित नहीं हुए, अथवा हमें प्राप्त न हो सके, उनका कलाम हमने जिन तज़करों और पत्रोंके अम्बारोंसे खोजा है; उनके नाम भी कलामके साथ दे दिये हैं। उन सबकी तालिका पृथकसे नहीं दी गई है।

१२—बहुत-से ऐसे शब्द जो अशआ़रमें बार-बार आये हैं, उनका अर्थ फ़ुटनोटमें दो-चार जगह दिया गया है, विस्तार भयसे सर्वत्र नहीं। सुविधाके लिए ऐसे शब्दोंकी तालिका शब्द-कोश शीर्षकसे तीसरे भागके अन्तमें अर्थ सहित दे दी गई है।

१३—अक्सर हर शायरके अन्तमें हमने तारीख़ दी है, ताकि लेखन-कालका पता लग सके। कई जगह बहुत नज़दीकी तारीखें अंकित हैं। उतने वक़्फ़ेमें वह मज़मून लिखा ही नहीं जा सकता। इसकी वजह यही है कि कई-कई मज़मून यथावश्यक और सुविधानुसार लिख लिये गये; परन्तु किसी वजहसे पूर्ण न हो सके और जब पूर्ण हुए तो लगातर होते चले गये और तभी मज़मून-समाप्तिकी तारीख़ डाल दी गई। शायरोंका कलाम पढ़ा कभी गया, उद्धृत कभी किया गया और परिचय आदि सुविधानुसार कभी लिखा गया। कुछ स्थल सुविधानुसार आगे-पीछे लिखे गये हैं और उन्हें बादमें क्रमबद्ध कर दिया गया है। यह तीनों भाग १९४९ ई०में लिखने शुरू किये गये थे और दिन-रातके लगातार परिश्रमके बाद १९५३ ई०में पूर्ण हो सके हैं।

१४—सभी शायरोंके चित्र हमें प्राप्त नहीं हो सके। काफ़ी प्रयत्न करनेके बाद कुछ चित्र संकलित हो सके और वह भी ऐसी स्थितिमें कि उनके हाफ़टोन ब्लाक नहीं बन सके। अतः पहिले उन चित्रोंके शीर्षक चित्र बनाये गये, फिर ब्लाक बने हैं।

१५—शायरोंके कलामके अंतमें जो शेर मुद्रित हैं। उसी भावका उसके नीचे टेलपीस देनेका प्रयत्न किया गया है। ताकि शायरीमें बार-बार प्रयुक्त होने वाले कुछ पारिभाषिक शब्दोंका आभास हो सके। मुहम्मद इस्माइल साहबने जिस लगन और मनोयोगसे समस्त चित्र बनाये हैं, आभार प्रदर्शित करनेसे उस श्रमपर पानी फिर जायगा। अतः चुप रहना ही उचित समझता हूँ।

१६—हज़रत सफ़ी, नज़र, जलील, दिल, नातिक़ (द्वितीय भागमें उल्लिखित) कैफ़ी, साहिर, अन्सारी, आसी, वहशत, अमजद (तृतीय भागमें उल्लिखित) का परिचय एवं कलाम हम अपनी अभिलाषानुसार विस्तारसे नहीं दे सके हैं। क्योंकि किन्हींके दीवान प्रकाशित नहीं हुए तो किन्हींके बाज़ारमें प्राप्य नहीं। हमारे अपने भी सीमित साधन हैं। लिखते हुए भी ५ वर्षसे अधिक हो गये थे। स्वास्थ्य जब धोका देने लगता था, तब भय हो उठता था कि जीवनकालमें छपेंगे भी या नहीं। अतः अधिक प्रतीक्षा न करके जहाँ-जहाँसे जितना भी कलाम मिल सका संकलन करनेका भरसक प्रयत्न किया गया है। पूर्ण परिश्रम करने और पूरी सावधानी रखते हुए अज्ञान जनित न जाने कितनी त्रुटियाँ रही होंगी? मैं स्वयं अपनी कमियों और अल्पज्ञतासे परिचित हूँ। फिर भी पाठक इसे अपनायें तो इसके सिवा और क्या कहा जा सकता है—

"यह फ़क़त आपकी इनायत है।
वरना मैं क्या, मेरी हक़ीक़त क्या?"

डालमियानगर
७ जनवरी १९५४

अ० प्र० गोयलीय

शेर-ओ-सुख़नके

प्रथम भागका

स्वागत

श्री० राहुल सांकृत्यायन—

"शेर-ओ-सुख़नको पाकर और पढ़कर बड़ी प्रसन्नता हुई। उर्दूके महान् कवियोंका हिन्दीवालोंसे परिचय करानेका जो महत्वपूर्ण कार्य आप कर रहे हैं, वह सदा स्मरणीय रहेगा। यह जानकर और भी प्रसन्नता हुई कि आप उर्दू-काव्य-वांगमयको कितने ही और भागोंमें ला देना चाहते हैं।"

श्री० दिनकर—

"जो सामग्रियाँ वे हिन्दीमें पहुँचा रहे हैं, वे क़ीमती तो हैं ही, किन्तु मैं तो उनकी भाषा-शैलीपर मुग्ध हूँ। लम्बे-लम्बे समासोंको वन्दनवारमें झूलनेवाली जड़ाऊ शैलीके युगमें वे एक ऐसी भाषा लिख रहे हैं, जिसमें जड़ाऊपन तो नामको भी नहीं है, किन्तु जो फिर भी काफ़ी रँगीली और चटकदार है। यह उस शैलीका विकास है, जो प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, बालमुकुन्द गुप्त, पद्मसिंह शर्मा आदि कुशल लेखकोंद्वारा सँवारी गई थी।.....उनकी भाषामें जो प्रवाह है, विशेषतः जिस भाषाका उदाहरण उनके 'गहरे पानी पैठ' में मिलता है, उसका प्रचलन हिन्दीमें होना अत्यन्त आवश्यक है।"

आल इण्डिया रेडियो दिल्ली—

"हिन्दीमें इतने विस्तारसे उर्दू-काव्यकी परम्पराको पहली बार उपस्थित किया गया है।.....उर्दू-शायरीसे परिचय पाना हिन्दी-प्रेमियोंके लिए निहायत ज़रूरी है। श्री गोयलीयजीका यह प्रयत्न प्रशंसनीय है।"

आकाशवाणी, नागपुर—

"इस ग्रंथका संकलन और सम्पादन कोई मामूली बात नहीं है। इसमें कड़ी मेहनत, बड़ी हिम्मत, और तासीरे-उलफ़तकी ज़रूरत है। अध्ययन और अनुशीलनमें अडिग धैर्य चाहिए। किसी भी भाषाकी रस भरी सामग्रीके संचयनमें वर्षोंकी छानबीन और अथक मेहनत करनेके बाद सफलता मिलती है। इस सफलताके लिए अयोध्याप्रसादजी बधाईके पात्र हैं।"

LEADER, ALLAHABAD.

This book is the first in a series of its kind, in not only unfolding before the Hindi reading people the pleasure of Urdu poetry but also in presenting an entirely new and original treatise on the origin and development of Urdu language and literature.....

The author has very ably dealt with the two opposite trends those of Delhi and Lucknow. His treatment of Ghalib and Meer is scholastic and he has done more justice to Zauq than is generally done to him. His treatise on the development of

Urdu language and literature is very enlightening. He has also brought to light some of the very early Urdu poets that were hither to unknown.....

कल्पना, हैदराबाद—

"उर्दू-साहित्यपर हिन्दीमें कुछ पुस्तकें पहले भी निकल चुकी हैं, किन्तु उनमें-से कोई भी इतनी विस्तृत और विवेचन-पूर्ण नहीं हैं। शेरो-सुखनके लेखक उर्दू-कविताके मर्मज्ञ हैं और उन्होंने यह पुस्तक लिखी भी अत्यन्त परिश्रमसे है। विवेच्य विषयके सम्बन्धमें सभी ज्ञातव्य बातोंपर प्रकाश डाला गया है। पाठक इस पुस्तककी सहायतासे उर्दू-कविताके गुण-दोषोंसे, उसके ह्रास-विकासकी कथासे और उसके निर्माताओंके व्यक्तित्वसे सुपरिचित हो सकता है।.....काव्य-रसिक और साहित्यके विद्यार्थी दोनोंके लिए इसकी उपादेयता असन्दिग्ध है।"

हुँकार, पटना—

"श्री गोयलीयजीने इस पुस्तकको लिखकर एक बहुत बड़े अभावकी पूर्त्ति की है।.....इतनी सुन्दर एवं सफल कृतिके लिए लेखक धन्य-वादके पात्र हैं।"

अर्जुन, दिल्ली—

"इस विषयकी इतनी एकत्र सामग्री अन्यत्र मिलनी दुर्लभ है। लेखक हिन्दीमें संस्कृत शब्द ठूँसनेकी अनुदार मनोवृत्तिका विरोधी है, और मुहब्बत-की बोलीका पक्षपाती है। उसने अपने मन्तव्यके अनुसार ही भाषाका प्रयोग किया है और निस्सन्देह वह उसमें कुशल है। लेखकके गहन अध्य-यनका परिचय पुस्तकके पढ़नेसे ही लग सकता है।"

नवभारत टाइम्स, बम्बई—

"....शेरो-शायरीके बाद उर्दू-साहित्यसे हिन्दी जगतको अधिकार-

पूर्ण परिचय करानेका श्री गोयलीयजीका यह दूसरा एवं शक्तिशाली प्रयत्न है। उर्दू-शायरोंने जिन चमत्कारपूर्ण शेरोंका निर्माण किया है, वे संभवतः पहली बार इस ग्रन्थ द्वारा हिन्दीमें आ सके हैं।.....भारतीय ज्ञानपीठ काशीके प्रत्येक प्रयोग हिन्दी-इतिहासमें मीलके पत्थर रहेंगे। हिन्दीके माप-दण्डके प्रतीक।"

योगी, पटना—

"लेखकने उर्दू-काव्य-साहित्यका गहरा अध्ययन किया है और ये ग्रन्थ अनेक वर्षोंकी मेहनतके फल हैं।"

नई धारा, पटना—

"गोयलीयजीने समालोचनाके सिलसिलेमें जिस निरपेक्षता और स्पष्टताका निर्वाह किया है, वह अनुकरणीय है। कोई भी शायर उनकी सहानुभूतिसे वंचित नहीं और किसीके गुण-दोष उनकी नज़रोंसे ओझल नहीं।.....वे सामाजिक परिस्थितिका व्यक्तिके जीवनपर घात-प्रतिघातका ऐसा यथार्थवादी चित्रण प्रस्तुत करते है कि शायरोंकी आन्तरिक प्रवृत्तियाँ बिलकुल स्पष्ट हो उठती हैं और उनकी कृतियोंके प्रति पाठक पूरा न्याय कर सकता है।"

विश्ववाणी, इलाहाबाद—

"श्री गोयलीयजीने इसके सम्पादनमें अथक परिश्रम किया है।.... पूरे ग्रन्थको पढ़नेसे उर्दू-कविताकी प्रगतिकी तसवीर हमारी आँखोंके सामने आ जाती है।"

लोकमान्य—

"ग्रन्थमें उर्दूके दार्शनिक महाकवियोंकी सूक्तियाँ है, जिनका प्रभाव मनुष्यपर मंत्रकी तरह होता है।"

राष्ट्र भारती, वर्द्धा—

"सामग्री सजानेमें, उसे संकलित करनेमें, समन्वय और साहित्यिक तत्त्वान्वेषणका रूप देनेमें जो रात-दिनकी मेहनत की गई है, वह पुस्तकके हर सफ़ेसे झलक रही है।"

नव भारत टाइम्स, दिल्ली—

"शेर-ओ-सुख़न उर्दू-शायरीका महत्वपूर्ण ग्रन्थ हिन्दी-साहित्यमें एक नई दिशाका प्रतीक बन गया है। भारतीय ज्ञानपीठ इस प्रकारका साहित्य प्रकाशन करनेके लिए और श्री गोयलीयजी ऐसे अनूठे ग्रंथरत्न देनेके लिए वधाईके पात्र हैं।"

लोकवाणी, जयपुर—

"श्री गोयलीय उर्दू कविताके इतने सुन्दर और विशद परिचय-ग्रन्थके सम्पादन और प्रकाशनके लिए निश्चय ही हिन्दी संसारके धन्यवादके पात्र हैं।"

नया जीवन, सहारनपुर—

शेरो शायरीके बाद शेरो-सुख़न; यानी उर्दू-काव्य-साहित्यका सैम्पुल बॉक्स देनेके बाद अब उसका पूरा इतिहास—यह उसका प्रथम भाग है। पूरी पुस्तक छः भागोंमें पूरी होगी और हमारे गोयलीयजीकी उम्र हो १२५ साल, पर इस ग्रन्थके पूरा होते ही वे मृत्युसे निश्चित हो जायेंगे—हिन्दीके मृत्युंजय लेखक!

अंग्रेज़ी भाषाकी यह ख़ूबी है कि उसके माध्यमसे हम विश्वसाहित्यका अध्ययन कर सकते हैं। यह पुस्तक लिखकर गोयलीयजी हिन्दीको वही रूप देनेमें अपना हिस्सा अदा कर रहे है।

दुनिया यदि अपने ही रास्ते जा रही है तो ऐसा लगता है कि अगले

२५ वर्षोंमें भारतमें यह उर्दू-लिखावट विशेषज्ञोंतक ही सीमित रह जायेगी। पर उर्दू-साहित्य अमर है और यह पुस्तक उन दिनोंमें इस साहित्यका एक प्रतिनिधि ग्रन्थ माना जायगा। विषयकी दृष्टिसे यह इतिहास है, संकलनकी दृष्टिसे यह काव्य है, पर दोनोंको गोयलीयजीने इस तरह पेश किया है कि वह एक सजीव गद्य काव्य हो उठा है। इतिहासको सजीव साहित्यिक रूप देनेमें अभी तक श्री इन्द्र विद्यावाचस्पतिके साथ गोयलीयजी ही हिन्दीके 'जीवित मास्टर पीस हैं।'

लेखनकी तरह यह पुस्तक प्रकाशनकी दृष्टिसे भी उच्चकोटिकी है। इसप्रकारसे पढ़नेमें भीतर चमक आती है तो रखनेमें आलमारी खिल उठती है।

जीवन-साहित्य, दिल्ली—

इतिहास-ग्रन्थमें जिस सूक्ष्म और तटस्थ वृत्तिकी आवश्यकता होती है, शेर-ओ-सुख़नमें वह मौजूद है।"

हिन्दी, जगत—

"यह पुस्तक अपने ढंगकी अकेली पुस्तक है।.....आठ सौ पृष्ठोंकी ठोस सामग्री एकत्र करनेमें गोयलीयजीने काफ़ी मेहनत की है।..... थोड़ेमें गोयलीयजीने उर्दू-शायरीके विकासका बहुत सुन्दर परिचय दिया है। पुस्तकमें गोयलीयजीने शायरों और उनकी शायरीका आलोचनात्मक ढंगसे मूल्यांकन किया है, लेकिन मूल्यांकन करते समय वे कहीं भी भावनामें नहीं बहे हैं। सदैव प्रत्येक शायरका मूल्य उनके प्रतिद्वंद्वियों और प्रशंसकोंकी दृष्टिमें क्या था, इसका ध्यान रखा है और दोनोंके दृष्टिकोणका समावेश किया है।"

प्रदीप, शिमला—

"शेर-ओ-सुख़नकी ख़ूबियाँ कहाँ तक बयान की जायें? सच तो यह

है कि गोयलीयजीने जितनी मेहनत की है, उसका हक़ अदा करना इन थोड़े-से शब्दोंमें असम्भव है।"

नया हिन्द, इलाहाबाद—

"किताबके लाभके बारेमें जो कुछ भी कहा जाय कम है। इस किताबको हर आदमीको पढ़ना चाहिए, जो उर्दू-साहित्यकी एक प्रणालीके बारेमें एक ही किताब पढ़कर बहुत कुछ जानना चाहता है। मन बहलावके लिए तो यह ज़बरदस्त साधन है।"

आर्यावर्त, पटना—

"हिन्दीमें ऐसी पुस्तककी बड़ी कमी थी। गोयलीयजीने इसकी पूर्ति करके हिन्दी-जगतका बहुत बड़ा उपकार किया है।"

जय हिन्द, जबलपुर—

"गोयलीयजी साहबने उर्दूकी इश्क़िया शायरीको जिस ख़ूबीसे क्रमबद्ध किया है, उसकी जितनी भी तारीफ़ की जाय थोड़ी है। ग़ज़लके सभी उस्तादोंके दीवान पढ़कर उनकी आलादर्जेकी चीज़ोंको छाँटकर सजाना, हर एक शायरके विचार, प्रवाहके हर मोड़ और हर दिशाका नक़्शा बनाना और इन सबको मिलाकर एक इतिहासके रूपमें प्रस्तुत करना कितनी साधना और बारीकीका काम है?

शेरो-शायरी और शेरो सुख़नके लिए हम गोयलीय साहबको धन्यवाद इस लिए भी देना चाहते हैं कि उनका यह कार्य केवल साहित्यिक ही नहीं, बल्कि सांस्कृतिक भी है। वस्तुतः गोयलीयजीकी साधनाको हम इसी दृष्टि-कोणसे देखना अधिक पसन्द कर रहे हैं। हिन्दी और उर्दूको दो भिन्न संस्कृतियोंका प्रतीक माना जाता है। साम्प्रदायिक तनावकी अग्निको प्रज्वलित करनेमें हिन्दी-उर्दू विवादका भी अच्छा ख़ासा हाथ रहा है। लेकिन इस कथित सांस्कृतिक विभिन्नता की हक़ीक़त क्या है, इस सवालका

जवाब केवल उर्दू जाननेवाला नहीं दे सकता। इसीलिए हम कहते हैं गोयलीयजीकी साधनाका सांस्कृतिक महत्व सर्वोपरि है।"

सरिता, दिल्ली—

"हिन्दी पाठकोंके लिए यह एक अनूठी ही चीज़ है।"

नया समाज, कलकत्ता—

"पुस्तकका सम्पादन बड़े परिश्रमसे और योग्यता पूर्वक किया गया है। ऐसे महत्वपूर्ण ग्रन्थ-रत्नसे राष्ट्र-भारतीका भाण्डार भरनेके लिए लेखक और सम्पादक बधाईके पात्र हैं। पुस्तक हर पुस्तकालयमें रखने योग्य है।"

आजकल उर्दू-दिल्ली—

"इस किताबको क़बूलेआमकी सनद मिल चुकी है। हिन्दी और उर्दूकी यह मुश्तरका खिदमत अहले ज़ौक़से दाद पाये बग़ैर नहीं रह सकती।.... हिन्दी और उर्दूके मसलेपर बेफ़ायदा बहस करनेवालोंके लिए यह किताब एक पैग़ामे-अमल है। इस क़ाबिल क़दर कारनामेके लिए हम गोयलीयजीको मुबारकबाद पेश करते हैं।"

शायर, बम्बई—

'गोयलीय' साहब हिन्दीके बहुत बड़े आलिम मुहक्क़क और अदीब हैं।.. आपने बड़ी हिम्मत, जुरअत, शग़फ़ और इनहमाकके साथ एक बड़ा काम किया है कि हिन्दीमें इतना ज़खीम और मुफ़स्सिल तज़करा शाया कर दिया। शेरो-सुखन एक अहम और कारआमद किताब है।"

———

सिंहावलोकन

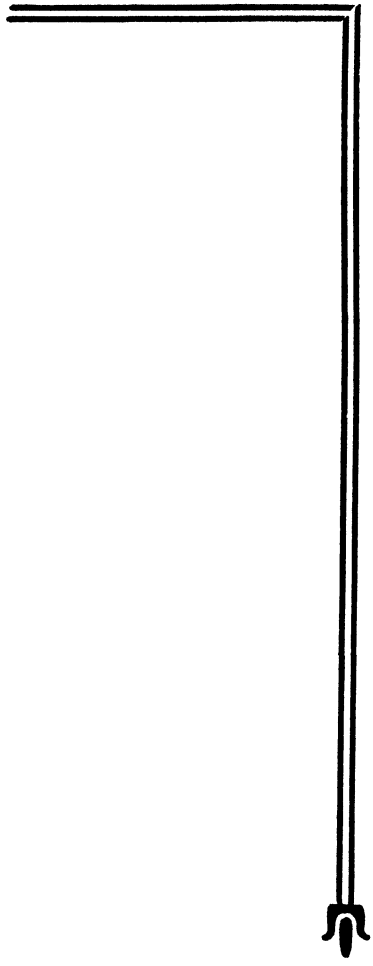

[प्रारम्भसे ई० स० १९५३ तककी इश्क़िया शायरी]

उर्दू-शायरीके आदि कवि 'वली' दक्खनी (१६६८—१७४४ ई०) से लेकर वर्त्तमानकालीन 'मजाज़' लखनवी तक केवल इश्क़ ही ग़ज़लका प्रधान और मुख्य विषय रहा है। मानवमेंसे आत्मा निकलनेपर पुद्गल तो शेष बचता है, परन्तु ग़ज़लमेंसे इश्क़ निकाल दिया जाय तो कुछ भी बाक़ी नहीं रहता। इश्क़ ही ग़ज़लकी आत्मा एवं जिस्म है। ग़ज़ल-गो-शायरोंके अतिरिक्त नज़्म-गीत-गो-शायरों, यहाँ तक कि प्रगतिशील नवयुवक शायरोंका भी इश्क़ एक दिलचस्प और खास मौज़ूँ रहा है।

ऐ 'वली' ! रहनेको दुनियामें मक़ामे-आशिक़[1]।
कूचये-ज़ुल्फ़[2] है या गोशये-तनहाई[3] है॥

—वली

वोह अजब घड़ी थी कि जिस घड़ी लिया दर्स नुस्ख़ये-इश्क़का[4]।
कि किताब अक़्लकी ताक़पर[5] ज्यूँ धरी थी त्यूँ ही धरी रही॥

—सिराज

इश्क़-ही-इश्क़ है जहाँ देखो।
सारे आलममें फिर रहा है इश्क़॥
इश्क़ माशूक़, इश्क़ आशिक़ है।
यानी अपना ही मुब्तला[6] है इश्क़॥
कौन मक़सदको[7] इश्क़ बिन पहुंचा ?
आरज़ू इश्क़, मुद्दआ[8] है इश्क़॥

---

[1]प्रेमियोंके रहने योग्य स्थान; [2]प्रेयसीकी लटें अर्थात् प्रेयसीका कूचा; [3]एकान्त स्थान; [4]प्रेमपाठ; [5]आलेपर; [6]आशिक़; [7]लक्ष्यको; [8]अभिप्राय।

इश्क़ है तर्ज़े-तूर इश्क़के तईं।
कहीं बन्दा कहीं ख़ुदा है इश्क़[1] ॥
—मीर

इश्क़से तबीयतने ज़ीस्तका मज़ा पाया।
दर्दको दवा पाई, दर्द बे दवा पाया[2] ॥
—ग़ालिब

कोई समझे तो एक बात कहूँ।
इश्क़ तौफ़ीक़[3] है, गुनाह नहीं ॥
—फ़िराक़ गोरखपुरी

मक़ामे-इश्क़को हर आदमी 'सीमाब' क्या समझे ?
यह है इक मर्तबा जो मावराये-आदमीयत[4] है ॥
—सीमाब अकबराबादी

मुहब्बतका इस पीरसे दर्स लो।
ख़सो-ख़ारसे[5] भी मुहब्बत करो ॥
मुहब्बतके दुनियामें गुंचे खिलाओ।
शरारे बुझा दो, सितारे उगाओ ॥

---

[1]ख़ुदा मुहब्बत है और मुहब्बत ख़ुदा है—इंजील।

[2]प्रेम-रहित जीवन निरर्थक है। प्रेम ही मनुष्यमें जीवन डालता है। 'ग़ालिब' फ़र्माते हैं—इश्क़की वजहसे हमको ज़ीस्त (ज़िन्दगी)का मज़ा आया। बग़ैर इश्क़ तो यह ज़िन्दगी दर्द (दूभर) थी। इश्क़ इस दर्दकी दवा बन गया। लेकिन मलाल इतना है कि इश्क़की कोई दवा नहीं, यह स्वयं एक असाध्य रोग है। [3]योग्यता; ईश्वरकी देन; [4]मनुष्यतासे भी बढ़कर। [5]घास-काण्टोंसे;

न हिन्दू, न गबरू,[1] मुसलमाँ बनो।
अगर आदमी हो तो इन्साँ बनो॥
नहीं तो हलाकतमें ढल जाओगे।
ख़ुद अपने जहन्नुममें जल जाओगे॥

—जोश मलीहाबादी

इश्क़का ज़ौक़े-नज़ारा[2] मुफ़्तमें बदनाम है।
हुस्न ख़ुद बेताब है, जलवा दिखानेके लिए॥

—मजाज़

इश्क़ ही ग़ज़लका प्राण, मन और शरीर सब कुछ होनेका कारण यह है कि ग़ज़लके शाब्दिक अर्थ ही इश्क़िया अशआ़र कहने और औरतोंकी बातें करनेके हैं। ग़ज़ल यूँ तो अरबी-भाषाका शब्द है, मगर ईरानियोंने इसे विशेष तौरपर अपनाया है। वहाँ हज़ार वर्षसे ज़्यादा ग़ज़लका दौर-दौरा रहा। 'रूदकी' जो कि ९१० ई०के लगभग जन्नतनशीं हुआ, ग़ज़लका बड़ा उस्ताद था। फ़ारसी-पुस्तकोंमें गज़लकी परिभाषा इस प्रकार की गई है—

ग़ज़लका अर्थ

सुख़न अज़ ज़ानान (या अज़ माशूक़) गुफ़्तन

जिसका सही अर्थ है—"औरतोंकी बातें करना, यानी औरतोंका ज़िक्र करना।" लेकिन प्रारम्भमें किसी लेखकने 'अज़' शब्दके भ्रममें पड़कर ग़ज़लका अर्थ—'औरतोंसे बातें करना' लिख दिया और बादके लिखनेवाले उसी भूलको दोहराते रहे[3]। यदि 'औरतोंसे बातें करना' कहना अभीष्ट होता तो—सुख़न-बा-ज़नान कहते न कि अज़ ज़नान।[4]

---

[1]अग्नि पूजक; [2]देखनेकी उत्सुकता। [3]उर्दू-कोषमें भी यह ग़लती होनेके कारण हमने स्वयं पहले भागमें यह भूल दोहराई थी।
[4]प्रो० मसूद हसन रिज़वी—निगार फ़रवरी १९४६ पृ० ४५।

अतः ग़ज़लका अर्थ हुआ—औरतोंका ज़िक्र करना, उनके इश्क़का दम भरना और उनकी मुहब्बतमें मरना।

ग़ज़लका उपयुक्त पात्र

माँ-बाप, भाई-बहन, पत्नी-सन्तान, और इष्ट-मित्रोंसे भी मुहब्बत होती है; परन्तु इस मुहब्बतमें और ग़ज़लके इश्क़ो-मुहब्बतमें बहुत बड़ा अन्तर है। जिस व्यक्तिके देखने-सुननेसे काम-वासना उदित हो; उसके सम्बन्धमें अपने मनोभावोंको, जिस कवितामें प्रकट किया जाय, केवल उसी कविताको ग़ज़ल कहते हैं। ईश्वर-भक्ति, देश-प्रेम, कौटुम्बिक स्नेह, आध्यात्मिक या दार्शनिक विचार, प्राकृतिक वर्णन, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक-स्थिति आदिका वर्णन ग़ज़लका विषय नहीं।[1]

काम-वासना सम्बन्धी चाहे जैसे विचार, चाहे जैसी भाषामें, चाहे जिस ढंगसे व्यक्त कर देनेसे ग़ज़ल नहीं बनती। ग़ज़लका अपना छन्द-शास्त्र और व्याकरण है। अपनी ख़ास ज़बान, तर्ज़े-अदा और लबोलहजा है। उसका अपना सीमित और विशेष क्षेत्र है। अत्यन्त कोमल और रसभरी भावनाओंसे उसका निर्माण होता है।

ग़ज़लमें मिश्रण

वर्त्तमान युगीन ग़ज़लमें तो सभी तरहका मिश्रण पाया जाता है, अब वोह सिर्फ़ इश्क़िया शायरी तक ही सीमित नहीं रही। उसका क्षेत्र व्यापक हो गया है। धार्मिक, आध्यात्मिक, दार्शनिक, राजनैतिक, आर्थिक आदि सभी भावोंका उसमें समावेश हो गया है और वह हर समयोपयोगी विचारोंको ग्रहण करनेकी क्षमता रखती है। लेकिन सबसे पहले ग़ज़लमें तसव्वुफ़ (ईश्वरीय भावों) और फ़लसफ़े (दार्शनिक विचारों)का मिश्रण हुआ। इन मिश्रण करनेवालोंमें दो प्रकारके शायर थे।

एक वोह जो दिलमें इश्क़की आग रखते थे और उसे व्यक्त करनेवाला

---

[1]विशेष जानकारीके लिए देखें शेरोसुख़न पहला भाग पृ० २३५-७४।

मस्तिष्क और हृदय भी। मगर उस आगको ज़ाहिर कर सकनेका हौसला उनके पास नहीं था। सामाजिक बन्धनोंसे संघर्ष करने, पारिवारिक मर्यादाओंको तोड़कर कूचये-इश्क़में क़दम रखने और मैख़ानेकी तरफ़ मुँह करनेका उनमें साहस नहीं था, और न उनमें इतनी सामर्थ्य थी कि वे अपने इश्क़को सीता-राम, राधा-कृष्ण, सत्यवान-सावित्री, नल-दमयन्ती, पृथ्वीराज-संयोगिता—जैसा पवित्र प्रेम बना सकते। वे किसीकी चितवनसे घायल होकर अपने घावोंपर कल्पित ईश्वररूपी प्रेयसीकी मुसकानका मरहम लगाते रहे, और उनकी प्यासी आत्मा लग़-ज़िश खाकर किसीके क़दमोंमें गिरनेके बजाय कौसरो-तसनीमकी मृग-मरीचिकासे अपनी प्यास बुझाती रही। बक़ौल नियाज़ फ़तहपुरी—"जो गुनाह वोह यहाँ न कर सकते थे, उसे दूसरी दुनियापर उठा रक्खा। जहाँ दुनियाका हर गुनाह अतैया-ए-ख़ुदावन्दी (ईश्वरीय देन) की हैसियत अख़्तियार कर लेता है।"[1]

दूसरे वे शायर जो आलमे-शबाबमें तो मनचाहे ग़ोते खाते रहे, परन्तु अन्तमें वृद्धावस्था और शक्तिहीनता आदिके कारण 'अल्लाहू' 'अल्लाहू' पुकारने लगे। यानी उनका इश्क़ इहलौकिकसे पारलौकिकमें परिणत हो गया और यही पारलौकिक इश्क़ हक़ीक़ी, रुहानी, सूफ़ियाना, आदि भिन्न-भिन्न नामोंसे मशहूर होता गया; और दुनियावी इश्क़, मजाज़ी इश्क़ कहलाने लगा।

इस प्रकार ग़ज़ल-गो शायर—**हक़ीक़ी** और **मजाज़ी**—दो शाखाओंमें विभक्त हो गये। सर्वसाधारण इसी संसारमें उत्पन्न अपने जैसे हाड़-मांससे बनी प्रेयसीसे प्रेम करना चाहते हैं। हक़ीक़ी शायर भी अपने निराकार ईश्वरका जलवा इसी दुनियावी प्रेयसीके रूपमें साकार देखना चाहता है। अतः

इश्क़के भेद

[1] निगार, जनवरी १९४१, पृ० ४।

इन सूफ़ी शायरोंने अपने इश्क़के इज़हारके लिए उन सभी उपमाओं, उदाहरणोंका उपयोग किया, जो मानवी-प्रेमसे सम्बन्धित हैं।

बे-हिजाबी यह कि हर ज़र्रेमें जलवा आशकार।
इसपै घूँघट यह कि सूरत आजतक नादीदा है[1] ॥
हश्रमें मुँह फेरकर कहना किसीका हाय-हाय—
" 'आसी'-ए-गुस्ताख़का हर जुर्म ना बख़्शीदा है[2] ॥"

उक्त दोनों शेर प्रसिद्ध सूफ़ी शायर 'आसी' ग़ाज़ीपुरीके हैं। जिनका परिचय शेरोसुख़नके तीसरे भागमें दिया गया है। 'घूँघट' और 'मुँह फेरकर' शब्द प्रकट करते हैं कि शायरके मस्तिष्कमें किसी घूँघटवाली हया-परवर नारीका तसव्वुर है। जिसने अपनी मानसिक योन-सम्बन्धी भूखको ईश्वरीय-प्रेमकी आड़में शान्त करनेका विफल प्रयास किया है। इन्हींका एक शेर और है—

तुम्हीं सच-सच बताओ, कौन था शीरींके पैकरमें ?
कि मुश्ते-ख़ाककी हसरतमें कोई कोहकन[3] क्यों हो ?

इस शेरके भावसे प्रकट होता है कि शायरके समक्ष वार्तालाप करते हुए, ईश्वर मानवी-प्रेयसीके रूपमें उपस्थित है। 'रियाज़' ख़ैराबादीने इसी कल्पनाको और भी मोहकरूप दिया है—

---

[1]ईश्वरकी बे-हिजाबीका यह आलम है कि वह कण-कणमें नज़र आ रहा है। फिर भी मुँहपर घूँघट इस ग़ज़बका है कि आजतक उसकी सूरत देखनेमें नहीं आई।

[2]हश्रमें ख़ुदाके सामने पहुँचे तो उसने हमें देखकर मारे हयाके अपना मुँह फेर लिया और चुपके-से बोला—"यह तो वही मेरा गुस्ताख़ आशिक़ 'आसी' है, जिसकी उद्दण्डताएँ क्षमा करने योग्य नहीं।"

[3]शीरींका आशिक़-फ़रहाद।

हम आँख बन्द किये तसव्वुरमें पड़े हैं।
ऐसेमें कहीं छमसे वोह आ जाय तो क्या हो ?

यहाँ भी 'छम' शब्द किसी इन्सानी परीपैकरके नूपुरोंकी 'छम-छम' शब्दका तसव्वुर है, और सचमुच कहीं निराकार ईश्वरका दिव्यदर्शन किसी मोहनीके रूपमें हो सके तो, उस प्रेमीके भाग्यका क्या कहना ? इसी भावको सर इक़बालने कभी यूँ व्यक्त किया था--

कभी ऐ हक़ीक़ते-मुन्तज़िर ! नज़र आ लिबासे-मजाज़में।
कि हज़ारों सजदे तड़प रहे हैं, मेरी जबीने-नियाज़में[1] ॥

और एक शायरने इसी भावको इस प्रकार कहा है--

यह बजा कि ख़ल्वते-दिलमें है, तू हज़ार रंगसे जलवागर।
ज़रा आके सामने बैठ जा कि नज़रको ख़ू-ए-मजाज़[2] है ॥

और यह ख़ू-ए-मजाज़ ही एक रोज़ इन्सानको वनो-पर्वतोंकी ख़ाक छनवाती है, सर फोडनेको मजबूर करती है, ख़ूनके आँसू रुलाती है। दो-दो कौड़ीके आदमियोंकी नसीहतें सुनवाती है। आशिक़े-मजाज़ीको कूचये-इश्क़में जो रुसवाइयाँ नसीब होती हैं, कौटुम्बिक और सामाजिक संघर्षोंसे जो टक्करें लेनी पड़ती हैं, वोह आशिक़े-हक़ीक़ीके भाग्यमें कहाँ ?

यूँ तो आशिक़े-हक़ीक़ी भी अपने हबीब (ख़ुदा) का तसव्वुर आशिक़े-मजाज़ी जैसा ही रखता है। वह भी उसे किसी घूँघटकी ओटमें छम-छमवालीके रूपमें देखना चाहता है। मगर दोनोंके इश्क़में पृथ्वी-आकाश-का अन्तर है। आशिक़े-हक़ीक़ी मसजिद या ख़ानक़ाहमें बैठा हुआ अपने

---

[1]निराकार ईश्वर, कभी तो साकार रूपमें नज़र आ; मेरे विनम्र मस्तकमें तेरे दर्शनके लिए हज़ारों सजदे बेचैन और उत्सुक है।
[2]प्रत्यक्ष देखनेका अभ्यास।

हबीबके तसव्वुरमें रोने-हँसनेके सिवा और कुछ भी नहीं करता। न वोह आशिक़े-मजाज़ीकी तरह हिज्रे-यारमें तारे गिननेको मजबूर है, न आहो फ़ुग़ाँसे ही उसे कभी वास्ता पड़ता है। न कभी उसे विरह-ज्वर ही सताता है, न कभी उसे अपने हबीबकी यादमें एड़ियाँ रगड़नी पड़ती है। न कभी उसे हबीबकी जुदाईमें तिल-तिलकर घुलनेका अवसर मिलता है और न कभी उसको प्रेयसीकी झिड़कियाँ सहने, रूठने-मनानेके क़ाबिले-रश्क दिन ही देखने नसीब होते हैं। और न 'मीर'की तरह उसे यह कहना मयस्सर होता है—

इस आशिक़ीमें इज़्ज़ते-सादात भी गई

जो शऊर और तौर-तरीक़ा इश्क़े-मजाज़ीमें नसीब होता है, वोह इश्क़े-हक़ीक़ीमें मयस्सर कहाँ? वक़ौल मीर—

इश्क़ बिन यह अदब नहीं आता

इसीलिए बहुत-से आलोचक हक़ीक़ी रंगको इश्क़िया शायरी माननेको तैयार नहीं। वे इसे हक़ीक़ी, रुहानी, सूफ़ियाना, तसव्वुफ़ और मारफ़तकी शायरी कहते हैं, मगर इश्क़िया शायरी माननेको हरगिज़ तैयार नहीं।

कुछ शायर हक़ीक़ी, मजाज़ी, दोनों ही रंगोंके बड़े बुलन्द-पाया और ऊँचे मर्तबेके शायर हुए हैं। पुराने शायरोंमें 'दर्द' और 'आतिश' माने हुए उस्ताद हुए हैं। जिनका परिचय एवं कलाम शेरोसुख़नके पहले भागमें आ चुका है। वर्त्तमान युगीन शायरोंमें शाद अज़ीमाबादी, अमरनाथ साहिर, आसी ग़ाज़ीपुरी, असग़र गोण्डवी और जिगर मुरादाबादीका नाम विशेष तौरसे उल्लेखनीय है। इनका विस्तृत परिचय एवं कलाम शेरो-सुख़न भाग तीसरेमें दिया गया है।

अब हम उस इश्क़िया शायरीका ज़िक्र करते हैं, जो इश्क़े-मजाज़ीसे ताल्लुक़ रखती है, और जिसका हबीब कोई ख़ुदा या ईश्वर नहीं, बल्कि

इसी दुनियाका परीपैकर है। इस क़िस्मकी शायरीके भी शायर दो समूहोंमें विभक्त किये जा सकते है। एक वे जिन्होंने स्वानुभवको अपने कलाममें व्यक्त किया। दूसरे वे जिन्हें कभी किसीकी तिर्छी नज़रसे न तो घायल होना नसीब हुआ, न कभी पीरे-मुग़ाँकी चौखटपर सर टेकना मयस्सर हुआ। नक़ली आशिक़-ओ-मैख्वार बने हुए रवायती शायरी करते रहे। उम्र भर किसीके ग़मे-हिज्रमें आँखसे एक आँसूतक न टपका, मगर शायरीमें दरिया बहा दिया--

अश्कने मेरे मिलाये कितने ही दरियाके पाट।
दामने-सहरामें वर्ना इस क़दर कब घेर था ?
--दर्द

बरस ऐ अब्र ! जितना चाहे तू, अब तेरी बारी है।
कभी दिल था तो मैं रो-रोके एक दरिया बहाता था !
--जिया

चार-पाँच आदमियोंकी जितनी ख़ूराक खा जायें, दो-दो नौकर जिनके जूठे बर्तन उठा पायें, क़वी-हैकल होनेकी वजहसे दुमकटे भैंसे कहलायें। फिर भी फ़िराक़े-यारमें यह कहनेसे बाज़ न आये--

इन्तहा-ए-लाग़रीसे[1] जब नज़र आया न मैं।
हँसके वोह कहने लगे "बिस्तरको झाड़ा चाहिए[2]" ॥
--नासिख़

चाहे उम्रभर एक रोज़को भी बुख़ार न आया हो, पर शायरीमें तपे-इश्क़में ऐसे जले कि मुर्दोंमें जान डाल देनेवाले ईसामसीहने नब्ज़ देखी तो उनकी भी नब्ज़ जल उठी--

---

[1]अत्यन्त निर्बलताके कारण [2]यह शेर नासिख़का है, वे ४-५ आदमियों जितना खाना भी खाते थे और दुमकटे भैंसे भी मशहूर थे।

नब्ज़ देखी तो हरारतसे जली नब्ज़े-मसीह ।
तेरे बीमारे-मुहब्बतका मदावा[1] कैसा ?
——अमीर मीनाई

गमेइश्क़का सदमा कभी लमहे भरको न उठाया, न कभी किसीकी यादमें नींदें उचाट हुई, मगर कहते यही रहे——

रातको नींद है न दिनको चैन ।
ऐसे जीनेसे ऐ ख़ुदा गुज़रा[2] ।।
——सोज़

उम्रभर इमामे-मस्जिद बने रहे, हरसाल हजको जाते रहे, मगर दूनकी यही हाँकते रहे कि कूच-ए-बुताँमें बिस्तर लगाये बैठे हैं——

मुझ बे-नवा-गदाको[3] पूछे 'अमीर' वोह क्या ?
शाहोंके उस गलीमें बिस्तर लगे हुए हैं ।।
——अमीर मीनाई

कभी एक वक़्तकी नमाज़ क़ज़ा नही की, बूँदभर शराब हलक़के नीचे न उतारी, मगर वज़ू करते हुए भी मश्क़ेसुख़न यही था——

धोना है दागे-जाम-ए-अहराम[4] सुबह-सुबह ।
हुजरेसे शेख़ पानीकी छागल उठा तो ला ।।
——रियाज़ ख़ैराबादी

---

[1]इलाज असम्भव है; [2]बाज़ आया; [3]ख़ामोश फ़क़ीरको। [4]'जामये-अहराम' उस लिबासका नाम है, जिसे पहनकर काबेकी परिक्रमा की जाती है। जामये-अहराम पहननेके बाद भी शायर शराब पी बैठा और वह पवित्र वस्त्र शराबसे ख़राब कर लिया। अब शायरकी दूसरी शोख़ी देखिये कि वहींके धर्माचार्यसे उसे साफ़ करनेको पानी मँगवाता है। यह शेर उन्हीं 'रियाज़' साहबका है, जिन्होंने न कभी शराब छुई न कभी नमाज़ क़ज़ा की !

यहाँ तक कि बहुत-से शायरोंने तो ८-१० सालकी उम्रमें ही शेर कहना प्रारम्भ कर दिया। जब कि वे यह भी न जानते थे कि माशूक़ है किस मरज़की दवा? और उनके शेर पढ़िये तो मालूम हो कि कोई ख़ुर्राट आशिक़ आप बीती दास्ताने-ज़हरे-इश्क़ बयान कर रहा है। अधिकांश ग़ज़लें ऐसे ही अनुभव-हीन नक़ली आशिक़-शायरोंद्वारा कही हुई हैं। यही कारण है कि हृदयस्पर्शी अशआर बहुत कम देखनेको मिलते हैं और रवायती एवं कल्पित शायरीकी भरमार है। चूँकि ग़ज़ल नाम ही इश्क़का है, इसलिए इस स्कूलमें जो भी दाख़िल होगा इश्क़िया शेर कहेगा। इस स्कूलका श्रीगणेश ही हुस्नो-इश्क़से होता है। हरजाई, उदू, क़ासिद, दरबान, ज़ालिम, बेवफ़ा, क़ातिल, नाला-ओ-फ़ुग़ाँ, वस्लो-हिज्र आदि इसकी वर्णमाला है। चन्द दिनके अभ्याससे ही विद्यार्थी महारनी लेने लगता है। इस स्कूलका स्नातक चाहे मजनूँ हो, चाहे जाहिदे-ख़ुश्क अथवा कमसिन छोकरा। थोड़े दिनके अभ्यासके बाद इश्क़िया शायरीका प्रमाण-पत्र दे दिया जाता है। चाहे उनकी योग्यता और अनुभवमें पृथ्वी-आकाशका अन्तर हो।

अनुभवहीन एवं फ़र्ज़ी तथा स्वानुभवी आशिक़ोंकी शायरीको भी दो हिस्सोंमें तक़सीम करना होगा। एक पाक इश्क़िया शायरी दूसरी बाज़ारी इश्क़िया शायरी।

पाक इश्क़

पाक इश्क़िया शायरी वह है कि एक बार जिसको दिल दे दिया, उम्रभर उसीके इश्क़का दम भरते रहे। चाहे सफलता मिले या न मिले, उसीकी यादमें उम्र काट दी। यह वह पाक इश्क़ है, जिसके बारेमें इंजीलमें कहा गया है कि **ख़ुदा मुहब्बत है और मुहब्बत ख़ुदा है।** यही इश्क़ आदमीको इन्सान बनाता है और फिर ख़ुदाके मर्तबेको पहुंचाता है। इस इश्क़में अपने हबीबके प्रति आशिक़की वही आसक्ति और पवित्र भावना होती है, जो सीताके प्रति रामकी, राधाके प्रति कृष्णकी थी।

बाज़ारी इश्क़िया शायरी कामलोलुप, विषयासक्तोंकी शायरी है। जिनकी प्रेयसियाँ—वेश्याएँ और पतिता नारियाँ है, और जो स्वयं भी इस गुलशने-हुस्नमें भौंरे बने मँड़राते है।

हमें अफ़सोस है कि हम प्राचीन शायरीसे पाक इश्क़िया शायरीके उदाहरण अधिक नहीं दे सकते। क्योंकि उर्दू-शायरीका जन्म और विकास ही मुग़लिया सल्लनतके ज़वालके वक़्तमें हुआ। अतः वे सब बुराइयाँ—विलासिता, तमाशबीनी, मैनोशी आदि सब इसमें प्रविष्ट कर गई, जो तत्कालीन शासकोंमें थीं, और जिनके कारण उन्हें शासनसे हाथ धोना पड़ा। उर्दू-शायरी अपने जन्मके थोड़े ही दिन बाद फारसी शायरी-का अनुकरण करने लगी थी। धीरे-धीरे उसमें वे सब अवांछनीय तत्व आते गये, जिससे उर्दू-शायरी पाकीजा होनेके बजाय उत्तरोत्तर बाजारी और अस्वाभाविक होती गई।

हाँ तो हम पाकइश्क़के उदाहरण देना चाह रहे थे। सम्भवतः उर्दू-शायरीमें सबसे पहले इस क़िस्मका तसव्वुर 'मीर'के यहाँ मिलता है—

फूल, गुल, शम्स-ओ-क़मर सारे ही थे।
पर हमें उनमें तुम्हीं भाये बहुत[1]॥

चाहें तो तुमको चाहें, देखें तो तुमको देखें।
ख़्वाहिश दिलोंकी तुम हो, आँखोंकी आरज़ू तुम॥

विश्व-सुन्दरियोंमें तुम्हीं एक हमारी प्रियतमा हो, तुम्हीं हमारी अभिलाषा हो, तुम्हीं हमारे जीवनका लक्ष हो।

इतने उन्नत विचारोंको व्यक्त करनेके बाद पवित्र-प्रेमकी व्याख्या और क्या शेष रह जाती है?

---

[1]दुनियामें गुलबदनी भी हैं, और चन्द्रमुखी भी। मगर हम अपने दिलको क्या करें? उसे तुम ही पसन्द आये; तुम्हारे सिवा सब हेच हैं।

'आतिश'ने अपनी प्रियतमाकी पवित्रता इन शब्दोंमें व्यक्त की है--

चश्मे-नामहरमको बर्क़े-हुस्न कर देती थी बन्द।
दामने-अस्मत तेरा आलूदगीसे पाक[1] था॥

और 'ज़ौक़'ने भी कैसा अछूता और पाकीज़ा शेर कहा है--

मैं ऐसे साहिबे-अस्मत परी-पैकरपै आशिक़ हूँ।
नमाज़ें पढ़ती हैं हूरें, हमेशा जिसके दामनपर[2]॥

प्राचीन शायरोंके हमने ऊपर चार शेर नमूनेके तौरपर दिये हैं। ताकि मालूम हो सके कि पाकीज़ा इश्क़से हमारी क्या मुराद है। वर्त्तमान युगीन शायरोंके इस क़िस्मके सैकड़ों शेर उनके कलाममें यत्र-तत्र दृष्टि-गोचर होंगे, और ऐसे कुछ अशआर प्रसंगानुसार हम आगे भी देंगे।

बाज़ारी इश्क़

हम समझते हैं बाज़ारी इश्क़िया शायरीके उदाहरण देनेकी आवश्यकता नहीं। केवल कोकशास्त्रका नाम ले देने मात्रसे विज्ञ मनुष्य समझ जाते हैं कि उसके अन्दर क्या भरा हुआ है। ग़ज़लका माशूक़ प्रायः इन विशेषणोंसे सम्बोधित किया जाता है--

१--शोख़	६--बदज़बान
२--बे-अदब	७--संगदिल
३--बे-वफ़ा	८--ज़ालिम
४--बे-मुरव्वत	९--हरजाई
५--बे-रहम	१०--क़ातिल

---

[1]तेरा शील अत्यन्त पवित्र है, उसमें कोई बाल नहीं आ सकता। तेरा रूप इतना तेजवान है कि कामुक व्यक्ति तुझे देख नहीं सकते, उनके नेत्र बन्द हो जाते हैं।

[2]मैं ऐसी शीला सुन्दरीपर आसक्त हूँ कि जिसके आँचलपर हूरें नमाज़ पढ़नेको लालायित हैं।

११—जल्लाद १३—जालसाज़
१२—दग़ाबाज़ १४—वायदा-फ़रामोश

ऐसे क्रूर, हत्यारे, दुराचारी, कपटी माशूक़का तसव्वुर उर्दू-शायरीमें कहाँसे और कैसे आया ? हमारा दावा है कि किसी जल्लाद और क़स्साब तककी ऐसी सन्तान चराग़ लेकर ढूँढ़नेपर भी नहीं मिलेगी, जिसपर उक्त सभी विशेषण मौजूँ हो सकें। फिर इस तरहके अशआर किस माशूक़के तसव्वुरमें लिखे गये ?

शोख़

अमीर— कहा जो मैंने कि यूसुफ़को यह हिजाब[1] न था।
तो हँसके बोले—"वोह मुँह क़ाबिले नक़ाब न था" ॥

दाग़— जब यह सुना कि दाग़का आज़ार[2] कम हुआ।
ज़ानूपै हाथ मारके बोले—"सितम हुआ" ॥
अयादतको मेरी आकर वोह यह ताकीद करते हैं—
"तुझे हम मार डालेंगे, नहीं तो जल्द अच्छा हो ॥"

दर्द— फिरते हो सज बनाये तो अपनी इधर-उधर।
लग जाय देखिये न किसीकी नज़र कहीं ॥

अमीर मीनाई—

यह क़ज़ा है कि अदा आपकी सुब्हान अल्लाह !
सफ़ उलटती है जो मस्जिदमें जनाब आते हैं !

बेअदब

इंशा— पूछा किसीने मुझको उनसे कि कौन है यह ?
तो बोले हँसके—"यह भी है इक ग़ुलाम मेरा ॥"

---

[1]शर्म, लाज। [2]दुख।

अफ़सोस—सूरत तुझे हक़ने दी परी-सी।
पर आदमीयत न दी ज़री-सी॥

बेवफ़ा

असर देहलवी—

बेवफ़ा तेरी कुछ नहीं तक़सीर[1]।
मुझको मेरी वफ़ा ही रास नहीं॥

दर्द— नहीं शिकवा मुझे कुछ बेवफ़ाईका तेरी हरगिज़।
गिला तब हो अगर तूने किसीसे भी निबाही हो॥

दाग़— ख़ुमार आलूदा आँखें बल जबींपर, दर्द है सरमें।
रहे तुम रात-भर बेचैन किस कम्बख़्तके घरमें?

हज़ारों आते-जाते हैं किसीसे कुछ नहीं मतलब।
फ़क़त इक चौकसी करता है उनका पासबाँ, मेरी॥

बेमुरव्वत

क़ायम चाँदपुरी—

ज़ालिम-ख़बर तो ले कहीं 'क़ायम' ही यह न हो।
नालाँ-ओ-मुज़तरब[2] पसे-दीवार[3] है कोई॥

बेरहम

क़ायम चाँदपुरी—

समझके शीश-ए-दिलको पटकियो ऐ बुतेमस्त!
बजाय बादा[4] लहू है, इस आबगीनेमें[5]॥

---

[1]दोष, [2]चीख़ता, तड़पता; [3]दीवारके पीछे; [4]शराबके बजाय; [5]प्यालेमें

अमीर मीनाई--

वोह बैठे-बैठे जो दे बैठे क़त्ले-आमका हुक्म।
हँसी थी उनकी, किसीपर कोई अताब[1] न था॥

बदज़बान

इंशा-- ख़याल कीजिये क्या आज काम मैंने किया।
जब उसने दी मुझे गाली, सलाम मैंने किया॥

मोमिन-- लगती है गालियाँ भी तेरे मुँहसे क्या भली।
क़ुरबान तेरे, फिर मुझे कह ले इसी तरह॥

दुश्नामे-यार[2] तब ए-हज़ींपर[3] गराँ[4] नहीं।
ऐ हमनफ़स ! नज़ाकते-आवाज़ देखना॥

दाग़-- मुझे कोसें, बलासे गालियाँ दें।
मगर वोह नाम लें हर बार मेरा॥

परदे-परदेमें गालियाँ देकर।
मुझसे वोह पूछते हैं "क्या समझे ?"

संगदिल

असर-- अगर ऐसा ही अब सताइयेगा।
ख़ैर जीता मुझे न पाइयेगा॥

ताबाँ-- सबब जो मेरी शहादतका यारसे पूछा।
कहा कि--"अब तो उसे गाड़ दो, हुआ सो हुआ॥"

---

[1]क्रोध; [2]प्रेयसीकी गालियाँ; [3]क्लान्त हृदयपर; [4]बोझल।

हसरत लखनवी--

कल किसीने जो कहा "मरता है आशिक़ तेरा"।
हँसके ग़ैरोंकी तरफ़ कहने लगा--"और सुना ?"

मोमिन-- ख़्वाहिशे-मर्ग हो, इतना न सताना, वरना।
दिलमें फिर तेरे सिवा और भी अरमाँ होगा॥

दाग़-- हो गया ईद उनको मेरा रोग।
क़हक़हे उड़ रहे हैं मातममें॥

ज़ालिम

दर्द-- ज़ालिम जफ़ा जो चाहे सो कर मुझपै तू वले[1]--
पछतावे फिर तू आप ही ऐसा न कर कहीं॥

दाग़-- कहते है वोह "जलायेंगे हम तुझको हश्रतक।
दुश्मनकी क़ब्र तेरे बराबर बनायेंगे॥"

ग़ुबार-आलूदा है पाये-हिनाई[2]।
मिटाकर आये हो मदफ़न[3] किसीका !

हरजाई

मोमिन-- बेपरदा ग़ैरसे न हुआ होगा शब कि सुबह।
आँखोंमें शर्म थी न नज़रमें हिजाब था॥

ग़ैरके हमराह वोह आता है मैं हैरान हूँ।
किसके इस्तक़बालको[4] जी मेरा तनसे जाय है ?

---

[1]लेकिन; [2]मेंहदीसे रचा हुआ पाँव; [3]क़ब्र; [4]स्वागतको।

अफ़सोस—कुछ बात मुझसे कर नहीं सकते, हज़ार हैफ़ !
मुद्दतमें तुम मिले भी तो ग़ैरोंके घर मिले !!

जुरअत— इस ढबसे किया कीजे मुलाक़ात कहीं और ।
दिनको तो मिलो हमसे, रहो रात कहीं और !

नासिख़— हुजूम रखते हैं जाँबाज़ यूँ तेरे आगे ।
जुआरियोंका दिवालीपै जैसे जमघट हो ।।
जलाओ ग़ैरोंको मुझसे जो गरमियाँ करके ।
तुम्हारे कूचेमे तैयार एक मरघट हो ।।

दाग़— अपने दीवानोंको देखा, तो कहा घबराकर—
"यह नई वज़अ़को किस मुल्कसे ख़लक़त आई ?"

अनवर— न हम समझे, न आप आये कहींसे ।
पसीना पूछिये अपनी जबींसे[1] ।।

अमीर मीनाई—

नामे[2] वोह बारी-बारी उश्शाक़के[3] पढ़ेंगे ।
उजलतमें[4] कुछ न होगा, नम्बर लगे हुए हैं ।।
है हुक्मे-यार कोई मेरी तरफ़ न देखे ।
ये इश्तहार अब तो घर-घर लगे हुए हैं ।।

दाग़— आज क्या है जो निकलवाये गये घरसे रक़ीब[5] ?
और दरबानोंके फिकवा दिये बिस्तर बाहर ?

क़ातिल

हसन— किया क़त्ल और जान बख़्शी भी की ।
'हसन' उसने अहसाँ दुबारा किया ।।

---

[1]मस्तकसे; [2]पत्र; [3]प्रेमियोंके; [4]शीघ्रतामें; [5]प्रतिद्वंद्वी;

मुसहफ़ी-- खींचकर तेग़ यार आया है।
इस घड़ी सर झुका दिये ही बने ॥

नासिख़-- दोस्तो! जल्दी ख़बर लेना, कहीं 'नासिख़' न हो।
क़त्ल आज उसकी गलीमें एक बेचारा हुआ ॥

ज़ौक़-- कहे है ख़ंजरे-क़ातिलसे यह गुलू मेरा--
"कमी जो मुझसे करे तो पिये लहू मेरा ॥"

अमीर मीनाई--

पछता रहे हैं ख़ून मेरा करके क्यों हुज़ूर!
अब इसपै ख़ाक डालिये, जो कुछ हुआ-हुआ ॥

दाग़-- ज़िबह करते ही मुझे क़ातिलने धोये अपने हाथ।
और ख़ूँ-आलूदा[1] ख़ंजर ग़ैरके घर रख दिया ॥

अपने बिस्मिलका सर है ज़ानूपर।
किस मुहब्बतसे जान लेते हैं!

मेरे मज़ारको तोदह[2] किया है तीरोंसे।
बहाना ये है कि रोज़न[3] किये हवाके लिए ॥

मेरे क़त्लके रोज़ मेला लगेगा।
यह जलसा वोह इक धूम-धामी करेंगे ॥

चुटकीमें उनकी तीर निगाहोंमें उनके क़हर।
क्या जाने कितनी देर हमारी क़ज़ामें है?

या इलाही ख़ैर हो, बैठे है वोह यूँ बज़्ममें।
तेग़ रक्खी है बराबर और ख़ंजर सामने ॥

---

[1]रक्त रंजित; [2]छलनी; [3]सूराख़।

जल्लाद

मोमिन— दावये-तकलीफ़से जल्लादने।
रोज़े-जज़ा क़त्ल फिर अपना किया॥

दग़ाबाज़

दाग़— लड़ती जाती है ग़ैरसे भी आँख।
मुझसे भी बात करते जाते हैं॥

रियाज़ख़ैराबादी—

नज़अमें यारसे पैमाने-वफ़ा करते हैं।
उस दग़ाबाज़से हम आज दग़ा करते हैं॥

जालसाज़

ज़ौक़— माल जब उसने बहुत रद्दोबदलमें मारा।
हमने दिल अपना उठा अपनी बग़लमें मारा॥

वायदा-फ़रामोश

ग़ालिब— ता फिर न इन्तज़ारमें नींद आये उम्रभर।
आनेका वादा कर गये आये जो ख़्वाबमें॥

दाग़— "वफ़ा करेंगे, निबाहेंगे, बात मानेंगे।"
तुम्हें भी याद है कुछ, यह कलाम किसका था?

हबीबका तसव्वुर

ग़ज़लमें ऐसे शोख़ एवं हरजाई हबीब (चंचल और खण्डिता-नायिका) का तसव्वुर वेश्याकी वजहसे आया। क्योंकि उन दिनों तमाशबीनी (वेश्या-आसक्ति) जीवनका एक अंग और समाजकी एक आवश्यक प्रथा बनी हुई थी। बादशाहों-नवाबों, राजा-महाराजाओंके दरबारोंसे यह वाबिस्ता

(सम्बन्धित) होती थीं। परम्परासे चले आये इस रिवाजके कारण सद्गुणा, सुशील और आदर्शशासक भी इनका नृत्य देखते थे। यह एक ऐसी ही आवश्यक प्रथा थी, जैसी कि यूरोपमें मद्य-पान और बालडान्सकी प्रथा है।

इन शासकोंका अन्धानुकरण प्रायः सभी रईस, जागीरदार, ज़मींदार करते थे। वेश्याओंपर जो जितना अधिक व्यय करता था, उसकी रईसाना शान उतनी ही अधिक बढ़ती थी। नवाब ज़ुल्फ़िक़ारअलीने अगर दो तवाइफ़ें नौकर रखी हुई थीं तो ठाकुर रामसिंहका चार तवाइफ़ रखना लाज़िमी था। न रखें तो फिर मूँछोंपर ताव इस शानसे कैसे दिया जा सकता था? जब मनोहर पण्डित अपने लड़केकी शादीमें चार-चार तवाइफ़ें ले गये, तब लाला उल्फ़त आठसे कम क्या ले जायें? बिरादरी क्या कहेगी? सारे बाज़ार नाक कटानी हो तो चाहे एक भी न ले जायें! महफ़िल गरम हुई तो सुक्खा परचूनिये और मुंशी हलवाई जैसोंने तवाइफ़-की मुट्ठियाँ रुपयोंसे भर दीं। तब लाला मोहनलाल गिन्नियाँ न्योछावर न करें तो महफ़िलसे सुर्ख़रू होकर कैसे उठें? और जब लालाओंने गिन्नियाँ देनी शुरू कर दीं तो नवाब हैदर और ठाकुर सुजानके लिए अब इसके सिवा और चारा भी क्या है कि तबलचीके तबलेको अशर्फ़ियोंसे भर दें।

यह तमाशबीनी यहाँतक प्रचलित थी कि बहुत-से रईस अपने लड़कोंको तवाइफ़ोंके यहाँ तहज़ीब सीखनेके लिए उसी तरह भेजते थे, जैसे कि वर्त्तमानमें यूरोप भेजना आवश्यक समझते हैं। उन दिनों यह आम धारणा थी कि बग़ैर इस तरहकी सुहबतमें रहे बज़्मे-अदबमें बैठनेका सलीक़ा-ओ-शऊ़र नहीं आ सकता, और जो ऐसी सुहबतोंमें रहकर परवान चढ़ते थे, वोह इस रंगके कैसे माहिर होते होंगे, आसानीसे अनुमान लगाया जा सकता है।

वह युग ही कुछ ऐसा था कि साधारण-से-साधारण व्यक्तिको भी

लड़केकी शादीमें तवाइफ़का बुलाना आवश्यक होता था। लड़कीवालेकी पहली शर्त ही यह होती थी। न ले जानेपर ख़ातिर-तवाज़हमें तो अन्तर पड़ता ही था, गाँवके शोहदे पत्थर भी फेंकते थे। और जिस शादीमें तवाइफ़ जाती थी, दो-चार छोकरोंको तीरेनज़रसे घायल भी करती थी, और इस तरह यह तमाशबीनीका रोग घर-घरमें फैला हुआ था। मैं स्वयं कई ऐसे रईसोंको जानता हूं, जो करोड़पति होते हुए इस शौक़की बदौलत दो-कौड़ीके हो गये। मैंने एक रईसको ऐसी स्थितिमें मरते देखा है कि दुश्मनपर भी ऐसी बला न आये। यही रईस आलमेशबाबमें एक महफ़िलमें बैठे रक़्स देख रहे थे। पिता मर चुके थे। करोडों रुपयेकी दौलत हाथ लगी थी, तजुर्बा कुछ था नहीं, जवानीकी चौखटपर पाँव ही रखा था, कि तवाइफ़को छेड़ बैठे। तवाइफ भी रूप, संगीतके अलावा अपने हुनरमें यकताँ थी। वह पहलेसे ही इस वारके लिए तैयार थी, भरी महफ़िलमें उसने रईसज़ादेका माँजना झाड़ दिया। परिणामस्वरूप रईसज़ादेके मनमें भी बदला लेनेकी भावना उठ खड़ी हुई कि जैसे भी हो इसे नीचा दिखाना चाहिए। मीरासियोंसे एकान्तमें पूछा तो उन्होंने बताया "हुज़ूर, यह बड़ी पाकदामन और नमाज़-रोज़ेकी पाबन्द है। नाच-गानेका पेशा तो हुनरकी ख़िदमत समझकर करती हैं। नवाबों तकको कोठेपर नहीं चढ़ने दिया, आप तो हैं किस खेतकी मूली?" बस फिर क्या था? नये बछेड़ेको एक हण्टर और लगा। परिणाम इसका यह हुआ कि सारी सम्पत्ति उसके इश्क़में लुटा दी। वेश्यानृत्यकी यह प्रथा इतनी आम थी कि बड़े-बड़े धार्मिक व्यक्तियोंको भी ख़ुशी आदिके अवसरों-पर अनिच्छा होते हुए भी वेश्या-नृत्य कराना पडता था। ख़ानक़ाहों और दरगाहोंके उर्सोंपर वर्त्तमानमें भी वेश्यायें जाती हैं।

इन तवाइफ़ोंमें बहुत-सी शायरायें भी होती थीं। एक तो हुस्नकी मार ही क्या कम होती है, फिर साँपको भी वज्दमें ला देनेवाला संगीत; फिर शायराना मज़ाक़, उसपर भी तुर्रा यह कि तवाइफ़ाना अन्दाज़,

चोचले, शोखियाँ, तेवर—यह सब घरेलू पत्नीमें कहाँ ? वह भोली-भाली अबलायें यह सब नाज़ो-अदाएँ कहाँसे लायें ? मगर दिलफेंक, कामुक व्यक्तियोंको तो यह सब चाहिएँ। घरमें मयस्सर नहीं तो बाज़ारमें तो हैं ? उनकी बलासे शरीफ़ बीवी आठ-आठ आँसू रोती है तो वे अपनी उमंगोंका ख़ून कैसे कर दें ? घर तबाह हो रहा है, बच्चे भी उसी कूचेमें खेलना चाह रहे हैं, सामाजिक स्तर गिरता जा रहा है, तो वे क्या करें ? क्या इस चन्दरोज़ा जवानीको यूँ ही गुज़ार दें ? नहीं जी, इन हुस्नके परिस्तारोंसे यह हरगिज़ नहीं हो सकेगा।

दिल्लीमें ५-६ वर्ष मुझे एक ऐसे पड़ोसमें रहनेका इत्तफ़ाक़ हुआ, जिनका जवान लड़का कूचयेहुस्नका दिल-दादा था। घरमें सुशीला रूपवती देवी-जैसी पत्नी, मगर दिल एक तवाइफ़के जुल्फ़े-पेचाँमें फँसा हुआ था। बीबी पूजा-पाठकी पाबन्द, नेक और शरीफ़। भला वोह तकल्लुफ़, अन्दाज़, तर्ज़े-गुफ़्तग कहाँसे लाये, जो तवाइफने लोरियाँ सुनते-सुनते सीख लिये हों !

परदेकी सख़्त पाबन्दीने भी तमाशबीनीको हवा दी। इसकी वजहसे किसी शरीफ़ज़ादीसे दीदाबाज़ी नहीं चल सकती थी। अगर किसी मनचले-का दिल अकस्मात किसीकी तीरेनज़रसे घायल हो भी गया तो, उसे बार-बार देखना, पत्र-व्यवहार करना, सन्देश भेजना, इश्क़ जारी रखना बहुत दुष्कर था। इसे हर क़ौममें मायूब समझा जाता था। लड़कियोंसे तो यह पहल होती ही न थी। लड़कोंसे शाज़ो-नादिर हो जाती थी तो उसकी अक्सर मरम्मत कर दी जाती थी। इसलिए ऐसे पुरख़तर कूचये-इश्क़में कोई बिरला ही सरफिरा क़दम रखता था।

मर-मरके हमने काटी हैं अपनी जवानियाँ

'मीर'के समान इस तरह रो-रोकर जवानी काटनेको भला वे कामुक शायर कैसे प्रस्तुत हो सकते थे, जिनके यहाँ इश्क़का तात्पर्य्य ही काम-वासना शान्त करना है।

बुलहविसी और दुआ-ए-सोज़े-इश्क़[1]।
दाग़ खानेको कलेजा चाहिए॥
—अमीर मीनाई

ऐसे शायर जो न तो सामाजिक बन्धनोंको तोड़नेकी शक्ति रखते थे, न पारिवारिक-संघर्षका ख़तरा ले सकते थे और न अपनी काम-वासनाओंपर हावी हो सकते थे, साधारण स्तरके आदमी थे। उनकी पहुँच इन तवाइफ़ोंके यहाँ बा-आसानी हो जाती थी, और इसी तमाशबीनीको यह लोग इश्क़ समझ लेते थे। यह बेचारे 'मीर' जैसा दिल फूँकनेको कहाँसे लाते?

रोशन है इस तरह दिले-वीराँमें एक दाग़।
उजड़े नगरमें जैसे जले है चराग़ एक[2]॥

मजबूरन तवाइफ़ोंके संगेदरपर सजदा करना पड़ता था, इसलिए हबीबका तसव्वुर आम शायरोंका बाज़ारी औरत (वेश्या-तवाइफ़) हो गया। नामवर तवाइफ़ोंके चाहनेवाले ज़्यादा होते थे। उन्हें हर तमाशबीन नवाब और रईस अपनी बनाना चाहता था। मगर वह किसकी होकर देती थीं? मोटे आसामीको चन्द दिन फाँसा-चूसा, और दुत्कार दिया। इन चाहनेवालोंमें परस्पर प्रतियोगिता चलती थी। नाकामयाब

---

[1]विषयलोलुप-से पवित्र-प्रेमकी आशा करना व्यर्थ है। पवित्र-प्रेमका साहस वही कर सकता है जो अपने हृदयको दग्ध करनेकी क्षमता रखता हो।

[2]पुराने ज़मानेमें जब किसी नगरको बादशाही अताबकी वजहसे मिसमार कर दिया जाता था, तब उस उजड़े नगरमें रातके वक़्त ऊँचे स्थानपर एक चराग़ जला दिया जाता था, ताकि देखनेवाले उससे इबरत ले सकें।

उम्मीदवार अपनेको सच्चा आशिक़ और कामयाब तमाशबीनको उदू समझता था। जो ज़्यादा ज़र लुटाता, उसीकी मुहब्बतका तवाइफ़ दम भरती। उसके सामने दूसरे चाहनेवालेको उपेक्षासे देखना पड़ता या मसलहतन बज़्मे-रक़्ससे उठवाना पड़ता तो इसे शायर आशिक़े-सादिक़की बेइज़्ज़ती समझता! अपने स्वार्थके विपरीत तवाइफ़का जो भी बर्ताव होता, उसे वोह ज़ुल्मोसितम, जोरो-जफ़ा तसव्वुर करता था और अपने हर प्रयत्नको वफ़ादारी समझता था।

मुझे एक ऐसे ही तमाशबीन शायरने आपबीती घटना सुनाई थी कि एक तवाइफ़के यहाँ जब वे रातभर रहनेकी ग़रज़से सोये हुए थे, तब उसका एक पुराना चाहनेवाला आ गया और उन्हें खिसकनेको मजबूर होना पड़ा। बेचारे तवाइफ़की बेवफ़ाई और हरजाईपनका शिकवा बहुत ही दुखे हुए दिलसे कर रहे थे और मैं ग़ालिबका यह शेर मन-ही-मनमें पढ़ रहा था——

हमको उनसे वफ़ाकी है उम्मीद !
जो नहीं जानते वफ़ा क्या है !!

बाज़ारी इश्क़के अलावा, बेवफ़ा माशूक़ आदिका तसव्वुर शायरोंने बादशाही-नवाबी दरबारोंसे भी लिया। वे शायर जो दरबारोंसे सम्बन्धित होते थे, बादशाहों-नवाबोंको हबीब, उनके मुँहलगे मुसाहबोंको उदू, उनकी उपेक्षाओंको तग़ाफ़ुल, उनकी चो-ब-जबीको जौरो-जफ़ा, अपनेको मज़लूम-ओ-नाचार आशिक़ तसव्वुर करते थे और उन वाक़यातको ग़मे-जानाँ बनाकर ग़ज़लके लबोलहजेमें बयान करते थे।[1]

---

[1]ग़ज़लकी सबसे बड़ी विशेषता ही ये है कि बातको सीधे न कहकर हुस्नो-इश्क़, गुलो-बुलबुल, सागरो-साक़ीके माध्यमसे बयान किया जाता है।

हर चन्द हो मुशाहद-ए-हक़की गुफ़्तगू।
बनती नहीं है बादा-ओ-साग़र कहे बग़ैर॥

बाज़ारी इश्क़ और दरबारी घात-प्रतिघाती शायरीकी वजहसे १९वीं शताब्दीतककी शायरीमें पाक इश्क़का जज़्बा बहुत कम मिलता है, और जो आटेमें नमकके समान मिलता भी है तो वह इतना घुला-मिला हुआ है कि उसे अलहदा करना बहुत दुश्वार है। ख़ुदा-ए-सुख़न 'मीर'को ही लीजिये। कहीं तो उनके बुलन्द इश्क़का यह आलम है कि प्रेयसीके न आनेपर कोई शिकवा-ओ-शिकायत नहीं करते और अपने हृदयको यूँ सान्त्वना दे लेते हैं—

जिगरकावी, नाकामी, दुनिया है आख़िर।
नहीं आये जो 'मीर' कुछ काम होगा॥

उसकी उपेक्षाको अपने ही इश्क़की ख़ामी समझते हैं—

मुझीको मिलनेका ढब कुछ न आया।
नहीं तक़सीर उस ना आशनाकी॥

उन्हीं 'मीर'के यहाँ अमरद परस्तीके (छोकरोंके प्रेम सम्बन्धी) अशआर भी पाये जाते हैं।

मिर्ज़ा 'ग़ालिब'के यहाँ जहाँ ऐसे पवित्र-प्रेमका तसव्वुर है—

ऐ दिले ना-आक़बत-अन्देश ! ज़ब्ते-शौक़ कर।
कौन ला सकता है, ताबे-जलव-ए-दीदारे-दोस्त[1]॥

---

[1]ऐ अदूरदर्शी प्रेमी ! अपनी चाहतको बसमें रख। उस सुशीला प्रियतमाके रूपको निहारनेकी सामर्थ्य किसमें है ?

फ़रोग़े-शोलये-ख़स यक नफ़स है।
हविसको पासे-नामूसे-वफ़ा क्या[1] ?

वहाँ उनके यहाँ कहीं-कहीं ऐसे हकीर शेर भी नज़र आते हैं--

क्या ख़ूब तुमने ग़ैरको बोसा नहीं दिया !
बस, चुप रहो, हमारे भी मुंहमें ज़बान है ॥

सुहबतमें ग़ैरकी न पड़ी हो कहीं यह ख़ू[2]।
देने लगा है बोसा बग़ैर इल्तजा[3] किये ॥

ग़ज़लमें इस तरहके दुरंगे मज़मून पाये जानेकी वजह यही है, कि हर शायरकी विचार-धारा प्रारम्भसे अन्त तक यकसाँ नहीं रहती। बहुत कम ऐसे लोग होते है जो अपने भावोंको स्थाई रख सकें। कभी वे अपने चारों तरफ़के वातावरणसे प्रभावित होते है, और कभी अपने दिलकी मुख्तलिफ़ कैफ़ियातसे मुतास्सिर होते है। जिसे अपना वतन छोड़ना पड़ा हो, उम्रभर पापड़ बेलने पड़े हों, वह मीर यह न कहता तो और क्या कहता ?

आग थे इब्तदा-ए-इश्क़में हम।
अब जो हैं ख़ाक इन्तहा है यह ॥

मेरे सलीक़ेसे मेरी निभी मुहब्बतमें।
तमाम उम्रमें नाकामियोंसे काम लिया ॥

और यही 'मीर' जब लखनऊ पहुँच जाते हैं, वहाँ भरण-पोषणकी चिन्ताओंसे तनिक मुक्ति पाते हैं, और लखनऊकी रंगीन फ़िज़ा एवं चूमा-

---

[1]हविसकार (कामुक) को मुहब्बतकी इज़्ज़तका पास नहीं हो सकता। फ़रोग़े-शोलए-ख़स (घासकी आगका भड़काव) यकनफ़स (एक पल) के लिए होता है। इसी तरह कामुकका प्रेम टिकाऊ नहीं होता।

[2]आदत; [3]बग़ैर माँगे।

चाटीकी शायरीके माहोलमें साँस लेते है तो गो लाख तबीयतपर क़ाबू सही, मुँहका ज़ायका बदलनेको अथवा होलीका भड़ुआ बननेको ऐसे शेर भी कह बैठते हैं--

मिलो इन दिनों हमसे एक रात जानी।
कहाँ हम कहाँ तुम कहाँ फिर जवानी॥

देहलवी-लखनवी शायरी

देहलवी शायरोंका जीवन अक्सर अभावों और दुश्चिंताओंमें व्यतीत हुआ। जब बादशाह एवं रईसोंकी हालत तबाह थी, तब उनसे सम्बन्धित शायरोंका तो ज़िक्र ही क्या? बाल-बच्चोंके भरण-पोषणकी चिन्ताओं और आकुलताओंमें जिनका जीवन व्यतीत हो, उनके कलाममें दुःख, व्यथा, पीड़ा, तड़प, निराशा, असफलता आदिका समावेश स्वाभाविक है। देहलवी शायरोंमें मीर, सोज़, दर्द, ग़ालिब, मोमिन, ज़ौक़ आदि जितने भी शायर चमके, वे सब मुग़लिया सल्तनतके ज़वालमें चमके। वे निराशाओंकी गोदमें पले, असफलताओंकी लोरियाँ सुनते-सुनते जवान हुए। मुसीबतें ही जिनका ओढना-बिछोना रहीं, उनके मुँहसे ऐसी करुणा-पूर्ण शायरी न होती तो और किससे होती?

देहलवी शायरोंकी यही करुणापूर्ण स्थिति उर्दू-शायरीके लिए वरदान साबित हुई। दुःख-दर्द, व्यथा-पीड़ा ही शायरीके मुख्य अंग हैं। यह न हों तो शायरी अपाहिज है। सुख शायरके अन्तस्थलमें दबे हुए विकारोंको उभारता है। दुःख शायरके उच्च भावोंको जागृत करता है। सुखान्त दृश्य मनको क्षणभरके लिए स्पर्श करता है। दुखान्त दृश्य हृदयको द्रवित करके रख देता है। सुख अस्थाई और दुःख स्थाई है। सुखकी घड़ियाँ लमहेभरको आती हैं और चली जाती हैं, दुःख जब आता है तो मरते दमतक साथ नहीं छोड़ता। दुःख-व्यथामें वह पीड़ा और कसक होती है कि शायर उनके व्यक्त करनेको मजबूर होता है। सुखमें यह सामर्थ्य कहाँ कि वह शायरको कहनेके लिए लाचार कर सके।

मेरे रोनेका जिसमें क़िस्सा है।
उम्रका बहतरीन हिस्सा है॥
—जोश मलीहाबादी

हज़ार ऐशकी सुबहें निसार हैं जिसपर।
मेरी हयातमें ऐसी भी इक शबेग़म है॥
—असर

इससे बढ़कर दोस्त कोई दूसरा होता नहीं।
सब जुदा हो जायें, लेकिन ग़म जुदा होता नहीं॥
—जिगर मुरादाबादी

लखनवी शायरोंने निराशाओं एवं असफलताओंका कभी मुँह नहीं देखा। जिन दिनों बादशाहत मिट रही थी, दिल्ली उजड़ रही थी, उन्हीं दिनों अवधकी नवाबी पूरे आबो-तावके साथ चमक रही थी। लखनऊके हर गली-कूचेमें लक्ष्मी थिरक रही थी। रक़्स-ओ-शराब, साक़ी-ओ-मुतरिब सर्वसाधारणके लिए सुलभ थे। भोग-विलास लखनवी जीवनका लक्ष था। दिनमें कहीं बटेरोंकी पालियाँ बदी जाती थी, तो कहीं तीतरोंकी कुश्तियाँ होती थीं। कहीं मुर्ग़ोंकी लड़ाइयाँ होती थीं तो कही कनकौओंके पेच होते थे। रातको कहीं कोकिलकंठी तवायफ़ोंके नग्मे गूँजते थे, तो कहीं मुशायरोंकी वाह-वा से कान पड़ी आवाज़ सुनाई न देती थी। कहीं रक़्सका वोह आलम होता था कि महफ़िलकी महफ़िल झूमती होती थी। शराब पी ही नहीं जाती थी, बहाई भी जाती थी। लखनवियोंकी हर ज़रूरियात संकेत मात्रमें पूर्ण होती थीं। लखनऊका शायर, ऐय्याश, शराबी और तमाशबीन था। छेड़-छाड़, चुहल, मस्ती, उसका रात-दिनका मशग़ला था।

देहलवी शायरोंने आपदाओंमें जवानियाँ गुज़ारी थीं। इसलिए उनकी शायरीमें रंजो-अलमकी टीस मिलती है। लखनवी शायरोंने

भोग विलासमें आँखें खोली थीं, इसलिए उनकी शायरीमें रंगीनियाँ रक़्स करती नज़र आती है।

१७८० ई० पूर्व ग़ज़लमें हबीबका तसव्वुर स्पष्ट नहीं था। वह स्त्री है या पुरुष यह निश्चय नही किया जा सकता था। क्योंकि हबीब चाहे स्त्री हो या पुरुष, उसके लिए, संज्ञा, विशेषण, क्रिया, सम्बोधन आदि सब स्त्री लिंग न होकर पुलिंग व्यवहृत होते थे। उदाहरण स्वरूप निम्न चार मिसरोंको लीजिये--

है ख़बर गर्म उनके आनेकी।

जमा करते हो क्यों रक़ीबोंको ?

तुझीको यहाँ जलवा-फ़रमा न देखा।

वोह मिलता भी कभी तनहा तो मैं तनहा न हुआ।

इन मिसरोंसे स्पष्ट नहीं होता कि ये स्त्री या पुरुष किस हबीबको तसव्वुर करके लिखे गये है। हबीबका अर्थ 'प्यारा' है। यानी जिसे प्यार किया जाय, वोह हबीब है। पुरुष किसी युवतीको प्यार करता है तो वह युवती उसकी हबीब हुई और यदि युवती पुरुषको प्यार करती है तो पुरुष युवतीका हबीब हुआ। यदि दोनों एक-दूसरेको चाहते-प्यार करते हैं तो दोनों एक-दूसरेके हबीब और आशिक़ हुए। हक़ीक़ी शायरोंका ख़ुदा हबीब होता है। अतः ग़ज़लके अशआर स्त्री-पुरुष दोनों ही समान रूपसे व्यवहारमें लाते थे, और शायर स्त्री हो या पुरुष अपनेको आशिक़ और अपने प्यारेको हबीब समझते थे। दोनों ही अपने लिए तथा हबीबके लिए पुलिंग शब्दोंका व्यवहार करते थे। नवाब आसफ़ुद्दौल्ला अपने हबीबके तसव्वुरमें इस तरह लिखते थे--

कोई बात तो हमारी भी मान, अब ख़ुदासे डर।
कबतक दिया करेगा हमें तू जवाब तल्ख़ ?

तो हिजाब बेगम भी यूँ हमकलाम होती थीं—

रक़ीबोंकी तो शबोरोज़ सुनते हो बातें।
हमारी भी तो कभी महलक़ा ! सुनो तो सही ॥
नहीं यह ख़ूब कि सुनते नहीं किसीकी तुम।
यह देखो तो कि मैं कहता हूँ, क्या सुनो-तो सही ॥

शायरीका यह ढंग तो बहुत अच्छा था कि हबीबका स्पष्ट संकेत न हो और स्त्री-पुरुष दोनों ही समानरूपसे लुत्फ़ अन्दोज़ हो सकें। मगर अच्छी चीज़में भी बुरे पहलू उसी तरह निकल आते हैं, जिस तरह गुलाबमें काँटे। इस शायरीमें बाज़ मनचलोंने छोकरोंको भी हबीब तसव्वुर करना शुरू कर दिया और बाज़ने उनके नाम अंकित करके, सब्ज़-ए-ख़त (ठोड़ीके बाल) टोपी, दस्तार आदिका उल्लेख करके स्पष्टतः छोकरेको हबीबका रूप दे दिया !

ग़ज़लमें सबसे पहले 'हसरत' ने[1] नवाब आसफ़ुद्दौलाके शासन-काल (१७७२-१७९७ ई०)में स्पष्टतः स्त्रीको हबीबका दर्जा दिया। तबसे लखनवी शायरीमें स्त्रियोचित बातोंका समावेश होने लगा। लेकिन परम्पराके अनुसार क्रिया, विशेषण, सम्बोधन आदि पुल्लिंग ही इस्तेमाल किये गये। यहाँ हम उदाहरण-स्वरूप प्रोफ़ेसर अन्दलीब शादानी द्वारा संकलित जून १९५१के निगारमेंसे ४१ अशआर सधन्यवाद दे रहे हैं—

परदानशीं हबीब

क़रार— शायद कि कोई परदानशीं झाँक रहा है।
आज आई नज़र रोज़ने-दीवारकी[2] आँखें ॥

---

[1]हसरत देहलीके रहनेवाले थे, मगर लखनऊ जाकर रहने लगे थे और वहीं इन्होंने इस रंगका आविष्कार किया था।

[2]दीवारके झरोखोंमेंसे आँखें दिखाई दीं।

आग़ा— नज़र पड़ी है तेरी जबसे पटकी आड़में आँख।
लगी ही रहती है, ऐ बुत! मेरी किवाड़में आँख॥

गरमाँ— हम आये तो चिलमनमें[1] लगाये गुले-नरगिस[2]।
दरपरदा दिखाता है वोह रश्के-चमन आँखें॥

नज्द— लिल्लाह झरोकोंसे दिखा जाइये सूरत।
मुश्ताक़ हैं अब जलवए-दीदारकी आँखें॥

कैफ़— निगाहे-आशिक़े-मुश्ताक़ पहुँच जाती है।
लाख घूँघटको करे यार हिसारे-आरिज़[3]॥

मुहसन— हमसे कन्धा जो बदल लें तेरी डोलीके कहार।
अर्शे-आलासे[4] भी ऊँचा हो हमारा शाना[5]॥

यह परदा, चिलमन और किवाड़ोंकी ओटमें ताक-झाँक, यह रोज़ने-दीवारो-दर और झरोखोंसे नज़र बाज़ियाँ और यह डोलीकी सवारी, परदादार हबीबका स्पष्ट संकेत करती है। इस तरहके हयापरवर हबीबके तसव्वुरके बजाय लखनवी शायरीमें बाज़ारी-हबीबका उल्लेख बहुत अधिक मिलता है।

बाज़ारी-हबीब

सुहबत— हो गया हमको जुनूँ टुकड़े गरेबाँको किया।
रख लिया उसने दमे-रक़्स[6] जो दामाँ[7] सरपै॥

---

[1]तीलियोंके परदेमें; [2]नरगिसका फूल; [3]कपोलको घूंघट रूपी क़िलेमें छुपाना; [4]आकाशसे; [5]काँधा; [6]नाचते समय; [7]दुपट्टेका पल्ला।

हस्साम— बेहिजाबीमें भी परदा ही रहा आशिक़से।
रक़्समें भी नज़र आये, तहेदामाँ-आरिज़[1] ॥

फ़रोग़— क्या ख़ुशनुमा बनाये हैं हक़ने तुम्हारे हाथ।
करते ब-वक़्ते-रक़्स हैं क्या-क्या इशारे हाथ ॥

तासीर— हाथोंको नाचमें जो मुकर्रर[2] उठाइये।
दरियाए-हुस्न आपका बढ़ जाये चार हाथ ॥

रक़ीब— वक़्ते-रक़्स आगे बढ़ा, रखके वोह जब हाथपै हाथ।
ग़श हुए, लोट गये, मारके सब हाथपै हाथ ॥

शहीद— दस्ते-रंगीं[3] जब कि दिखलाई दिया हंगामे-रक़्स।
शमए-महफ़िल जल गई, उस ख़ुश अदाके हाथसे ॥

सैर— कंगन चमकते हैं जो दमे-रक़्स हाथोंके।
हैं अहले-बज़्मके लिए बिजली कलाइयाँ ॥

वज़ीर— चल रहे हैं पाँवके बिछवे अजब हंगामे-रक़्स।
करती हैं ख़ूँरेज़ियाँ[4] हर-हर क़दमपर उँगलियाँ ॥

मुज़तर— वोह हाथ उठा-उठाके यह कहते हैं रक़्समें।
"मुज़तर करें तो अब कोई हमसे बचाये दिल ॥"

महर— नाचका हुस्न बढ़ गया दूना।
लचके सब ऐ हसीन कमर-कूले ॥

---

[1]घूँघटके अन्दर कपोल; [2]दुबारा; [3]मेंहदी रचा हाथ; [4]रक्तपात।

सरूर— करते हैं सहर[1] रक़्समें उस गुलबदनके पाँव।
क्या-क्या समाँ दिखाते है, ताऊस[2] बनके पाँव॥

सालक— इस अदासे बज़ममें रक़्साँ हुआ वोह रश्के-माह[3]।
बन गया घुँघरू हर इक चश्मे तमाशा पाँवमें॥

नासिख़— रक़्समें आती नहीं यह तेरे घुँघरूकी सदा[4]।
करते हैं आसूदगाने-ख़ाक[5] शेवन[6] ज़ेरे-पा[7]॥

सग़ीर— सियाही पुतलियोंकी यह भी इक परदा है ज़ाहिरका।
फिरा करती है तेरी सुरमई फ़िशवाज़ आँखोंमे॥

नासिख़— आवाज़ यह होती नहीं ज़िनहार गलेमें।
समझो न रगे, साज़के है तार गलेमें॥

मोहसन— बेहाल कर दिया मुझे गानेने आपके।
ले है बलाकी, क़हरका खटका गलेमें है॥

लखनऊके इस दौरकी सोसायटीके बाज़ पहलुओंपर निम्न लिखित अशआ़रसे रोशनी पड़ती है—

बर्क़— नीचे हम बैठे है कोठेपै अलग सुहबत है।
अब तो होते है सितम ऐ गुले-ख़न्दाँ सरपर॥

ख़ल्क़— फिर हाथमें है हाथ सरे चौक ग़ैरका।
निकले है रफ़्ता-रफ़्ता फिर उस सीमतनके पाँव॥

---

[1]जादू; [2]मोर; [3]जिसके सौन्दर्यके आगे चन्द्रमा भी ईर्ष्या करे; [4]आवाज़; [5]मिट्टीमें मिले हुए, मुर्दे; [6]नाले; [7]पाँवके नीचे।

अमानत—— ग़ैरोंके नशे बज़ममें क्या-क्या हिरन हुए।
हाथ उसने जब रखा, मेरे मस्ताना दोशपर॥

नासिख़—— लोगोंमें होंट चूम लिये हमने, क्या किया?
ग़ुस्सेसे क्यों न दाँत तले वोह दबाये होंट?

मोहसन—— माँगा जो मैंने बोसये-लब बज़मे-ग़ैरमें।
त्योरी चढ़ाई दाँतसे उसने दबाके होंट॥

सहर—— अपनी जगहपै देख सकेंगे न ग़ैरको।
जाया करेंगे और ही रस्तेसे सैरको॥

धीरे-धीरे यही स्त्रियों सम्बन्धी शायरी ज़नानी शायरी बनती गई, बजाय इसके कि शायरीमें स्त्रियोचित उच्च भावनाओंका समावेश करते, उनके वास्तविक पवित्र-प्रेमका उल्लेख करते। स्त्री जिसकी एक बार हो जाती है, वह चाहे जैसा भी गया-बीता हो, उसे उम्रभर निभाती है। अपाहिज, रोगी, निखट्टू, अनाचारी पतिको भी ईश्वर तुल्य समझती है और उसीकी सेवा और यादमें समाप्त हो जाती है। इसके विपरीत लखनवी शायरोंने उसके कुत्सित रूपका वर्णन किया। उन्हें नारीके अन्दर माँ, बहन, पत्नी, प्रियतमाकी उज्वल एवं महान आत्माओंके दर्शन नहीं हुए। उन्होंने वेश्याके उस घिनौने रूपको देखा, जिसे उसने शृंगारिक वस्तुओंसे छुपा रखा था। अतः लखनवी शायरोंके यहाँ——जुल्फ, काकुल, जूड़ा, चोटी, कंघी, शीशा, सुर्मा, मिस्सी, ग़ाज़ा (पाउडर), मेंहदी, फूल, सिन्दूर, पान, इत्र—— आदि शृंगारिक वस्तुओंके अशआर बहुत अधिक संख्यामें मिलते हैं। यहाँ नमूनेके तौरपर हर चीजका सिर्फ़ एक-एक शेर दिया जा रहा है।

शृंगारिक

मोहसन— हफ़्ते भरमें उन्हें फ़ुरसत नहीं इन सातोंसे—
पान, इत्र, आइना, मँहदी, मिस्सी, सुर्मा, शाना[1] ॥

सहर— हथेली सफ़ाईसे आईना है।
मलो मिस्सी देखो धरी हाथमें ॥

अली— कहकशाँ[2] दिखलाती है जलवा शबे-तारीकमें[3]।
ख़त नहीं सेंदूरका ऐ जानेजाँ ! बाला-ए-सर ॥

बहर— ग़ाज़ेसे[4] लालाज़ारे-शफ़क़को[5] ख़िजल[6] किया।
अफ़्शाँ[7] चुनी तो चाँदनीका खेत कट गया ॥

ज़ेवरात

उन दिनोंके प्रचलित सभी ज़ेवरातपर लखनवी शायरोंने तबा आज़माई की है। उन ज़ेवरातकी सूची और अशआ़रको देखकर यह मालूम होता है कि हम शेर नहीं पढ़ रहे हैं, सर्राफ़ा-बाज़ारमें बैठे हैं। बतौर नमूना चन्द अशआ़र मुलाहिज़ा हों—

नासिख़— चम्पाके फूलमें है न गुलकी कलीमें है।
जैसी तेरे गलेकी है, चम्पाकलीमें बू ॥

करते हैं आलमको जिसके पाँवके बिछवे शहीद।
उस सितमगरकी बला लेती है ख़ंजर हाथमें ॥

अजी यह अर्शे-मुअ़ल्लाके गोशबारेका।
गुहर[8] कहाँसे तुम्हारे बुलाक़में आया ?

---

[1]कंघा ; [2]बिजली; [3]अँधेरी रातमें; [4]पाउडरसे; [5]सन्ध्याकालीन लालिमाको; [6]शर्मिन्दा; [7]गोटे वग़ैरहके कटे हुए बारीक टुकड़े जो दुलहनोंके मुँहपर चुनते है; [8]मोती।

बहर— पहने जो मोतियोंके करनफूल यारने।
तारोंपै ओस पड़ गई, ख़ोशा[1] ठिठुर गया॥

लख़्ते-जिगरसे मेरे क़ीमतमें बढ़ चले थे।
झूठे पड़े नगीने सब उसके नौरतनमें॥

लिबास

रंग-बिरंगे दुपट्टे, ओढ़ने, पायजामे, नेफ़े, कुरती, अँगिया, आदिके चन्द नमूने—

सहर— मिसले-कमर लचकती हैं दोनों कलाइयाँ।
भारी है पाँयचे दमे-रफ़्तार हाथमें॥

इश्क़ी— ग़ज़ब नैरंगे-अक्स आरिज़े-रंगींने[2] दिखलाया।
सुनहरा था दुपट्टा, हो गया गुलनार काँधेपर॥

बहर— महरमके सितारे टूटते हैं।
पिस्ताँके अनार छूटते हैं॥

नासर— सुर्ख़ पाजामा है, गोटा हर कलीमें है लगा।
फूलकी छड़ियाँ हैं उस रश्के-चमनकी पिण्डलियाँ॥

जरी— मूबाफ़े-ज़र[3] लपेट दिया मुँहके अक्सने।
गरदनपै आके बन गई गोटेका हार ज़ुल्फ़॥

शारीरिक

हबीबके जिस्मके हर हिस्से—सीना, छातियाँ, नाभि, पेट, कमर,

---

[1]अन्नकी बाली, गुच्छा; [2]रंगीन कपोलोंने; [3]वह फ़ीता जो औरतें चोटीमें लपेटती हैं।

H2261

नितम्ब, रान, पिंडली—का उल्लेख लखनवी शायरोंने बहुत ही अश्लील और कुरुचिपूर्ण ढंगसे किया है। इनमें सिर्फ़ नौजवान शायर ही नहीं, बल्कि उस्ताद और बुज़ुर्ग शायर भी हैं। सभ्यता इजाज़त नहीं देती कि उदाहरणस्वरूप इस तरहका एक शेर भी पेश किया जाय। इन अश-आरको पढ़कर ऐसा मालूम होता है, जैसे कोई जंगली औरत ज़ेवर आदिसे सजकर बाज़ारमें नंगी खड़ी हो।

दाख़िली-ख़ारिजी शायरी

उक्त ज़नानी शायरीके अतिरिक्त लखनऊमें ख़ारजी शायरीको बहुत फ़रोग़ मिला। इसके बानी-मु-बानी 'नासिख़' हुए हैं। हृदयगत भावोंकी शायरीको दाख़िली शायरी कहते हैं। दाख़िली शायरी अकृत्रिम और स्वाभाविक होती है। इसे सुनकर हृदय-तंत्रीके तार झंकृत हो उठते हैं और उनसे 'आह'की ध्वनि निकलती है। दाख़िली शायरी देहलवी स्कूलकी देन है, इसलिए इसे देहलवी शायरी भी कहते हैं। इसके नमूने यहाँ देनेकी आवश्यकता नहीं। मीर, दर्द, ग़ालिब, मोमिन आदि सैकड़ों देहलवी शायरोंके कलाममें ऐसे नमूने देखे जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त प्रस्तुत भागके कई लखनवी शायरोंके यहाँ इस तरहका कलाम काफी मिलेगा। क्योंकि वर्त्तमान युगमें ख़ारिजी रंगमें शायरी करना क़तई बन्द हो गया है, और वर्त्तमानमें प्रायः सभी लखनवी शायर दाख़िली रंगमें कहते हैं।[1]

ख़ारिजी शायरी मस्तिष्ककी शायरी है, दिमाग़से सोच-सोचकर अस्वाभाविक और कृत्रिम कल्पनाओंको शब्दाडम्बरोंद्वारा सजाकर

---

[1]प्राचीन देहलवी शायरोंका कलाम शेरोसुख़न प्रथम भागमें ३००-४०० पृष्ठोंमें बहुत अधिक संख्यामें दिया गया है। इसके अतिरिक्त तीसरा भाग केवल देहलवी स्कूलके शायरोंका होगा। जिसमें हज़ारों शेर दाख़िली रंगके होंगे।

पेश करना ख़ारिजी शायरी है। इसे सुनकर दिल तो वज्दमें नहीं आता, हाँ, इसकी ज़ाहिरा शानो-शौकत, टीप-टाप, नफ़ासत और लिबासको देखकर मस्तिष्क अवश्य झूम उठता है। ख़ारिजी शायरी लखनऊ स्कूलकी उपज है। इसलिए इसे लखनवी शायरी भी कहते हैं।

दाख़िली रंग, शायरीका आत्मा है तो ख़ारिजी रंग उसका कलेवर। हक़ीक़तमें शायरीके लिए दोनों ही ज़रूरी है। आत्मा कितना ही पवित्र और उन्नत हो, सड़े-गले कलेवरमें घिनावना ही मालूम देगा। इसी तरह बग़ैर प्राणका कलेवर कितना ही सजाया जाय दुर्गन्धित हो उठेगा।[1]

ख़ारजी रँगके चन्द उदाहरण

नासिख़—

रूठे हुए थे **आप कई दिनसे**, मनगये।
बिगड़े हुए **तमाम मेरे काम** बन गये॥

हंसते हो **सुनके मेरा हाल कहाँतक देखूँ**?
बे रुलाये **यह कहीं**, मर्सियाख़्वां **उठता है**?

मुझको बेगाना **समझे है, ज़ालिम**!
राह चलतेको आश्ना **जाने**!!

अव्वल तो न क़ासिदको **रहे** कुए-सनम **याद**।
पहुँचे तो फ़रामोश **हो** पैग़ाम **हमारा**॥

तमाम उम्र यूँ ही हो गई बसर अपनी।
शबे-फ़िराक़ **गई**, रोज़े-इन्तज़ार **आया**॥

---

[1] ख़ारिजी-दाख़िली शायरीका उल्लेख यहाँ हम जानबूझकर संक्षिप्तमें कर रहे हैं, क्योंकि प्रथम भागमें पृ० २४८-२७२में विस्तारसे दे चुके हैं।

भूलकर भी चाँदके टुकड़े ! इधर आ जा कभी ।
मेरे वीरानेमें भी हो जाये दमभर चाँदनी ।।

न सज्दये दरेजानाँसे सर उठाऊँगा ।
यह वोह नमाज़ है जिसका कभी सलाम नहीं ।।

हश्रतक जीमें है, बेहोश रहूँ मैं साक़ी !
काश मै भरदे मेरे उम्रके पैमानेमें ।।

'नासिख़' ! शराब पी, शबे-तारीक हो तो हो ।
रोशन है, सहने-बाग़में हरसू चराग़े-गुल ।।

हर तरफ़ मसरूफ़ ज़ाहिद हैं, नमाज़े-सुबहमें ।
गरदने-मीनाको भी लाज़िम है अब ख़म कीजिये ।।

एक हफ़्तेसे बहम सातों मयस्सर हैं मुझे ।
दश्त, दरिया, सब्ज़ा, साक़ी, शीशा, साग़र, चाँदनी

आती-जाती है जा-बजा बदली ।
साक़िया जल्द आ, हवा हवा बदली ।।

खलील —

सुन लीजिये ज़रा मेरे अश्कोंका माजरा ।
इन मोतियोंको भी कभी कानोंमें डालिये ।।

सबा—

उनकी रफ़्तारसे दिलका अजब अहवाल हुआ ।
रुँध गया, पिस गया, मिट्टी हुआ पामाल हुआ ।।

रिन्द—

बाक़ी है अभी असर जुनूंका।
सौदा तो गया है, झक रही है॥
लैला मजनूंका रटती है नाम।
दीवानी हुई है, बक रही है॥

सबा—

बेतकल्लुफ़ उससे होकर क्यों न हों महजूज[1] हम।
तोड़कर परहेज़ होता है बहुत बीमार खुश॥

अमीर मीनाई—

सैयाद ! मैं तो तायरेरफ़अतपसन्द[2] हूँ।
लटका मेरे क़फ़सको तू शाख़े-हिलालसे[3]॥

ग़ैरोंको फाड़ खाय सगेयार[4] तो कहूँ।
"ऐ शेर, वाह, तू ही तो शेरोंका शेर है॥"

रंगीन—

पहुँचे हम जिस शहरमें पूछा यह अहले-शहरसे—
"ख़ूबरूओंकी[5] यहाँ बिकती हैं, तसवीरें कहाँ ?"

पढ़ाई थी पट्टी उन्हें ग़ैरने।
मेरा ख़त वह क्यों नामाबर देखते ?

बर्छीका काम कर गई अर्ज़ी रक़ीबकी।
तेरी नज़रसे मेरे जिगरसे गुज़र गई॥

---

[1]खुश; [2]ऊँचा उड़ने वाला पक्षी; [3]दोजके चाँदसे;
[4]प्रेयसीका कुत्ता; [5]सुन्दरियोंकी।

करता हूँ याद शामसे अवरुए-यारको।
ख़ंजरसे काटता हूँ, शबे-इन्तजारको॥

उठाते हो तो फिर सबको उठा दो।
यह चिलमन किसलिए दरपर पड़ी है?

दरपर पड़े हुओंपै ग़ज़बका अताब है।
परदे भी आज बाँधके लटकाये जाते हैं॥

उछाला गेसुओंने नाम कैसा पाके आरिजको।
ज़मीने-हुस्नपर छाये हुए हो, आस्माँ होकर॥

तेरी पलकोंसे थीं वाबस्ता उम्मीदें दिलकी।
आँख क्या तेरी फिरी, फिर गई झाड़ू दिलमें॥

ले उड़ी घूँघटके अन्दरसे निगाहे-मस्तहोश।
आज साक़ीने पिलाई है हमें छानी हुई॥

आँखमें डोरोंका आलम देखिये।
यह नया आह असीरे-दाम है॥

नहीं कटती तो कहता है सितमगर—
"यह गरदन है कि फुरक़तकी घड़ी है॥"

जलाल —

क़हक़हा मारे उदू इसकी नहीं ताब, ऐ यार!
रोक लेते हम अगर तोपका गोला होता॥

देखे जो आईना भी शबाव उस जमीलका।
दिलमें चुभे उभार मुहामोंकी कीलका॥

ग़ैरसे सीना-वसीना हुए, तुम ।
छातीपर साँप यहाँ लोट गया ।।

सब उसके गेसुओंकी शिकनमें असीर है ।
हम माँगकी लकीरके ऐ दिल फ़क़ीर हैं ।।

ऐसे खूँख़्वार है उस तुर्कके मूएमिज़गाँ ।
कि तसव्वुरसे यहाँ रोएँ खड़े होते हैं ।।

यारका बोसये-लबे-शीरी ।
अब तो बाज़ारकी मिठाई है ।।

समझे यह हम जो रातको तारे चमक गये ।
वरक़े-सियहपर अपने फ़लक खन्दाजन हुआ ।।

दिलको लगाके कूचये-गेसूमें ले चला ।
आहूए-चश्मेयार[1] तिलस्मी हिरन हुआ ।।

पीरीमे आरज़ूए-जवानी जो हमने की ।
ऐसा दिया जवाब कि दन्दाँशिकन[2] हुआ ।।

नासिख़—

मिल गया ख़ाकमें पिस-पिसके हसीनोंपर मैं ।
क़ब्रपर बोयें कोई चीज़ हिना[3] पैदा हो ।।

मुनीर—

नाक़ये-लैलाकी[4] क्या सहराये-मजनूँमें[5] बिसात ।
अज़दहे-वहशतके[6] मुँहमें ऊँट जीरा हो गया ।।

---

[1]प्रेयसीके हिरन रूपी नेत्र; [2]दाँत टूट गया; [3]मेंहदी;
[4]लैलाकी उंटनीकी; [5]मजनूँके जंगलमें; [6]उनमाद रूपी अजगरके ।

शादी है दुख़्ते-रिज़से[1] किसी दीं परस्तकी।
तौबाके दरपै बजती है घण्टी शिकस्तकी॥

शरफ़—

रमाके धूनी जो बैठा हूँ माँगपर उसकी।
इसी लकीरका मुझको फ़क़ीर होना था॥

अमानत—

आँसू रवाँ है जुल्फ़े-सियहके ख़यालमें।
मोती पिरो रहा हूँ तेरे बाल-बालमें॥

क़ल्क़—

ऐसे दीवाने हों सर संगसे[2] फोड़ें अपना।
कभी बादाम जो देखें तेरी प्यारी आँखें॥

अमीर मीनाई—

वे करते हैं बातें अजब चिकनी-चिकनी।
यह मतलब कि चौपट हो कोई फिसलकर॥

हज़ारों ख़ार लाखों फूल उस गुलशनमें हैं लेकिन—
न तुम-सा नाज़नी कोई न हम-सा नातवाँ कोई॥

उक्त अशआ़रमें शब्दोंके रख-रखाव और मुनासिबतके अतिरिक्त कोई ऐसे हृदयस्पर्शी भाव नहीं हैं, जिन्हें पढ़-सुनकर कुछ क्षणके लिए मनुष्य अपनेको भूल जाय। इन्हें पढ़ते हुए स्पष्ट प्रतीत होता है कि एक शब्दके मुक़ाबिलेमें दूसरा शब्द रखने और शायराना करतब दिखानेके

---

[1]मदिरासे, अंगूरकी बेटीसे; [2]पत्थरसे।

लिए ही इस बाग्जालकी रचना हुई है। **रूठे हुएके** लिए **मनगये, बिगड़े हुएके** लिए **बनगये,** इसी तरह सफेद टाइपमें दिये गये अन्य शब्दोंको एक दूसरेके मुक़ाबिलेमें इस तरह बिठाया है, जैसे कठपुतलीके खेलमें पहलवान सजे बैठे हों।

रंगीन, अश्लील और ख़ारजी शायरीके अतिरिक्त लखनवी शायरोंने अतिशयोक्तिपूर्ण अस्वाभाविक कलाम बहुत कहा, और ये सब रंग लखनऊ तक ही सीमित न रहकर समस्त उर्दू-संसारमें फैल गये। मुसहफ़ी—जैसा संजीदा देहलवी शायर लखनऊ पहुँचनेपर इस तरहके रंगीन-अश्लील शेर कहनेपर मजबूर हो गया—

आया लिये हुए जो वोह कल हाथमें छड़ी।
आते ही जड़ दी पहली मुलाक़ातमें छड़ी॥

पानी भरे है यारो वाँ करमजी दुशाला।
लुंगीकी सज दिखाकर सक़नीने मार डाला॥

देहलवी शायर सौदा, नसीर, ज़ौक़ तो ख़ारिजी रंगमें कहते ही थे। मोमिन-ओ-ग़ालिब जैसे देहलवी शायर भी शुरू-शुरूमें ख़ारिजी रंगसे मुतास्सिर हो गये थे। वह तो ख़ैर गुज़री जो जल्दी सँभल गये, वरना आज ग़ज़लका न जाने क्या रूप हुआ होता?

कहनेको दाग़ देहलवी शायर थे, मगर उनका कलाम पूर्णरूपेण लखनवी रंगीन शायरीमें सराबोर है। वे ग़ालिब-ओ-मोमिनकी शायरीके बजाय इंशा-ओ-जुरअतके अधिक नज़दीक हैं। यह बात दूसरी है कि देहलवी ज़बान, मुहावरे एवं अपने मख़सूस अन्दाज़े-बयान, और तर्ज़े-अदाकी बदौलत सर्वत्र छा गये और उनका अनुकरण करनेको तत्कालीन लखनवी उस्ताद भी मजबूर हो गये।

इस तरहकी रंगीन ख़ारिजी और अश्लील शायरीने लखनऊको बहुत बदनाम किया। उर्दू-शायरीके सौभाग्यसे १८५७ के विप्लवमें लखनऊकी नवाबी भी चौपट हो गई। जो लखनवी शायर कौसरो-तसनीमके धारेमें बहे जा रहे थे, वे विप्लव रूपी मौजोके तमाचे खाकर हाथ-पाँव मारनेको मजबूर हो गये। किनारेपर आकर उन्होंने देखा कि वे सचमुच मजनूँ मालूम होते हैं, उनका गरेबान वाकई तार-तार हो गया है और जल्द न सँभले तो उनका नातवाँ जिस्म दुनियाके थपेड़े खाकर बरकरार नहीं रह सकेगा।

लखनऊको पुरानी और नई शायरी

सौभाग्यसे उन दिनों रामपुरके नवाब भी बहुत बड़े अदब-नवाज़, और सुखन-फ़हम थे। शनैः शनैः मुसीबतके मारे देहलवी-लखनवी शायर यहाँ एकत्र हो गये। दिन-रातकी अदबी-सुहबतों और मुशायरोंमें एक साथ सम्मिलित होनेसे परस्पर विचारोंके आदान-प्रदानसे सबने यह महसूस किया कि अब जुरअत-ओ-इंशाकी रंगीन, नासिखकी ख़ारिजी और अतिशयोक्तिपूर्ण शायरीका ज़माना लद गया। अब तो दाखिली एवं स्वाभाविक शायरीका ही युग है। जो युगके विपरीत चलेगा खता खायेगा। चुनाचे देहलवी-लखनवी स्कूलोकी दीवारें ढाकर एक ऐसा विश्वविद्यालय बना दिया गया, जहाँ भिन्न-भिन्न प्रान्तके स्नातक एक ही प्रकारका कोर्स पढ सकें।

लखनऊके पुराने उस्ताद शेरके बाह्य सौन्दर्य्यपर जान देते थे, वर्त्तमान शायर शेरके अन्तरंगमें प्राण फूँकता है और बाह्यरूप भी सुरुचिपूर्ण रखता है। पुराने शायरोंमे ज़ाहिरा शानो-शौकत, रोब-दाबका बहुत ख़याल रखा जाता था। नया शायर अपने समूचे व्यक्तित्वको इस तरह बनाता है कि उसका हर संकेत वा असर होता है।[1]

---

[1]प्रस्तुत खण्डमें वर्त्तमान युगीन लखनवी शायरोंमें दोनों ही तरहके पुराने और नवीन शायरोंका परिचय मिलेगा।

'सीमाब' ग़ज़लगोई अब इसके सिवा क्या है ?
बेफ़स्लका इक नग़मा, बेवक़्तकी शहनाई !

ग़ज़लकी मुख़ालफ़त

पहले-पहल ग़ज़लके प्रति विद्रोही झंडे 'हाली' और 'आज़ाद'ने खड़े किये। हाली, 'ग़ालिब'के और आज़ाद, 'ज़ौक़'के शिष्य थे। दोनों ही ग़ज़लके माने हुए उस्ताद हुए है। होना तो यह चाहिए था कि 'हाली' और 'आज़ाद' ग़ज़लको अत्यधिक मोहक और व्यापक बनाकर अपने उस्तादोंके योग्य उत्तराधिकारी शिष्य प्रमाणित होते, किन्तु यह उनकी योग्यता और सामर्थ्यके बाहर था। जिस बज़्मे-गुलशनमें मीर, आतिश, ग़ालिब, मोमिन, ज़ौक़ जैसे तूतिये-अदब नग़मासरा रहे थे, उस बज़्ममें नग़मा छेड़नेके लिए कलेजा कहाँसे लाते ? और उस वक़्त जो इनके समकालीन, फ़हाशी (अश्लील) और बेवक़्तकी रागिनी अलाप रहे थे, उससे भले आदमियोंकी नींदें उचाट थीं। हाली-ओ-आज़ादको यह हू-हक़ पसन्द न आया और तत्कालीन ग़ज़लगोईसे खीझकर उन्होंने बहुत ज़ोर-शोरके साथ ग़ज़लका विरोध किया। स्वयं ग़ज़लें लिखनी क़तई बन्द कर दीं और लेखों-व्याख्यानों द्वारा नज़्म लिखनेका प्रचार ही नही किया, स्वयं भी काफ़ी नज़्में लिखी।

१८५७ ई०के विप्लवके पश्चात मुसलमानोंकी जो दयनीय स्थिति हुई, उसने भी इस प्रचारमें सहायता दी। बादशाहत समाप्त हो गई। नवाब और रईस बरबाद हो गये। हज़ारों घर उजड़ गये, अनगिनत प्रतिष्ठित व्यक्ति तथा विद्वान सरेबाज़ार फाँसी चढ़ा दिये गये, दिल्लीकी फ़तहपुरी मसजिदमें घोड़े बाँध दिये गये और मुसलमान कुचल दिये गये।

कुचले हुए साँपकी जो प्रतिहिंसाकी भावना होती है, वही मुसलमानोंकी होनी चाहिए थी, जैसी कि हिन्दुओंकी हुई। यानी उनको मुसलमान

विजेताओंने विजित किया तो, उन्हें कभी चैनसे नहीं रहने दिया। बराबर संघर्ष करते रहे और अंग्रेज़ोंने कुचला तो इनके नाकमें दम बराबर रखा और आख़िर स्वाधीन होकर रहे। लेकिन मुसलमानोंकी यह प्रतिहिंसा देशके दुर्भाग्यसे जीहुज़ूरीमें परिणित हो गई। क्योंकि उन दिनों मुसलमानोंके प्रभावशाली नेता सर सैयद अहमद अंग्रेज़ी हुकूमतके बहुत बड़े हिमायती और हितैषी थे। वे अलीगढ़ यूनिवर्सिटीके जन्मदाता और प्राण थे। उन्होंने मुसलमानोंमें यह भावना भर दी कि "अंग्रेज़ सरकारके भक्त रहकर जितने भी अधिकार ले सको लेते रहो, अंग्रेज़ी शिक्षा प्राप्त करके उच्च-से-उच्च ओहदे प्राप्त करो, और इस तरह अपना राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक स्तर पड़ोसी जातियोंसे बुलन्द करो।" हाली और आज़ादने इनका हर तरहसे समर्थन किया और साथ भी दिया।

परिणाम इसका यह हुआ कि उर्दूका युवकवर्ग शनैः-शनैः नज़्मकी ओर आकर्षित होने लगा। यहाँ तक कि बहुत-से ग़ज़ल-गो शायर भी ग़ज़लको तिलाँजलि देकर नज़्मके क्षेत्रमें उतर गये, और नई पीढ़ीने तो ग़ज़लकी तरफ़ नज़र भरकर देखना भी उचित नहीं समझा।

इस विरोध और बहिष्कारसे ग़ज़लको प्रकट रूपमें तो बहुत बड़ा धक्का पहुँचा, किन्तु अंतरंगमें इससे लाभ ही हुआ। क्योंकि उस जीर्ण-शीर्ण ग़ज़लका कायाकल्प न हुआ होता तो वह आज इस तरह आबो-तावके साथ चमकती हुई दिखाई न देती। नये-नये अंकुरोंके विकासके लिए मुर्झाये हुए फूल-पत्तोंको नष्ट करना और ज़मीनको गोड़ते रहना अत्यन्त आवश्यक है।

जब दक्षिणमें उर्दू-शायरीका प्रारम्भ हुआ तो शुरू-शुरूमें प्रेमपूर्ण भावनाओंको सीधे-सादे शब्दोंमें व्यक्त किया जाता था। मुसलमान शायरोंने ईरानी ग़ज़लके ढंगपर शायरी शुरू की। लेकिन उनके सामने भारतीय कविताका मोहक रूप था। अतः उन्होंने भी सजन, पिया,

तत्कालीन शायरी

पपीहा आदि भारतीय पात्रों और भारतीय उपमाओं, उदाहरणोंका प्रयोग किया।[1]

चूँकि दक्षिणी मुसलमान शायर भी प्रायः ईरान और फ़ारससे आये थे और शायरी भी दक्षिणमें सीमित न रहकर दिल्लीतक व्यापक हो गई थी, तत्कालीन शायर प्रायः फ़ारसीके विद्वान थे, अतः बहुत शीघ्र ग़ज़लमें फ़ारसीका अनुकरण होने लगा।

नदीका उद्गम अत्यन्त सूक्ष्म और मन्दगतिसे होता है। उद्गम-स्थान-में वह तेज़ी और भयावह स्थिति नहीं होती, जो उत्तरोत्तर आगे बढ़नेपर होती है। शायरीका प्रारम्भ भी जब हुआ होगा तो स्वाभाविक और सरल ही हुआ होगा। मनकी भावनाओंको सीधे-सादे शब्दोंमें अकृत्रिम ढंगसे व्यक्त किया गया होगा। शनैः-शनैः उपमाओं-उदाहरणोंका प्रादुर्भाव हुआ होगा।

जिस हबीब (प्रियतम या प्रियतमा)को देखकर उसकी ओर मन आकर्षित हुआ होगा, उसे मनमोहन कहा गया होगा। फिर वही मन जब उसके लिए उचाट-सा या खिचा-खिचा-सा रहने लगा होगा, तब उस हबीबको चित-चोर भी कहा गया होगा, और कुछ इस तरहके भाव व्यक्त किये गये होंगे--

वही मैं हूँ 'असर' वही दिल है।
अब ख़ुदा जाने क्या हुआ मुझको ?

--असर देहलवी

ग़म है या इन्तज़ार है, क्या है ?
दिल जो अब बेक़रार है, क्या है ?

--सोज़

---

[1]इस तरहके उदाहरण शेरो-सुख़न भाग प्रथममें दिये जा चुके हैं।

हम तेरे इश्क़से तो वाक़िफ़ नहीं, मगर हाँ।
सीनेमें जैसे कोई दिलको मला करे है॥

——मीर

आगे चलकर यह दिल मलनेवाला हबीब, चित-चोर कहलाने लगा—

दिल ले गया है मेरा, वोह सीमतन[1] चुराकर।
शरमाके जो चले है, सारा बदन चुराकर॥

——मुसहफ़ी

इसी दिलको रफ़्ता-रफ़्ता मनचले शायरोंने ऐसी चीज़ तसव्वुर कर लिया, जो बा-आसानी जिस्मसे जुदा किया जा सकता है। उसके चाहे जितने टुकड़े किये जा सकते हैं। वे टुकड़े फिर जोड़े भी जा सकते हैं। दिल नक़द या उधार बेचा भी जा सकता है। चोरी भी किया जा सकता है, पाँवके तले कुचला भी जा सकता है।

अख़्तर— सौ टुकड़े हो गया न सुनी हमने पर सदा।
क्योंकर न जीको भाये, अदाये-शकिस्ते दिल?

बातोंमें बना लेवे जो टूटे हुए दिलको।
यह सहर[2] है, एजाज़[3] है या शीशागरी[4] है॥

नासिख़— जो दिलको देते हो 'नासिख़'! तो कुछ समझकर दो।
कहीं ये मुफ़्तमें देखो न माल तलपट हो॥

आतिश— किसीने मोल न पूछा दिले-शिकस्ताका।
कोई ख़रीदके टूटा पियाला क्या करता?

---

[1]गोरा-चिट्टा; [2]जादू; [3]सम्मोहन शक्ति; [4]शीशेको जोड़नेकी कला।

बहर— मेरा दिल किसने लिया नाम बताऊँ किसका ?
मैं हूँ या आप हैं, घरमें कोई आया न गया ॥

रिन्द— फेंक दूँ दिलको अभी, चीरके पहलू अपना ।
तुझपै क़ाबू नहीं, दिलपर तो है क़ाबू अपना !

ज़ौक़— हाथ आये किस तरहसे दिले-गुमशुदाका खोज ?
है चोर वोह कि जिसपै किसीका भरम नहीं ॥

वोह दिलको चुराकर लगे जो आँख चुराने ।
यारोंका गया उनपै भरम और ज़ियादा ॥

अमानत— गुमाँ न क्योंकि करूँ तुझपै दिल चुरानेका ?
झुकाके आँख, सबब क्या है मुसकरानेका ?

तसलीम— तड़पते देखता हूँ जब कोई शय ।
उठा लेता हूँ, अपना दिल समझकर ॥

अमीर मीनाई—

बराबर आईनेके भी न समझे क़द्र वोह दिलकी ।
इसे ज़ेरे-क़दम रक्खा, उसे पेशे-नज़र रक्खा ॥

निज़ाम रामपुरी—

तू भी उस शोख़से वाक़िफ़ है, बता कुछ तो 'निज़ाम'!
मुझसे दिल माँगे तो इंकार करूँ या न करूँ ?

दाग़— मैंने जो माँगा कभी दूरसे दिल डर-डरकर ।
उसने धमकाके कहा—"पास तो आ, देते हैं ॥—"

मोमिन— बात करनेमें रक़ीबोंसे, अभी टूट गया ।
दिल भी शायद उसी बदअहदका पैमाँ होगा ॥

दर्द— किसीसे क्या बयाँ कीजे उस अपने हाले-अबतरका[1] ।
दिल उसके हाथ दे बैठे, जिसे जाना न पहचाना ।।

असर देहलवी— कुछ न पूछो निपट ही मुश्किल है ।
औरके हाथमें मेरा दिल है ।।

नहीं मालूम दिलपै क्या गुज़री ?
इन दिनों कुछ ख़बर नहीं आती ।।

यक़ीन— दिल छोड़ गया हमको, दिलबरसे तवक़्क़ोह क्या ?
अपनेने किया यह कुछ, बेगानेको क्या कहिये ?

बेदार— देता नहीं दिल लेके वोह मग़रूर किसीका ।
सच है कि न ज़ालिमपै चले ज़ोर किसीका

ज़िया— मैंने कल पूछा 'ज़िया'से दिल किधरको खो दिया ।
उसने कूचेको तेरे बतलाके टपसे रो दिया ।।

अहसन— दिलको खोया है कल जहाँ जाकर ।
जीमें है आज जी भी खो आऊँ ।।

बयान— साफ़ मुँहपर मैं नहीं कहता कि होगा उसके पास ।
वरना क्या वाक़िफ़ नहीं मैं दिल है मेरा किसके पास ।।

मुसहफ़ी— 'मुसहफ़ी' हम तो यह समझे थे कि होगा कोई ज़ख़्म !
तेरे दिलमें तो बहुत काम रफ़ूका निकला ।।

हबीबकी नज़रोंमें दिलको बेक़रार-ओ-बेचैन करनेकी शक्ति होनेके

---

[1]शोचनीय अवस्थाका ।

कारण, उसकी भवोंको धनुष, पलकोंके बालोंको तीर और तिर्छी-चितवनको कटारसे उपमा दी गई। चित्तको आकर्षित करने या दिलको घायल करनेवाली इस अदाके सम्बन्धमें ग़ालिब किस सादगीसे फ़र्माते हैं—

इस सादगीपै कौन न मर जाये ए ख़ुदा।
लड़ते हैं और हाथमें तलवार भी नहीं!

ज़ौक़ किस भोलेपनसे दरियाफ़्त करते हैं—

तुफ़ंगो-तीर तो ज़ाहिर न था कुछ पास क़ातिलके।
इलाही, फिर जो दिलपै ताकके मारा तो क्या मारा?

और इस वारका क्या हश्र हुआ, यह भी ज़ौक़की ज़बानी सुनिये—

निगहका वार था दिलपर, तड़पने जान लगी।
चली थी बर्छी किसीपर, किसीके आन लगी!

इसी भावको 'दर्द' किस ख़ूबीसे व्यक्त करते हैं—

अन्दाज़ वोही समझे मेरे दिलकी आहका।
ज़ख़्मी जो हो चुका हो किसीकी निगाहका॥

और वज़ीरका अन्दाज़े-बयान मुलाहिज़ा हो—

तिर्छी नज़रोंसे न देखो आशिक़े-दिलगीरको।
कैसे तीरन्दाज़ हो? सीधा तो कर लो तीरको॥

इन्हीं आकर्षित करनेवाली अथवा दिलको घायल करनेवाली अदाओं-को लेकर शायरोंने राईका पर्वत बना डाला। उसे क़ातिल, जल्लाद और क़स्साबसे भी घिनौना रूप दे डाला।

ज़ौक़— ज़िबह करनेको मेरे पूछते क्या हो तदबीर।
तुम छुरी फेर भी दो, नाम ख़ुदाका लेकर॥

उतारा तूने तो सर तनसे इस शामतके मारेका।
अरे अहसान मानूँ सरसे मैं तिनका उतारेका॥

मोमिन— ख़बर नहीं है कि उसे क्या हुआ? पर इस दरपर।
निशाने-पा नज़र आता है नामाबरका-सा॥

तू किसीका भी ख़रीदार नहीं पर, ज़ालिम!
सर फ़रोशोंका तेरे कूचेमें बाज़ार लगा॥

जवाबे-ख़ूने-नाहक़ मेरा ऐसा क्या दिया तूने?
कि ज़ालिम! रह गये मुँह लेके सब अहबाब अपना-सा॥

दाग़— सर काटकर लगाते हैं, गरदनके साथ फिर।
कुछ रह गई है उनको हविस इम्तहानकी॥

महफ़िले-यार कस्साबकी दुकान मालूम होती है—

क़रीनेसे अजब आरास्ता क़ातिलकी महफ़िल है।
जहाँ सर चाहिए सर है, जहाँ दिल चाहिए दिल है॥

तेरी तलवारके क़ुर्बान ऐ सफ़्फ़ाक़! क्या कहना!!
इधर कुश्तेपै कुश्ता है, उधर बिस्मिलपै बिस्मिल है॥

प्रियतमाके रूपका बखान भी प्रारम्भमें स्वाभाविक हुआ होगा। फिर उसे गुलबदनी, हंसगामिनी, मृगनयनी, चन्द्रमुखी आदि भी कहा जाने लगा होगा।

ये जमालयाती शेर देखिये किस स्वाभाविक ढंगसे बयान किये गये हैं—

मीर— नाज़ुकी उसके लबकी[1] क्या कहिये ?
पंखड़ी इक गुलाबकी-सी है ॥

माथेकी बिन्दीका तसव्वुर देखिये—

दर्द— फैला है कुफ़्र याँ तक काफ़िर तेरे सबबसे ।
शमए-हरम भी दे है, माथेपै अपने टीका ॥

[अहले इस्लाममें बिन्दी या तिलक लगाना वर्जित है। फिर भी देखिये, उस प्रियतमाकी बिन्दीका इतना व्यापक अनुकरण हुआ है कि मसजिदमें जलते हुए चराग़से जो लौ ऊपरको उठ रही है, उसे लौ न समझो, वह तो शमए-हरम अपने माथे पै बिन्दी लगा रही है]

दर्द— बसा है कौन तेरे दिलमें गुलबदन ऐ 'दर्द' !
कि बू गुलाबकी आई तेरे पसीनेसे ॥

ताबाँ— जब पान खाके ज़ालिम गुलशनमें जा हँसा है ।
बे अख़्तियार कलियाँ, तब खिलखिलाइयाँ है ॥

जौक़— ग़ुंचे तेरी ग़ुंचादहनीको[2] नहीं पाते ।
हँसते तो हैं, पर तेरी हँसीको नहीं पाते ॥

क़ायम— क्यों न रोऊँ मैं देख ख़न्दये-गुल[3] ?
कि हँसे था वोह बेवफ़ा भी यूँही ॥

जलाल— रुख़े-रोशनसे[4] किसने उलटी नक़ाब ?
जल उठे दाग़ इक बुझे दिलके ॥

---

[1]ओठोंकी; [2]फूल जैसे मुँहको; [3]फूलोंकी मुसकानको; [4]प्रकाशमान चेहरेपरसे;

ममनून-- तबस्सुमे-लबेग़ुंचाको[1] देख रोता हूँ।
कि रंग है यह उसी ख़न्दये-निहानीका[2] ॥

दर्द-- जूँ चाहिए उस तरह बयाँ[3] हमसे न होगा।
कर अपने दहनसे[4] ही तू वस्फ़[5] अपनी कमरका ॥

कपोलके तिलकी कितनी अछूती कल्पना है।

अमीर मीनाई-- किसीने लफ़्ज़े-रुख़ बेनुक़्ता कब आलममें देखा है ?
न होता किस तरह नुक़्ता रुख़े-महबूबपर[6] तिलका ॥

[उर्दूमें रुख़के 'ख़'के ऊपर नुक़्ता लगता है। अतः माशूक़के रुख़ (कपोल)पर तिल रूपी नुक़्ता होना लाज़िमी था]

प्रियतमाका शर्मीलापन देखिये--

असर देहलवी-- पहले सौ बार इधर-उधर देखा।
जब मुझे डरके इक नज़र देखा ॥

मीर-- देख लेता है वह पहले चारसू अच्छी तरह।
चुपकेसे फिर पूछता है, "मीर तू अच्छी तरह ?"

प्रियतमाके इस जमालपर शायरोंने वोह रंगामेज़ी की कि उनके हस्त-कौशलके नीचे वास्तविक रूप तो दब गया और एक ऐसा बुत उभर आया, जिसे किसी भी हालतमें प्रियतमा या हबीब तसव्वुर नहीं किया जा सकता।

दुनियाभरके हथियारोंसे सुसज्जित, आँखोंमें क़ातिलाना डोरे पड़े हुए, आस्तीन खूनमें सनी हुई, क़यामतबरपा चाल, आशिक़ोंके दलके-दल जिस प्रियतमाके साथ हों, उसे कौन समझदार प्रियतमा बनानेको प्रस्तुत होगा ?

अज्ञात-- चढ़ाई है दिले-ग़मनाकपर लश्कर-के-लश्करकी।
छुरोंकी, तीरकी, तलवारकी, दश्नेकी, ख़ंजरकी ॥

---

[1]फूलोंकी मुसकराहटको; [2]छुपी हुई मुसकानका; [3]कथन; [4]मुखार-विन्दसे; [5]सौन्दर्य-वर्णन; [6]प्रियतमाके कपोलपर।

अमीर मीनाई—

क़रीब है यार रोज़े-महशर छुपेगा कुश्तोंका ख़ून क्यों कर ?
जो चुप रहेगी ज़बाने-ख़ंजर, लहू पुकारेगा आस्तींका ।।

यह सौन्दर्य-वर्णन देखिये जो असम्भव कल्पनाओंके कारण उपहासास्पद बन गया है—

असीर— **क्या नज़ाकत है, जो तोड़ा शाख़े-गुलसे कोई फूल ।**
आतिशे-गुलसे[1] पड़े छाले तुम्हारे हाथ में ।।

इंशा— **नज़ाकत उस गुले-रानाकी[2] देखिये 'इंशा' ।**
नसीमे-सुबह[3] जो छू जाये, रंग हो मैला ।।

अज्ञात— **सनम, सुनते हैं, तेरे भी कमर है !**
कहाँ है ? किस तरफ़को है ? किधर है ?

अफ़ज़ल— **हरचन्द जुस्तजूमें रहे साहबे-निगाह ।**
देखा जो दूरबीँसे न आई नज़र कमर ।।

(भला जिस प्रियतमाकी कमर ही दिखाई न दे, वोह भुतनीके सिवा और क्या होगी ?)

मुनीर शिकोहाबादी—

कुछ जवानी है अभी, कुछ है लड़कपन उनका,
वो दग़ाबाज़ोंके क़ब्ज़ेमें है जोबन उनका ।।

ग़ालिब— **शबको[4] किसीके ख़्वाबमें[5] आया न हो कहीं !**
दुखते हैं आज उस बुते-नाज़ुकबदनके पाँव !!

---

[1]फूलोंकी गरमीसे; [2]फूलन्दे सुकुमारीकी; [3]प्रातःकालीन मृदु पवन । [4]रात्रिको; [5]स्वप्नमें ।

दाग़— वोह दबे पाँव चले हश्रके डरसे, तौबा !
फ़िक्र है, चाल उड़ाले न क़यामत मेरी ॥
अपनी तसवीरपै नाज़ाँ हो तुम्हारा क्या है,
आँख नरगिसकी, दहन ग़ुंचेका, हैरत मेरी ॥

मोहसिन— नाज़ुकी कहते हैं इसको पाँव ज़ख़्मी हो गये ।
आ गई चलनेमें जब तसवीरें-नश्तर जेरे-पा ॥

अज्ञात— सीखे हो किससे, सच कहो प्यारे, यह चाल-ढाल ?
तुम इक तरफ़ चलो हो तो तलवार इक तरफ़ ?

दाग़— लड़े मरते हैं आपसमें तुम्हारे चाहनेवाले ।
यह महफ़िल है तुम्हारी या कोई मुर्ग़ोंकी पाली है ?

तीरे-नज़रके घायलको 'आशिक़' और उसके ला-इलाज मर्ज़को 'इश्क़' कहा जाता है। 'मीर'ने ज़िन्दगी भरके तजुर्बेको इस एक मिसरेमें उँड़ेल दिया है—

मरज़े-इश्क़का इलाज नहीं

जब यह घाव, दिल पहले-पहल खाता है तो बक़ौल 'शेफ़्ता' कुछ इस तरह महसूस होता है—

इक आग-सी है सीनेके अन्दर लगी हुई

कौन ऐसा मूर्ख होगा, जो यह 'आग-सी' सीनेके अन्दर अपने-आप लगाये ? टी० बी०के कीटाणु भी क्या कोई सिर फिरा अपने सीनेमें अपने आप छोड़ता है ? वे तो न जाने कैसे और कब आवारा मेहमानकी तरह तशरीफ़ ले आते हैं। यही हाल ज़ख़्म खाते वक़्त दिलका होता है—

हाली-- इश्क़ सुनते थे जिसे हम, वोह यही है शायद।
ख़ुद-ब-ख़ुद दिलमें है इक शख़्स समाया जाता॥

और जब यह रोग ख़ुद-ब-ख़ुद दिलमें समाकर अपना असर ज़ाहिर करता है तो रोगी (आशिक़) छटपटाता है और अपने स्वस्थ दिनोंकी याद करता है--

जलील मानिकपुरी-- दर्दसे वाक़िफ़ न थे, ग़मसे शनासाई न थी।
हाय क्या दिन थे, तबीयत जब कहीं आई न थी॥

यह सीनेके अन्दर लगी हुई आतिशे-इश्क़ रुईकी आगकी तरह जिस्मको फूंकती रहती है और अन्तमें हैरतसे लोग पूछते है--

घुल गया आपी आप कुछ 'क़ायम'।
क्या बला इस जवानपर आई?

और जब लोगोंको वास्तविक स्थितिका ज्ञान होता है तो श्मशान घाटके वैराग्यपूर्ण स्वरमें लोग कह उठते है--

दर्द-- क़हर है, मौत है, क़ज़ा है इश्क़।
सच तो यह है, बुरी बला है इश्क़॥

मरज़े-इश्क़में तड़पना, आहें भरना, रोना-बिलखना, तारे गिन-गिनकर रातें काटना लाज़िमी है। इन्हीं मनो-व्यथाओंका कुछ आभास इन प्रेम-रोगियोंने देखिये किस बेतकल्लुफ़ीसे दिया है--

आशिक़की बेअख़्तियारी

दर्द-- अपने मिलनेसे मना मतकर।
इस बिन बेअख़्तियार हैं हम॥

आशिक़का मशग़ला

बेदार-- उसके मज़कूरके सिवा 'बेदार' !
और कुछ बात ख़ुश नहीं आती ।।

क़ायम-- अब तो नै गुल न गुलसिताँ है याद ।
उसी मुखड़ेकी हर ज़माँ है याद ।।

दर्द-- हमें तो बाग़ तुझ बिन ख़ानये-मातम नज़र आया ।
इधर गुल फाड़ते थे जेब, रोती थी उधर शबनम ।।

रोना-बिसूरना

मीर-- सिरहाने 'मीर'के अहिस्ता बोलो ।
अभी टुक रोते-रोते सो गया है ।।

फ़ानी बदायूंनी-- 'फ़ानी'को या जुनूँ है या तेरी आरज़ू है ।
कल नाम लेके तेरा दीवानावार रोया ।।

तारे गिनकर रात काटना

असर लखनवी-- हमने रो-रोके रात काटी है ।
आँसुओंपर यह रंग तब आया ।।

साक़िब लखनवी-- लूटनेवाले हमारी नींदके ।
रातभर किस चैनसे सोते रहे !

जो प्रेम-रोगी अंगारोंपर लोटनेको, रोते-बिलखते जीते रहनेको और आँखोंमें नींद काटनेको मजबूर हो जाये, जिसे मौत माँगेसे भी न मिले, वह ज़िन्दा दरगोर है--

फ़ानी बदायूनी—— नहीं ज़रूर कि मर जाएँ जाँनिसार तेरे।
यही है मौत कि जीना हराम हो जाये॥

ऐसी हालतमें प्रेयसीको पत्र लिखकर अपनी दयनीय स्थितिसे अवगत कराना आशिक़का स्वाभाविक धर्म है। वह विरह-ज्वरमें घुला जा रहा है और प्रियतमाको आभासतक नहीं——

दीपकको भावें नहीं जल-जल मरै पतंग

कभी वह स्वयं भी मिलनेका प्रयास करता है, जो कि लाज़िमी है, मगर हमारे शायरोंने वोह तिलकी तेलन बनाई है कि खुदाकी पनाह——

आतिशे-इश्क़ (प्रेम-ज्वाला)

ज़फ़र—— सोज़िशे-दागे-अलमसे पहले भेजा जल गया।
बाद उसके दिल जला और फिर कलेजा जल गया॥

भेजा, दिल, कलेजा, जब सब जल गये तो बचा क्या? और शायर फिर यह बात कहनेको जीवित कैसे रहा? आजकल तो सीनेमें एक-दो खरोंच आ जाती है, तो कम्बख्त टी० बी० डिक्लेयर कर दी जाती है, और मरीज़की चन्द दिनोंमें ही राम-नाम सत बुल जाती है!

मज़मूने-सोज़े-दिल क्या था फ़ास-फ़ोरस था कि——

ज़फ़र—— उफ़! मेरे मज़मूने-सोज़े-दिलमें भी क्या आग है!
ख़त जो क़ासिद उसको मैंने लिखके भेजा, जल गया!!

अमीर मीनाई—— यही सोज़े-दिल है तो महशरमें जलकर।
जहन्नुम उगल देगा मुझको निगलकर॥

वाइज़! समझा है तू दोज़ख़ जिसे।
कुछ शरर हैं आहे-आतिशबारके॥

जलाल--- दाग़पर मेरे पड़ी मुरग़ाने-गुलशनकी जो आँख ।
सबने मिनकारोंमें ले-लेकर ग़लेतर रख दिया ।।

ग़मेहिज्रमें नातवाँ (निर्बल) होना भी स्वाभाविक है। मगर इस लफ़्फ़ाज़ी नातवानीको क्या कहा जाय ? -

अमीर मीनाई--- मेरे चेहरये-ज़र्दके अक्ससे ।
हुई साक़िया ! ज़ाफ़रानी शराब ।।

वल्लाह ! चेहरेका रंग क्या रहा होगा ? केसरके खेतमें भी शराब खींची जाय तो रंग पीला न हो और एक 'अमीरमीनाई' है कि अक्ससे ही शराब ज़र्द हो गई। सुब्हान अल्लाह ! क्या दरोग़ बयानी है।

असर देहलवी--- बयाँ क्या करूँ नातवानी मैं अपनी ।
मुझे बात करनेकी ताक़त कहाँ है ।।

मोमिन--- यह नातवाँ हूँ कि हूँ और नज़र नहीं आता ।
मेरा भी हाल हुआ तेरी ही कमरका-सा ।।

ज़ूँ निकहते-गुल जुम्बिश है जीका निकल जाना ।
ऐ बादेसबा ! मेरी करवट तो बदल जाना ।।

नातवाँ थे, पर न छेड़ा मिसले-ख़ार ।
ख़ुद उलझकर रह गये दामनमें हम ।।

अब तो मर जाना भी मुश्किल है तेरे बीमारको ।
जोफ़के बाइस कहाँ दुनियासे उट्ठा जाय है ।।

पाँव तुरबतपर मेरी देख सँभलकर रखना ।
चूर है शीशये-दिल संगे-सितमसे पिसकर ।।

मनों मिट्टीके नीचे दाब दिये गये, और क़ब्र बनते समय जो कारीगरोंने ठप-ठप की होगी, तब शीशये-दिल चूर-चूर हुआ भी क्या बचा रहा था ?

ग़ालिब-- गंजाइशे-अदावते-अग़ियार इक तरफ़ ।
याँ दिलमें ज़ोफ़से हविसेयार भी नहीं ।।

अमीर मीनाई-- वोह नातवाँ हूँ जो लेटा कभी मैं बिस्तरपर ।
गुमाँ हुआ कि शिकन पड़ गई है चादरपर ।।

लाग़िर हूँ इस क़दर मुझे पहचानती नहीं ।
रह-रहके देखती है क़ज़ा सरसे पाँवतक ।।

काँटा हुआ हूँ सूखके लेकिन निहाल हूँ ।
खटकूँगा और अपने उदूकी निगाहमें ।।

सूखकर काँटा होनेका ग़म नही, ख़ुशी इसी बातकी है कि उदूकी आँखोंमें खटक होगी । कोई पूछे, उदूको तो इससे ख़ुशी ही होगी कि रास्तेका काँटा दूर हुआ न कि रंज । ज़ौक़ भी सूखकर काँटा होते है, मगर देखिये कितना पवित्र भाव व्यक्त करते हैं--

दस्तमें आ जायगा लैला तेरे नाक़ेके काम ।
अच्छा हुआ मजनूँ तेरा जो सूखकर काँटा हुआ ।।

मरते-मरते भी यही भावना है कि प्रेमीका उपयोग प्रेयसीके किसी काममें हो सके ।

दाग़-- क़ाहीदगीने फेंक दिया दूर इस क़दर ।
कोसों मैं आप अपनी नज़रसे निकल गया ।।

नज़र आता हूँ न उस बज़्मसे उठ सकता हूँ।
नातवानीसे बड़े काम लिये जाते हैं॥

अब मेरे एवज़ उसे सँभालो।
मिलती नहीं नब्ज़ चारागरकी॥

आशिक़की नातवानी देखकर माशूक़को रहम नहीं आता; बल्कि ग़ुस्सा होकर कहता है कि इसने मेरी नज़ाकत उड़ा ली—

दाग़— नातवाँ देखकर अफ़सोस न आया मुझपर।
वोह ख़फ़ा है कि उड़ाई है नज़ाकत मेरी॥

गोया लखनवी— नातवाँ ऐसा हूँ गर साया पड़ा दीवारका।
गिर पड़ी 'गोया' कि सक़फ़े-आस्माँ[१] बालाए-सर[२]॥

आबाद लखनवी— लाग़र हूँ इस क़दर कि दिखाई न दूँगा मैं।
अपनी तरह करेगा मुझे बेनिशाँ दहन॥

नासिख़— लाग़र हैं हम ऐसे कि निगल जाय ज्यों चिउँटी।
अटके न हमारा यह तनेज़ार गलेमें॥

है गराँ[३] मकतूब,[४] तो कातिब[५] सुबक[६] है क़ासिदा[७]!
फेंक ख़त, ले चल हमारा जिस्मे-लाग़र हाथमें॥

इश्क़ी— अलमदद ऐ ज़ोफ़! ऐसा कर तू क़ाहीदाबदन[८]।
वोह परी रख ले समझकर मुझको तिनका कानका॥

वज़ीर— हाथमें लेजा तने-लाग़र मेरा नामेकेसाथ[९]।
डर न ऐ क़ासिद! कि छः होती हैं अक्सर उँगलियाँ॥

---

[१]आकाशकी छत; [२]सरपर; [३]भारी; [४]पत्र; [५]पत्रलेखक; [६]हलका; [७]पत्रवाहक; [८]निर्बल; [९]पत्रके साथ;

तालिब— हो जाऊँ मैं पामाल, यहाँतक तो हूँ लाग़र।
चिऊँटी भी जो शफ़क़तसे[1] रखे दोशपर[2] अंगुश्त[3] ॥

नादर— पाँव जिस्मे-ज़ारपर मेरे पड़ा, बोला वोह शोख़—
"डाल दी है फ़र्शपर किसने यह सोज़न[4] ज़ेरे-पा ?"

मोहसन— मैं वोह लाग़र हूँ यही समझा कुएँमें गिर पड़ा।
आ गया है चिऊँटियोंका जब कभी घर ज़ेरे-पा ॥

रोना-बिलखना

हिदायत— शबे-हिजराँमें तेरे सुबहके होते-होते।
इस्तख़्वाँ[5] शमअ़सिफ़त[6] बह गये रोते-रोते ॥

मुसहफ़ी— रातदिन रोके निकाली थी मैं वाँ कुलफ़ते-दिल[7]।
आजतक दामने-सहरा है ग़ुबार-आलूदा[8] ॥

मोमिन— जा-बजा नहरें हैं जारी, मैंने अश्क—
पूछें होंगे दामने-कोहसारसे ॥

ममनून— मेरे यह गर्म आँसू पूँछ मत दस्ते-हिनाईसे।
कि इन आँखोंसे रहता है रवाँ सैलाब आतिशका ॥

रश्क— अबकी जाड़े हैं और नाल-ओ-आह।
इस तरहका कोई अलाव नहीं ॥

दर्द— अश्कसे मेरे फ़क़त दामने-सेहरा नहीं तर।
कोह भी सब हैं, खड़े ता-ब-कमर पानीमें ॥

---

[1]कृपासे; [2]कन्धेपर; [3]उँगली। [4]सुई [5]हड्डियाँ; [6]मोमबत्तीकी तरह; [7]दिलकी भड़ास; [8]धूल-धूसरित।

उन्हें फुसलाता, चकमा देता, फ़क़ीरोंका वेश बनाकर धोका[1] देता, गालियाँ देने[2] और धक्के मारनेसे भी न टलता तो इनके दिलपर क्या गुज़रती। इनकी सामाजिक प्रतिष्ठा क्या रहती? इस तरहके अशआ़र लिखनेवालोंने यह भी न सोचा कि हमारी भी बहन-बेटियाँ हैं। हमारी शायरीका लक्ष यदि कोई उन्हें बना लेगा तो क्या हश्र होगा?

---

[1]ग़ालिब— गदा समझके वोह चुप था, मेरी जो शामत आई।
उठा और उठके क़दम मैंने पासबाँके लिए॥

दाग़— दरबाँको मिलाकर जो पुकारा उन्हें मैंने।
ख़ुद कहने लगे—"कौन है? वोह घरमें नहीं है॥"

दरबानके झगड़ेने बड़ा काम निकाला।
घबराके वोह निकले इसी तद्बीरसे बाहर॥

यह मेरे वास्ते ताकीद है दरबानोंपर।
कि "उसे मैं भी बुलाऊँ तो न आने पाये॥"

दरपै आके जल्द तुम सुन लो जो है मेरा सवाल।
गर लगाई देर तो जानों कि साइल घरमें है॥

देखकर दूरसे दरबाँने मुझे ललकारा।
न कहा यह कि "ठहर जाओ ख़बर करते हैं॥"

[2]दाग़— हम एक कहके सुनते हैं मुँहसे तेरे हज़ार।
लपका पड़ा हुआ है यह गुफ़्तो-शुनीदका॥

दाग़को देखकर वोह कहते हैं—
"यह मरेगा भी बेहया कि नहीं॥"

रोज़ जाता हूँ नये रूपसे उसके दरपर।
रोज़ रखता हूँ नया नाम बदलकर अपना॥

जहाँ इस तरहकी अस्वाभाविक, कपोलकल्पित शायरीका दौर-दौरा हो, वहाँ अश्लील शायरीका होना भी लाज़िमी था। जब चारों तरफ़ कुओंमें भंग पड़ी हो, तब उसे पीकर लोग बावले न हों तो और क्या हों? मोमिन, अमीर, निज़ाम, दाग़का तो ख़ैर ज़िक्र ही क्या, वह तो रंगीन शायरीके लिए मानों पैदा ही हुए थे[1], ग़ालिब-जैसा

जब कूचेमें-से धक्के देकर निकाल दिये गये तो झूठ-मूठको बार-बार बीमार पड़ते रहे, ताकि शायद रहम खाकर आ जाय--

अमीर मीनाई-- आया न एक बार अयादतको वोह मसीह।
सौ बार मैं फ़रेबसे बीमार हो चुका॥

और जब बीमारीमें भी न आया तो मरनेका स्वाँग रचा कि शायद मौतकी खबर पाकर दुनियाकी ज़ाहिरदारीको तो आये--

यारो लपेट देना ज़िन्दा मुझे कफ़नमें।

झूठ-मूठके मरनेपर तो क्या, वह सचमुच मर जानेपर नही आता--

मर गये पर भी तग़ाफ़ुल ही रहा आनेमें।
बेवफ़ा पूछे है--"क्या देर है ले जानेमें?"

--ज़ौक़

और जब यह फ़रेब भी नाकामयाब हुआ तो अर्थीमें लेटकर उसके कूचेसे जनाज़ा निकलवाया कि शायद जनाज़ा देखते ही बाहर निकल आयें--

जनाज़ेवालो! न चुपके क़दम बढ़ाये चलो।
उसीका कूचा है, टुक करते हाय-हाय चलो॥

--सोज़

[1]उक्त शायरोंका इस तरहका कलाम यहाँ हम जानबूझकर देनेसे गुरेज़ कर रहे हैं। अध्ययनशील व्यक्ति शेरो-सुख़नके पहले भागमें ऐसे नमूने पा सकेंगे।

दार्शनिक और गम्भीर व्यक्ति भी कभी-कभी इस तरह बहकने लगता था--

हमसे खुल जाओ बवक़्ते मै-परस्ती एक दिन।
वरना हम छेड़ेंगे रखकर उज़्रे-मस्ती एक दिन॥

ले तो लूँ सोतेमें उसके पाँवका बोसा, मगर--
ऐसी बातोंसे वह काफ़िर बदगुमाँ हो जायगा॥

पीनसमें गुज़रते है जो कूचेसे वोह मेरे।
कन्धा भी कहारोंको बदलने नहीं देते॥

दरपै पड़नेको कहा और कहके कैसा फिर गया।
जितने अर्सेमें मेरा लिपटा हुआ बिस्तर खुला॥

ग़ैरको या रब! वोह क्योंकर मनअ गुस्ताख़ी करे।
गर हया भी उसको आती है, तो शरमा जाये है॥

धौल-धप्पा उस सरापा नाज़का शेवा नहीं।
हम ही कर बैठे थे 'ग़ालिब' पेशदस्ती एक दिन॥

इस प्रकारकी असम्भव, कल्पित और अश्लील शायरीने ग़ज़लकी आबरू धूलमें मिला दी। हाली स्वयं ग़ज़लगो शायर थे। मगर उन्हें ग़ज़लका यह पतन पसन्द न आया। १८५७ ई०के ग़दरके बाद मुसलमानोंकी जो शोचनीय स्थिति हुई, बादशाहत और नवाबी मिट जानेसे जो उनके विक़ारको धक्का पहुँचा, उसकी तलाफ़ी नामुमकिन थी। उसपर भी तुर्रा यह कि वे इस तरहकी पतितोन्मुखी शायरी में उलझे हुए थे। 'हाली'को मुसलमानोंका यह मृत्यु-महोत्सव पसन्द न आया, उन्होंने मन-ही-मन ग़ज़लको ख़त्म करनेका फ़ैसला किया--

सुख़नपर हमें अपने रोना पड़ेगा।
यह दफ़्तर किसी दिन डुबोना पड़ेगा॥

चुनाचे उन्होंने स्वयं ग़ज़लें लिखनी बन्द कर दी; नज़्म लिखनेको प्रोत्साहन देने लगे और इश्किया कलाम लिखनेवालोंका सख़्तीसे विरोध करते हुए बुलन्द स्वरमें फ़र्माया--

ऐ इश्क़ तूने अक्सर क़ौमोंको खाके छोड़ा

नज़्म-आन्दोलन गजलके लिए बहुत मुबारक साबित हुआ। ज़ाहिरामें तो इस आन्दोलनसे गजलको बहुत बड़ा धक्का लगा, मगर हक़ीक़तमें उसका कायाकल्प हो गया। अपनी पतितोन्मुखी स्थितिका आभास मिलते ही वह कल्पनालोकसे उतरकर जीवनके वास्तविक आँगनमें आ खड़ी हुई। खारजी, रवायती, फ़हाशी, तकल्लुफ़ी, बनावटी बन्धनोंको तोड़कर स्वतंत्र हो गई, वह अपना संकुचित दृष्टिकोण छोड़कर विशाल क्षेत्रकी ओर अग्रसर हुई। उसने युगकी रुचिको देखते हुए अपने मनको स्वस्थ, प्रफुल्ल एवं उदार बनाया, और परिधानमें भी आश्चर्यजनक सुरुचिपूर्ण परिवर्तन किया।

ग़ज़लका कायाकल्प

यद्यपि हाली-ओ-आज़ादसे क़रीब सवासौ वर्ष पूर्व नज़ीर अकबराबादी इस क़िस्मकी शायरीका श्रीगणेश कर गया था। मगर दुर्भाग्यसे तत्कालीन उर्दू-साहित्यिकोंने उसे शायर ही तसलीम नहीं किया। वह केवल एक चुटकुलेबाज़से अधिक नहीं समझा गया। अतः उसके अनुकरणकी हिम्मत आगे कौन करता? 'नज़ीर' सिर्फ अपनी नज़ीर बनकर रह गया।[1]

---

[1] 'नज़ीर' उर्दूका सर्वप्रथम विशुद्ध भारतीय कवि हुआ है। आपका परिचय एवं कलाम 'शेरोशायरी' में पृ० १७५-१९०में मिलेगा।

'अनीस' और 'दबीर' आदिने मर्सियोंमें उन बहुत-सी बातोंको समोया, जो ग़ज़लमें नहीं थी। मगर वह प्रयास सिर्फ़ इसलाम मज़हब तक सीमित होकर रह गया, ग़ज़लमें कोई परिवर्त्तन नही हो सका।

हाली-ओ-आज़ादके आन्दोलनको सर सैयद अहमदके कारण बहुत बल मिला। वे उन दिनों मुसलमानोंके बड़े और प्रभावशाली नेता थे, और सत्य बात तो यह थी कि वही इस आन्दोलनके मुख्य प्रवर्तक थे।

नज़्म-आन्दोलनके बावजूद उस युगमें ग़ज़लके हिमायतियों, समर्थकों और अनुयायियोंका बहुत बड़ा गिरोह था। उनमें अधिकांश लकीरके फ़क़ीर और पुराने ख़यालके थे, जो गज़लमें किसी क़िस्मका भी परिवर्तन, परिवर्धन एवं संशोधन करनेके घोर विरोधी थे। उनका विश्वास था कि ग़ज़ल अपने चरमविकासको पहुँच चुकी है। पुराने उस्तादोंके बनाये हुए क़ानून-ओ-क़ायदेमें तरमीम करना गुनाह ही नही कुफ़्र भी है।

मगर उन्हीं दिनों ग़ज़ल स्कूलके कुछ ऐसे स्नातक भी थे, जिन्हें दिव्य-दृष्टि प्राप्त थी। जो क़यामतकी चालका अन्दाज़ा रखते थे, लिफ़ाफ़ा देखकर ख़तके मज़मूनको भाँप लेते थे। उन्होंने यह महसूस किया कि यदि अब ग़ज़लका कायाकल्प नही किया गया तो उसका विनाश अवश्य-म्भावी है। फिर उसे कोई नही बचा सकेगा।

नज़्म उत्तरोत्तर तरक़्क़ी करती जा रही थी। दाग़-जैसे रंगीन ग़ज़लगो उस्तादके—सर इक़बाल, सीमाब अकबराबादी, जोश मलसियानी—जैसे तीनों शिष्य नज़्मकी ओर आकर्षित हो चुके थे। लखनवी ग़ज़लगो उस्ताद 'सफ़ी' भी नज़्म लिखने लगे थे। दुर्गासहाय सरूर, ज्वालाप्रसाद बर्क़, जगमोहनलाल रवाँ, ब्रजनारायण चकबस्त, इस्माइल मेरठी, नज़र लखनवी आदि जोशो-ख़रोशसे नज़्मके मैदानमें उतर आये थे।[1]

---

[1]नज़्म-आन्दोलनका विस्तृत इतिहास और नज़्मगो शायरोंका परिचय एवं कलाम हम "शायरीके नये दौर" नामक पुस्तकमें दे रहे हैं। जो कि

नज़्म-आन्दोलनके इतने प्रसारके बावजूद भी ग़ज़लके परिस्तारों, प्रशंसकों और शायरोंका बहुत बड़ा समूह था। जिस तरह कि आर्यसमाजका धुआँधार प्रचार होनेपर भी सनातनियोंका है। और परिस्तार भी किस ग़ज़लके? जिसकी बागडोर दाग़के हाथमें थी। उनके पूर्व हुए मोमिन, ग़ालिबकी क्लिष्ट, गम्भीर, गहरी तथा नासिख़-स्कूलकी पेचीदा और लफ़्फ़ाज़ी शायरीकी आम जनतातक रसाई नहीं थी।

अशिक्षित, अर्द्धशिक्षित अथवा सर्वसाधारण उनकी शायरीको समझने-की योग्यता ही नहीं रखते थे[1]। अधिकांश रंगीन शायरीके दिलदादा थे। ऐसी रुचिके लिए 'दाग़'की और लखनवी-शायरी निहायत मौज़ूँ थी। यही कारण है कि उन दिनों कोई ऐसी महफ़िल न थी, जिसमें 'दाग़'की ग़ज़लें न गूँजती हों। कोई ऐसी तवाइफ़ नहीं थी, जिसे 'दाग़'की ग़ज़लें कंठस्थ न हों। हर जवाँ-बच्चेकी ज़बानपर दाग़की ग़ज़लें थिरकती थीं। जिस मुशायरेमें 'दाग़' मौजूद हों, उस मुशायरेमें किसी और शायरका रंग जमना नामुमकिन था। दाग़के अन्य समकालीनोंका तो ख़ैर ज़िक्र ही किया, स्वयं हाली-जैसे पुख़्ता और मँजे हुए शायरका रंग 'दाग़'के सामने न जम सका।

हम जिसपै मर रहे हैं, वोह है बात ही कुछ और।
आलममें तुझसे लाख सही, तू मगर कहाँ?

हालीका उक्त शेर जनताको 'दाग़'के इस चुलबुले शेरके सामने पसन्द न आया—

शीघ्र ही प्रेसमें दी जायगी। यूँ "शेरोशायरी"में पृ० २६१से ५६८ तक संक्षिप्त इतिहास और १७ प्रसिद्ध नज़्मगो शायरोंका परिचय हम दे चुके हैं।

[1]वर्त्तमानमें शिक्षाका इतना प्रसार और सुरुचि परिष्कृत होनेपर भी उच्च साहित्यके पाठक कितने हैं? सस्ते और घटिया क़िस्मके नाविलोंकी ही अधिक-से-अधिक खपत है।

मै-ख़ानेके क़रीब थी, मसजिद भलेको 'दाग़'।
हर-एक पूछता था कि "हज़रत इधर कहाँ ?"

और 'हाली'का यह शेर भी--

उसके जाते ही हुई क्या मेरे घरकी सूरत।
न वोह दीवारकी सूरत है न दरकी सूरत॥

'दाग़'के इस शेरके सामने फीका पड़ गया--

बज़्मे-दुश्मनमें न खिलना, गुलेतरकी सूरत।
जाओ बिजलीकी तरह, आओ नज़रकी सूरत॥

केवल 'दाग'के ही दो हजारके क़रीब शिष्य उस समय मौजूद थे। 'अमीर मीनाई', 'जलाल' आदिके भी सैकड़ों शिष्य थे और ये सब समूचे भारतमें बिखरे हुए थे। सिर्फ दो-चारको छोड़कर सभी इस क़िस्मकी शायरीके आदी थे।

उधर नज़्मकी तरफ नये और पुराने लोग झुकते जा रहे थे। इधर ग़ज़लगो शायरोंकी वही रफ़्तार बेढंगी थी। ऐसी विषम परिस्थितिमें भी कुछ शायरोंने साहससे काम लिया। गिरते हुए झंडेको मज़बूत हाथोंमें थाम लिया और मरणोन्मुख ग़ज़लको वोह जीवन-दान दिया कि आज वह पूरी आबो-तावके साथ चमक रही है।

इन साहसी गज़लगो-शायरोंमें--१ सफ़ी लखनवी, २ अज़ीज़ लखनवी, ३आरज़ू लखनवी, ४ साक़िब लखनवी, ५शाद अज़ीमाबादी, ६ यगाना चंगेज़ी, ७ फ़ानी बदायूनी, ८ असगर गोण्डवी, ९ हसरत मोहानी, १० जिगर मुरादाबादी, ११ सीमाब अकबराबादी आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।[1]

---

[1]इनमेंसे पहले चार शायरोंका परिचय तो इसी भागमें मिलेगा। ५से १०तकके शायरोंका तीसरे और ११वेंका परिचय चौथे भागमें दिया गया है।

उर्दू-ग़ज़लने कैसे-कैसे पहलू बदले, कितनी करवटें ली ? बाज़ारी माशूक़का बहिष्कार, सुशीला प्रियतमाका सम्मान, रोने-बिसूरनेकी प्रथा बन्द, व्यक्तिगत दुःखोंको भूलकर विश्वके दीन-दुखियोंके गमोंको अपनानेका इतिहास आदि प्रस्तुत भागके शायरों—विशेषकर सफ़ी, अज़ीज़, आरज़ू, साक़िब, नातिक़, असर आदिके कलाममें यत्र-तत्र दृष्टिगोचर होगा। कहीं प्राचीन शायरीकी झलक और कहीं नवीन शायरीकी मुस-कान दिखाई देगी। तीसरे और चौथे भागमें प्राचीन और नवीन शायरीपर विस्तारके साथ तुलनात्मक अध्ययन दिया गया है। विस्तार भयसे वह सब यहाँ नही दिया जा रहा है।

प्राचीन और नवीन ग़ज़ल

हालीने दरअस्ल ग़ज़लका विरोध नही किया। उनका आशय यही था कि तत्कालीन (१९वी शताब्दीके उत्तरार्द्धमें) ग़ज़लगोईमें-अस्वाभाविकता, कृत्रिमता, अश्लीलता आदि जो दोष आ गये थे, उन्हें दूर किया जाय। उनका कथन था कि—"ग़ज़लमें जो इश्क़िया मज़ामीन बाँधे जायें, वे ऐसे जामा अलफ़ाज़में अदा किये जायें जो दोस्ती और मुहब्बतके तमाम जिस्मानी और रूहानी तालुक़ातपर हावी हों, और जहाँतक हो सके ऐसा कोई लफ़्ज़ न आने पाये, जिससे माशूक़ औरत या मर्द मालूम हो सके। माशूक़को हमेशा मुज़क्कर (पुल्लिग) बाँधना चाहिए, और अमरदपरस्तीके ख़यालात क़तई बन्द कर दिये जायें। हबीबके हुस्नो-जमालका इज़हार बन्द किया जाय। अगर हबीब परदादार है तो कौन ऐसा बेवक़ूफ़ है जो अपनी बीबीके रान, तिल, बाल वग़ैरहका हुलिया दूसरेको बताये और अगर हबीब बाज़ारी है तो उसका ज़िक्र करना अपनी ही रुसवाईका ढिंढोरा पीटना है।"

हालीकी राय

हालीके मतानुसार ग़ज़लमें यह तीन ख़ूबियाँ अत्यन्त आवश्यक है—
१. सादगी, २. स्वाभाविकता, ३. प्रभाव,

१—जो शायर प्रकृतिकी ओरसे कवि-हृदय लाया हो, उसे ही इस ओर अग्रसर होना चाहिए। जो व्यक्ति शायराना दिलो-दमाग़ लेकर नहीं जन्मा है, उसे शायरी कदापि नहीं करनी चाहिए।

ग़ज़लमें ख़ूबियाँ

उस्तादोंकी कृपासे शायरीका व्याकरण तो आ सकता है, परन्तु शायरी कदापि नही आ सकती। अगर उस्तादोंके सिखाये-से शायरी आ सकती तो मीर, मोमिन, ग़ालिबके उस्ताद उनसे बड़े नामवर हुए होते। यह तो हृदयसे स्वयं उबलने वाला झरना है, जो सदैव स्वच्छ, निर्मल, बहता है। बनाये हुए तालाबोंमें वह बात कहाँ? उनमें कूड़ा भर जाता है और दुर्गन्ध आने लगती है। जो स्वभावतः शायर होगा, उसकी शायरीमें सादगी एवं सरलता होगी, वह शब्दकी व्यूह रचना नहीं करेगा।

२—जो शायर स्वाभाविकता एवं वास्तविकताके जितने समीप होगा, कृत्रिमता, तकल्लुफ़, अतिशयोक्तियोंसे जितना बचकर चलेगा, उतना ही सफल शायर होगा।

३—शेरमें प्रभाव एवं हृदयस्पर्शी क्षमता तभी आ सकती है जब कि शायरका हृदय भी शेरमें व्यक्त किये गये भावोंसे ओतप्रोत हो। 'मीर' जो ख़ुदा-ए-सुख़न कहलाते हैं और उर्दूके सभी नामवर और बड़े शायरोंने उन्हें 'मीर' (सरदार, बड़ा) माना है, उनकी कामयाबीका राज़ यही था कि वे स्वभावतः शायराना दिलो-दमाग़ लेकर जन्मे थे। वे शौक़िया या रवायतन शेर नहीं कहते थे। अपितु जब वे कहनेपर मजबूर हो जाते थे, तभी वे शेर कहते थे। वे अपने पहलूमें एक ऐसा दर्दभरा दिल रखते थे, जिसकी टीस और चबक उन्हें जीवनभर बेचैन किये रही। उन्होंने इक़िश्या शायरी वक़्त काटनेकी ग़रज़से, हज-यात्राके मार्गमें तफ़रीहन नहीं की और न वज़ू करते हुए उन्हें इमामे-मैख़ाना बननेका तसव्वुर हुआ। बल्कि उन्होंने सचमुच इश्क़ किया था। वही हक़ीक़ते-इश्क़ और दास्ताने-ग़म उनके कलाममें प्रस्फुटित हुई है—

किस-किस तरहसे उम्रको काटा है 'मीर'ने।
तब आखिरी जमानेमें यह रेख्ता कहा॥

हमको शायर न कहो, 'मीर' कि साहब हमने।
दर्दे-ग़म कितने किये जमा तो दीवान बना॥

'मीर'को अपनी ही क़ौमकी एक लड़कीसे इश्क़ हो गया था। उसको प्राप्त करनेके लिए उन्होंने अनेक प्रयत्न किये और कष्ट उठाये। सामाजिक बन्धनोंको तोड़नेका साहस भी किया और पारिवारिक टक्करें भी लीं, परन्तु सफलता न मिली। तमाम उम्र उसीकी चाहतमें काट दी और उस चाहतमें जो उन्हें व्यथा-टीस, वेदना, मिली, उन्होंने 'मीर'को वह क्षमता और वाणी प्रदान की, जिनपर सदियोंसे शायर सर धुनते आ रहे है। प्रायः सभी उत्तरवर्त्ती शायरोंने उनके अनुकरणका प्रयत्न किया, परन्तु वह बात पैदा न हुई जो 'मीर'में है। 'मीर' मीर है। ज़ौक़ने जो ब-हसरत कहा था—

न हुआ, पर न हुआ, 'मीर'का अन्दाज़ नसीब।
'ज़ौक़' यारोंने बहुत ज़ोर ग़ज़लमें मारा॥

अगर ज़ोर मारनेसे गज़ल प्रभावक एवं हृदयग्राही बन सकती तो फिर 'मीर' जैसे दुबले-पतले शायरके बजाय 'नासिख़' जैसे पहलवान "ख़ुदा-ए-सुख़न" कहलाते।

शायरीमें सोज़ो-गुदाज़ (हृदयको द्रवित करनेकी क्षमता) वह चीज़ है जो शेरमें सम्मोहन शक्ति फूंकती है। यह वोह विशेषता है जो बग़ैर दिल जलाये पैदा नहीं होती। बाज़ लखनवी-शायरोंका ख़याल है कि—मैयत, लाश, लहद, नज़अ, मौत, दर्द, ग़म, रंज, सदमा आदि शब्दोंके इस्तेमालसे शेरमें सोज़ो-गुदाज़ पैदा हो जाता है। मगर यह बहुत भ्रामक ख़याल है। केवल इन शब्दोंके प्रयोगमें लानेसे शेरमें सोज़ो-गुदाज़ पैदा हो सकता तो हर शायर बा-आसानी 'मीर' बन बैठता। ज़ेवर-लिबास

और शृंगारिक सामान ही अगर हसीन बना सकता तो कोई रईस औरत बदसूरत न रहती।

कलाममें सादगी, स्वाभाविकता और प्रभाव लानेके लिए यह जरूरी है कि शेर किसीके दबावसे, फ़र्माइशसे, या लालचवश होकर नही कहना चाहिए। "अरबके मशहूर शायर 'क़ैसर'से किसीने पूछाकि तूने शेर कहना क्यों छोड़ दिया? जवाब मिला—'जवानी जिससे उमंग पैदा होती थी गुज़र गई। अब्दुल अजीज (पुत्र) जिससे सिलेकी तवक़्क़ोह थी, वह भी न रहा। अब कौन-सी चीज बाकी है जो शेर कहलाये?' गोया उसने इस बातका इशारा किया है कि जबतक दिलमें किसी क़िस्मका जोश और वलवला न हो, उस वक़्त तक शेर अंजाम नही हो सकता। एक शायरका क़ौल है कि बाज़ औक़ात मेरा यह हाल होता है कि दाँतको मसूड़ोंसे उखाड़ना मुझको ज़्यादा आसान मालूम होता है, ब-निस्बत शेर कहनेके। यानी बग़ैर तबियतके और दिली जोशके शेर सरंजाम नही हो सकता।"[१]

उर्दू-शायरीके लिए यह बहुत बड़ा अभिशाप रहा है कि अधिकांश-शायरोंको बे-मनकी शायरी करनी पड़ी है। कभी बादशाहों-नवाबों-रईसोंकी फ़रमाइशोंपर, कभी उनकी शादियों और खुशियोंके मौक़ोंपर लोभवश, कभी मुशायरोंमें शिरकत करनेके लिए, अशआर कहने पड़े है। यही कारण है कि अधिकांश शायरोंकी गज़लें बेनमक और फीकी होती है। ग़ज़लमें एक-दो शेर ही ऐसा होता है जो मनपर असर करे, और बेमनकी शायरी मनपर असर न करे तो इसमें आश्चर्यकी बात भी क्या है?

हर्ष है कि वर्तमान युगीन अधिकांश शायर इस दोषसे बचनेका यथाशक्ति प्रयत्न करते है और शेर जब अपनेको उनसे कहलवाता है तभी कहते है।

डालमियानगर
८ अगस्त १९५३ ई०

अ० प्र० गोयलीय

---

[१] हाली-मुक़दमये-शेरोशायरी उर्दू।

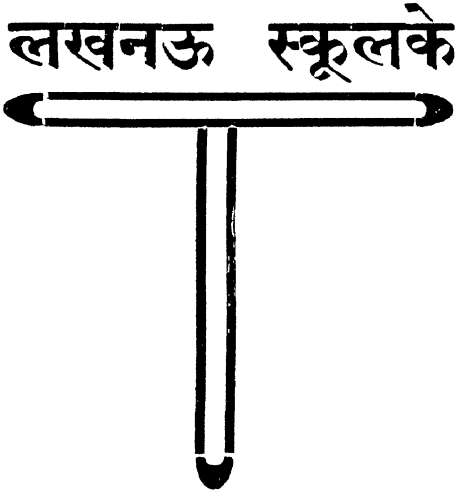

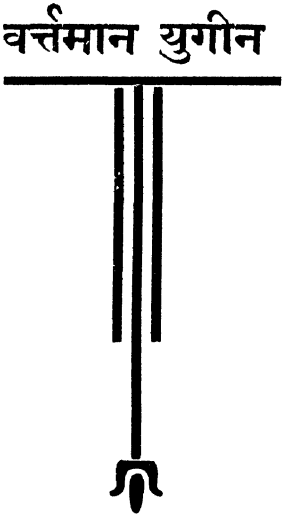

ख्यातिप्राप्त शायर

१. नज़्म तबातबाई

२. सफ़ी लखनवी

३. नज़र लखनवी

४. साक़िब लखनवी

५. आरज़ू लखनवी

६. उम्मीद अमेठवी

७. रियाज़ खैराबादी

८. जलील मानिकपुरी

९. दिल शाहजहांपुरी

१०. हफीज़ जौनपुरी

११. सरशार लखनवी

१२. शौक़ रैना

१३. नातिक़ लखनवी

१४. अज़ीज़ लखनवी

१५. असर लखनवी

नज़्म तबा तबाई

[१८५० – १९३३ ई०]

मौलाना अली हैदर तबातबाई 'नज़्म' लखनऊमें १८५० ई० के क़रीब उत्पन्न हुए। आप अपने युगके अरबी-फ़ारसीके ख्यातिप्राप्त विद्वान थे। जब वाजिदअलीशाह कलकत्तेके मटियाबुर्जमें नज़रबन्द थे, तब आप ही उनके साहबज़ादोंके शिक्षक थे। नवाबकी मृत्युके बाद हैदराबाद कॉलेजके प्रोफ़ेसर नियुक्त हुए और उस पदपर ३० वर्षतक आसीन रहे। वहाँसे आपको पेंशन मिली और नवाब हैदराबादने आपको युवराजका शिक्षक बनाकर गौरव प्रदान किया। साथ ही नवाब हैदरजंगका ख़िताब भी अता फ़र्माया। उस्मानिया यूनिवर्सिटी स्थापित होनेपर आपकी सेवायें वहाँ भी ली गई और वहाँ से विदेशी भाषाके अनुदित ग्रन्थ जितने भी प्रकाशित होते थे, उन्हें प्रेसमें जानेसे पूर्व आप निरीक्षण करते थे। 'शरर', 'साहा', और महाराज किशनप्रसाद 'शाद' जैसे ख्यातिप्राप्त साहित्यिक आपके ही शिष्य थे। आपने अंग्रेज़ी कविताओंको उर्दूमें इतने लालित्यपूर्ण और स्वाभाविक ढंगसे नज़्म किया है कि वे अनुवाद न मालूम होकर उर्दूकी ही निधि बन गई है। उनका उल्लेख नज़्मोंके इतिहास (शायरीके नये दौर) में किया जायगा। यहाँ तो केवल आपके चन्द ग़ज़लोंके अश-आर इतिहासका क्रम बनाये रखनेके लिए दिये जा रहे है। आप दाग़के रंगमें बेहतरीन कहनेवालोंमें-से एक थे। आपका २३ मई १९३३ ई० को निधन हो गया।

न शोख़ीकर हयाकी वज़अमें अब फ़र्क़ आता है।
ग़ुबार ऊँचा न हो जाये कहीं हम ख़ाकसारोंका॥

कहाँतक रास्ता देखा करें हम बर्क़-ख़िरमनका।
लगाकर आग देखेंगे तमाशा अब नशेमनका॥

अदाये-सादगीमें कंघी-चोटीने ख़लल डाला।
शिकन माथे पै, अबरूमें गिरह, गेसूमें बल डाला॥
आगया फिर रमज़ाँ, क्या होगा?
हाय ऐ पीरेमुग़ाँ! क्या होगा?
कहने सुननेसे ज़रा पास आके बैठ गये।
निगाह फेरके त्योरी चढ़ाके बैठ गये॥
निगाहे-यास मेरी काम कर गई अपना।
रुलाके उट्ठे थे वोह मुसकराके बैठ गये॥

लिहाज़ इतना अभीतक हज़रते नासेहका बाक़ी है।
वोह जो कुछ-हुक्म फ़रमाते हैं, कह देते हैं हम 'अच्छा'॥

बन्दा तो इस इक़रारपै बिकता है तेरे हाथ।
लेना है अगर मोल तो आज़ाद न करना॥

इस छेड़में कोई जो न मरता हो तो मर जाये।
वादा है कहीं और, इरादा है कहीं और॥

क़ाबूसे नफ़से-बदको निकलने कभी न दे।
फिर शेर है, जो यह सगे-दीवाना छुट गया॥

लाया है कोई साथ, न ले जायगा कोई।
दौलत हो और आदते-अहसाँ न हो, बो क्या?

अहसान ले न हिम्मते-मर्दाना छोड़कर।
रस्ता भी चल तो सब्जये-बेगाना छोड़कर॥

आँखोंमें पड़के कहती है यह ख़ाके-रफ़्तगाँ।
"सुर्मा ज़रूर दीदये-इबरतमें चाहिए॥"

न देख अन्दाज़ आईनेमें अपना, पूछले हमसे।
ज़माने भरसे अच्छा और तेरे सरकी क़सम अच्छा॥

—शेरउल हिन्द पहला भाग

७ नवम्बर १९५१]

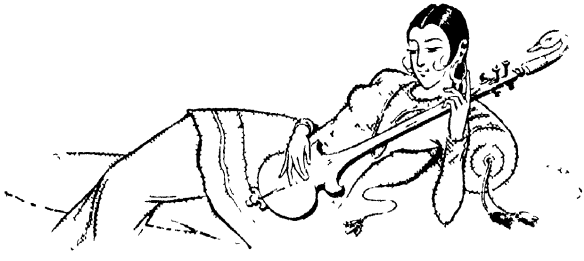

मुतरिब

सफ़ी लखनवी

[१८६२ – १९५०ई०]

सैयद अलीनकी 'सफ़ी' ३ जनवरी १८६२ ई० को लखनऊमें उत्पन्न हुए। आप के पिता सैयद फ़ज़ल हुसेन अवधके अंतिम बादशाहके विश्वास पात्रोंमें थे। आपके पूर्वज शम्सउद्दीन अल्तमश बादशाहके शासन-कालमें ग़ज़नीसे आकर दिल्लीमें आबाद हुए, फिर वहाँसे फ़ैज़ाबाद चले गये। ५ वर्षकी अवस्थासे अरबी-फ़ारसीका अभ्यास आरंभ हुआ। मैट्रिकतक अंग्रेज़ी पढ़ी। हकीमीकी ओर भी रुचि थी, अतः उसका भी अध्ययन किया। कुछ दिनों अंग्रेजीके अध्यापक रहे। जून १८८३ में दीवानी अदालतमें नौकरी की और १९२२ ई० में पेंशन लेकर साहित्य-सेवामें लीन रहे। १९५० ई० में आपका निधन हो गया।

जामा मिलियाके वार्षिकोत्सवोंपर हुए मुशायरोंमें दो बार आपके मुखारविन्दसे कलाम सुननेका सौभाग्य हमें भी प्राप्त हुआ है। यह संभवतः १९३५ और १९३६ की बात है। आपकी शरीफ़ाना वज़्अ-क़तअ और बोलने-चालने, उठने-बैठनेका ढंग इतना आकर्षक था कि आज भी वह दृश्य ज्यों-का-त्यों आँखोंके सामने फिर रहा है। आपके हमराह आपके छोटे भाई 'ज़रीफ़' लखनवी भी थे। जिनकी मज़ाहिया ग़ज़लोंने दर्शकोंको हँसाते-हँसाते लोट-पोट कर दिया था।

सैयद 'सफ़ी'का शायरीमें तो उस्तादाना मर्तबा है ही, वे मानवताके नाते भी बहुत ऊँचे थे। १८७५ ई० से उन्होंने शायरी प्रारंभ की थी।

वे किसीके शिष्य नहीं थे। स्वयं अभ्यासद्वारा ही वे इतने बढ़े थे। 'अज़ीज़'-जैसे ख्याति प्राप्त उस्ताद आपके ही शिष्य थे।

आपका एक ग़ज़लोंका, दो नज़मोंके दीवान छप चुके हैं। आपकी क़ौमी नज़मोंने बहुत ख्याति पाई, और उसके एवज़में मुस्लिम समाजने आपको 'लस्सानउलक़ौम' (क़ौमकी आवाज़) की उपाधि भेंट की। आप लखनऊकी साहित्यिक सभा 'बहारे-अदब' के एक अर्सेतक प्रधान रहे। आपने फ़ारसीमें भी कलाम कहा है। लखनऊके उस्तादोंमें आपका मर्तबा बहुत ऊँचा था। मौलानाके कितने ही शिष्योंके दीवान प्रकाशित हो चुके हैं।

मौलानाने लखनवी रंगको नया आबोरंग दिया और उसे कृत्रिमतासे हटाकर वास्तविकताके समीप लाये। आपके कलाममें रंगीनी, भाषामें लोच और भावोंमें प्रफुल्लता पाई जाती है। आपके कलामसे यह अनुमान लगाना कि यह किसी लखनवीका कलाम है, मुश्किल है।

आपने पहले-पहल यह शेर कहा—

निकले हैं तीन नाम मिरे तिफ़्ले-अश्कके[1]।
नूरे-निगाह, लख़्तेजिगर, यादगारे-दिल॥

यहाँ चन्द ग़ज़लोंके अशआर दिये जा रहे हैं—

कैसी-कैसी सूरतें ख़्वाबे-परीशाँ हो गईं?
सामने आँखोंके आईं और पिन्हाँ हो गईं॥

ज़ोर ही क्या था जफ़ाये-बाग़बाँ[2] देखा किये।
आशियाँ उजड़ा किया, हम नातवाँ[3] देखा किये॥

---

[1]आँसू रूपी पुत्रके; [2]मालीके अत्याचार; [3]दुर्बल, अशक्त।

कुछ रेज़हाये-शीशये-दिल[1] भी हैं फ़र्शे-राह।
रखिये क़दम ज़रा दमेरफ़्तार देखकर ।।

फ़लकतक हमने माना आहमें क़ूवत है जानेकी।
मगर फ़ुरसत कहाँ इस ग़मकदेमें सर उठानेकी ।।

ज़िन्दगी मुझ परशिकस्ताकी,[2] असीरे-दामकी[3]?
यूँ तो मेरी चीज़ है, लेकिन मेरे किस कामकी ?

ज़िन्दगीका माहसल[4] क्या है बतादूं मैं 'सफ़ी' !
इन्तज़ार उसका अभी तक जो बला आई नहीं ।।

कस्मपुरसीका[5] वोह आलम कि इलाही तौबा !
दम भी निकले तो नहीं पूछनेवाला कोई ।।

मआ़ले-ज़िंदगी यह थी कि सुनकर वाक़या मेरा।
रहा कुछ देर सन्नाटा-सा ईवाने-सितमगरमें[6] ।।

मयकदेसे चला गया मसजिद।
अरे तौबा ! यह क्या किया मैंने ?

जो क़िस्मतमें जलना ही था शमअ़ होते ।
कि पूछे तो जाते किसी अंजुमनमें ।।

बज़्मे-साक़ीमें ज़रा हुश्यार बैठें आज मस्त ।
कल यहीं पहलूसे मेरा शीशये-दिल उठ गया ।।

न ख़ामोश रहना मेरे हम-सफ़ीरो[7] !
जब आवाज़ दूं तुम भी आवाज़ देना ।।

---

[1]दिल-रूपी शीशेके कण; [2]पर टूटे हुए की; [3]जालमें फँसे हुएकी; [4]उद्देश्य; [5]मजबूरीका; असहायावस्थाका; [6]अत्याचारीके महलमें; [7]साथियो।

ग़ज़ल उसने छेड़ी मुझे साज़ देना।
ज़रा उम्रे-रफ़्ताको आवाज़ देना॥

—आजकल फ़रवरी १९४६

तू भी मायूसे-तमन्ना[1] मेरे अन्दाज़में है।
जब तो यह दर्द पपीहे तेरी आवाज़में है॥

तालिबे-दीदपर आँच आये यह मंज़ूर नहीं।
दिलमें है वरना वोह बिजली जो सरे-तूर नहीं॥
दिलसे नज़दीक है, आँखोंसे भी कुछ दूर नहीं।
मगर इसपर भी मुलाक़ात उन्हें मंज़ूर नहीं॥
छेड़दे साज़े-अनलहक़ जो दुबारा सरे-दार।
बज़्मे-रिन्दाँमें अब ऐसा कोई मन्सूर नहीं॥
हमको परवाना-ओ-बुलबुलकी रक़ाबतसे ग़रज़?
गुलमें वह रंग नहीं, शमअमें वोह नूर नहीं॥

कभी "कैसे हो सफ़ी?" पूछ तो लेता कोई।
दिल-दहीका[2] मगर इस शहरमें दस्तूर नहीं॥

दर्दे-आग़ाज़े-मुहब्बतका[3] अब अंजाम नहीं।
ज़िन्दगी क्या है, अगर मौतका पैग़ाम नहीं॥

नज़र हुस्न-आइना ठहरी वोह ख़िलवत हो कि जलवत हो।
जब आँखें बन्द कीं तसवीरे-जानाँ देख लेते हैं॥

वोह ख़ुद सरसे क़दमतक डूब जाते हैं पसीनेमें।
मेरी महफ़िलमें जो उनको, पशेमां देख लेते हैं॥

---

[1]निराश; [2]अर्थात् हृदयकी बात पूछनेका; [3]प्रेमके प्रारंभिक दर्दका।

'सफ़ी' रहते हैं जानो-दिल फ़िदा करनेपै आमादा।
मगर उस वक़्त जब इन्साँको इन्साँ देख लेते हैं॥

सुनेगा कौन? सुनी जायेगी 'सफ़ी' किससे।
तुम्हारी राम कहानी यह ज़िंदगी भरकी॥

इन्सानको उसने ख़ाकसे पाक किया,
जी-हौसलये-ओ-साहबे-इदराक[1] किया॥
पहले तो बनाया उसे गंजीनये-इल्म[2],
फिर गंजको[3] पोशीदा-तहे-ख़ाक[4] किया॥

—शायर मई-जून १९४५ ई०

क्योंकर यहाँ तुम्हारी तबीयत बहल गई।
इतनी ही ज़िंदगी हमें ऐ ख़िज़्र! खल गई॥
जब एक रोज़ जानका जाना ज़रूर है।
फिर फ़र्क़ क्या वह आज गई, ख़्वाह कल गई॥
जब दम निकल गया ख़लिशे-ग़म भी मिट गई।
दिलमें चुभी थी फाँस जो दिलसे निकल गई॥

फूल ऐ दश्तेजुनूं! कौन चुने दामनमें।
तेरे काँटे ही बहुत हैं मेरे बिस्तरके लिए॥

इन्सान मुसीबतमे हिम्मत न अगर हारे।
आसाँसे वह आसाँ है, मुश्किलसे जो मुश्किल है॥
दुनियाकी तरक़्क़ी है, इस राज़से[5] वाबस्ता[6]।
"इन्सानके क़ब्ज़ेमें सब कुछ है अगर दिल है॥"

कुछ भी न हैफ़ कर सके हस्तीए-मुस्तआरमें[7]।
हो गई ख़त्म ज़िन्दगी मौतके इन्तज़ारमें॥

---

[1]साहसी एवं विवेकी; [2]इल्मका भंडार; [3]भंडारको; [4]क़ब्रमें गाड़ दिया; [5]भेदसे; [6]संबंधित; [7]माँगी हुई ज़िन्दगीमें।

खुलते ही आँख इश्क़ने हुस्ने-अदापै जान दी।
आई क़ज़ा शबाबमें, देखी ख़िज़ाँ बहारमें!
भूले हुए जहे नसीब[1] अब भी जो याद आ गये।
फ़ातिहाको आये कब जब ख़ाक नहीं मज़ारमें॥

हमारी आँखसे जब देखिये आँसू निकलते है।
जबींकी हर शिकनसे दर्दके पहलू निकलते है॥

ख़मोश रहने दो ग़मज़दोंको, कुरेदकर हाले-दिल न पूछो।
तुम्हारी ही सब इनायतें है, मगर तुम्हें कुछ ख़बर नहीं है॥
उन्हींकी चौखट सही, यह माना, रवा नहीं बेबुलाये जाना।
फ़क़ीर उज़लतगुज़ीं[2] 'सफ़ी' है, गदाये-दरवाज़ागर[3] नहीं है॥

उफ़ री नासाज़िए-दिल, एक ज़माना गुज़रा।
ज़ोफ़ अब तक वही डूबी हुई आवाज़में है॥

बेक़रारी दिले-बीमारकी अल्ला-अल्ला।
फ़र्शेगुलपर भी न आना था, न आराम आया॥
जौरे-दरबाँकी तो कुछ भी न हुई तहक़ीक़ात।
मेरे ही सर मेरी फ़रियादका इलज़ाम आया॥

आईने-मुहब्बत है बहुत बाइसे-तकलीफ़।
ऐ काश जहाँसे कोई यह रस्म उठा दे॥

शबे-निशातका[4] पिछला पहर था ऐ ग़ाफ़िल!
जिसे शबाब[5] समझता था, वह शबाब न था॥

---

[1]अहोभाग्य; [2]एकान्तवासी; [3]दरका भिखारी; [4]आनन्दमयी रात्रिका; [5]युवकोचित सौंदर्य।

वोह आहे-सर्द हूँ निकले जो एक टूटे हुए दिलसे।
सरापा दर्द हूँ और दर्दका ख़ुद अपने दरमाँ[1] हूँ॥

जो चीज़ नहीं बसकी फिर उसकी शिकायत क्या ?
जो कुछ नज़र आता है, अच्छा नज़र आता है॥

—केसरकी क्यारी

क़फ़स ले उड़ूँ मैं हवा अब जो सनके।
मदद इतनी ऐ बाले-परवाज़[2] देना॥

१५ नवम्बर १९५१]

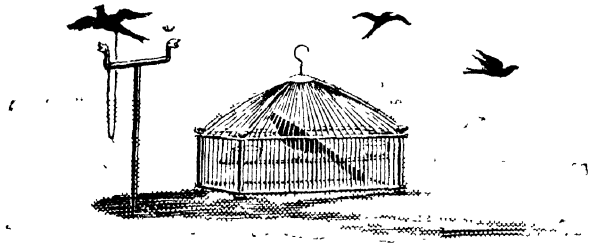

क़फ़स

---

[1]इलाज; [2]परोंके उड़नेकी क्षमता।

नज़र लखनवी

[१८६६ – १९२३ ई०]

मुंशी नौबतराय 'नज़र' लखनऊके कायस्थ परिवारमें १८६६ ई० में उत्पन्न हुए और १९२३ ई० में स्वर्गस्थ। मध्यवर्ती युगके प्रसिद्ध महाकवि 'मुसहफ़ी'[1] की शिष्य-परम्परामें उत्पन्न आग़ा 'मजहर' के १८८४ ई० में शिष्य बने। आपका समस्त जीवन भरण-पोषणकी चिन्ताओं और इष्ट-वियोगमें बिलखते हुए व्यतीत हुआ। क़लमके मजदूर थे। १८९७ ई० में आपने 'खदंगे नज़र' मासिक पत्र प्रकाशित किया, जो कि अर्थाभावके कारण सात वर्ष बाद बन्द कर देना पड़ा। १९०५ ई० में आप कानपुरके 'ज़माना' मासिक पत्रके संपादकीय विभागमें चले गये। वहाँसे १९१० में प्रयाग जाकर इण्डियन प्रेससे 'अदीब' प्रकाशित किया। प्रयागमें एक वर्ष रहे, फिर कुछ दिन बाद 'ज़माना' आफ़िसमें रहे। कुछ दिनों बाद 'अवध' लखनऊकी संपादकी मिल गई थी।

उदर-पोषणके लिए इधर-उधर मारे-मारे फिरने और घोर परिश्रमके कारण स्वास्थ्य चौपट हो गया। स्वासके भी पुराने रोगी थे।

'नज़र' आर्थिक चिन्ताओंके साथ-साथ सन्तानवियोगसे भी पीड़ित रहे। लड़का कोई हुआ नहीं। एक लड़की, एक नवासा, एक बूढ़ी माँ

---

[1] मुसहफ़ीका परिचय और कलाम शेर-ओ-सुख़न' प्रथम भागमें दिया जा चुका है।

घरकी ज़ीनत थे। नवासेको प्यार-दुलार करके समस्त ग़मोंको भुलाये रहते थे। भाग्यको यह सुख भी सह्य न हुआ। नवासा भी उनकी गोदसे छीन लिया।

थमो-थमो कि इस उजड़े मकाँका था यह चराग़।
बहारपर था इसी नौनिहालसे यह बाग़॥
न होगा अब मुझे हासिल कभी जहाँमे फ़राग़।
तमाम उम्र दिले-नातवाँ है और यह दाग़॥
फ़ुग़ाने-बुलबुले-जाँ दिलके पार होती है।
'नज़र'के बाग़से रुख़सत बहार होती है॥

और सचमुच उनके घरसे बहार रुख़सत हो गई। थोड़े दिन बाद बूढ़ी माँ भी चल बसी। पड़ोसमें एक बच्चा था, उसको लाड़-प्यार करके साथ सुलाके नवासेके ग़मको भुलानेका प्रयत्न करने लगे तो एक रोज़ वह भी छतसे गिरकर मर गया। 'नज़र' इस सदमेको बर्दाश्त न कर सके और स्वयं भी यह शेर कहकर इस व्यथा भरी ज़िन्दगीसे किनारा कर गये—

ऐ इनक़लाबे-आलम! तू भी गवाह रहना।
काटी है उम्र हमने पहलू बदल-बदलकर॥

'नज़र' का कलाम व्यथासे ओत-प्रोत है। आप शायर ही नहीं, अच्छे आलोचक और पत्रकार भी थे। आपकी क़लमी तसवीर रशीदहसन साहब यूँ खींचते हैं—

"नज़र मियाना क़द थे। दुबले-पतले, गन्दुमीरंग—लिबासमें सादगी, मिज़ाजमें नफ़ासत, नमूदोनुमाइशसे हद दर्जे मुज्तनिब। ग़रूरो-तकब्बुर छूतक न गया था। 'नज़र' जितने अच्छे शायर थे, उससे ज़्यादा अच्छे इन्सान थे। जितने उम्दा शेर कहते थे, वैसे ही ख़ुशनवीस-ओ-मुसव्वर भी थे। शतरंजका भी शौक़ था।"

'नज़र' लखनऊके उस युगमें उत्पन्न हुए थे, जब कि वहाँ ख़ारजी[1] शायरीका बोलबाला था। जिसकी वजहसे लखनऊ आजतक बदनाम है। गो वहाँ वर्त्तमान युगमें एक भी शायर ख़ारजी रंगका अनुयायी नहीं है, और एक-से-एक बेहतर शायर उत्पन्न करनेका लखनऊको सौभाग्य प्राप्त है। फिर भी पुराना दाग़ मिटाये नहीं मिटता। यह माना कि नज़रके युगमें ख़ारजी शायरीके विरोधमें चारों तरफ़ आवाज़ें उठने लगी थीं। लेकिन लखनऊके शायरोंपर इस विरोधका बहुत कम असर हुआ था। प्रचलित परम्पराके विरुद्ध कहना हर-एकके बसकी बात नहीं। इसी विरोधके कारण 'यगाना' चंगेज़ी-जैसा ज़बर्दस्त और निर्भीक शायर तिरस्कृत और उपेक्षित करके बर्बाद कर दिया गया, तब सर्व-साधारणकी तो बिसात ही क्या थी?

'नज़र'की विशेषता यही है कि उन्होंने उस वातावरणमें भी शुद्ध शायरीके दामनको हाथसे नहीं छोड़ा। हज़रत रशीद हसन ख़ाँ लिखते हैं—

"नज़र अपने मुआसर (समकालीन) से इसलिए मुमताज़ (श्रेष्ठ) हैं कि उन्होंने माहोल-ओ-पसन्दे ज़माना (वातावरण और जनताकी रुचि) को बिलकुल नहीं देखा। मज़ाक़े-आमियाना (आम जनताकी रुचि) की पैरवी करके फ़तवाये-उस्तादी-ओ-सुख़नवरी (उस्तादी और शायरीका प्रमाणपत्र) लेना गवारा नहीं किया, बल्कि रूहेशायरी (शायरीकी आत्मा) को अपनाया। सस्ती शुहरतसे रूकश होकर लताफ़ते ख़याल-ओ-सदाक़ते बयानकी अक़लीमपर तसर्रुफ़ (वास्तविक कलापर ध्यान केन्द्रित) किया। यह ज़रूर है कि 'नज़र'को इसकी क़ीमत बहुत गराँ देनी पड़ी। यानी लखनऊने अपना रिवायती सलूक (परम्परा-

---

[1]ख़ारजी अथवा लखनवी शायरी क्या है, यह विस्तारपूर्वक 'शेरो सुख़न' प्रथमभाग में उल्लिखित हुआ है। प्रस्तुत पुस्तकमें भी सिंहावलोकनमें ज़िक्र आया है।

का व्यवहार) दुहराया। उनकी शायरीकी तरफ़से ऐसी आँखें फेर लीं, जैसे कि वे शायर ही नहीं थे। सदहा मुशायरोंको नुमायाँ किया, लेकिन 'नज़र' का नाम लेना भी तौहीने-अदब (साहित्यका अपमान) समझा। आज आपको वहाँकी महफ़िलोंमे सबका तज़करा (इतिहास) मिलेगा। उनका भी जो किसी एतबारसे इसके मुस्तहक़ (अधिकारी) नही। लेकिन 'नज़र' का नाम किसी उनवानके तहत भी (शायर, आलोचक, पत्रकार, चित्रकार, आदिमें) न आयेगा। जैसे कि इस नामका कोई शायर वहाँ गुज़रा ही नही। हद यह है कि आज कोई शख़्स उनका मजमूये-कलाम (शायरीका संकलन) देखना चाहे तो नहीं देख सकता। कितना बड़ा अलमीया (दुःख) है कि इस शख़्सका दीवानतक मुरत्तिब न हो सके, जो सही मायनेमें लखनऊके लिए निशानेराह (मीलका पत्थर) था, और इसलाहकी इब्तदा करनेवाला। ऐसे शायरका ज़मनी तौरपर भी तज़किरा न आ सके जो मज़ाक़े-आमसे गुरेज़ाँ (सस्ती जनरुचिसे परे) था और 'मीर' का मौतक़िद (अनुयायी)।.....'नज़र' की ना-क़दरी लखनऊकी जबीपर यादगार दाग़ रहेगी।

"'नज़र'के कलाममें वोह सादगी और दर्द ज़रूर है जो मीर-ओ-दर्दका सरमाया है। 'नज़र'की ज़बानमें बेहद लोच है और तर्ज़े-अदामें बलाका सोज़ोगुदाज़। हर शेर असरमें डूबा हुआ होता है। 'नज़र'के कलामकी एक वोह ख़सूसियत, जो उन्हें अपने मुआसरीन (समकालीनों) से बुलन्दतर कर देती है, यह है कि तमाम कलाममें इब्तज़ाल-ओ-रकायत (ज़लील, हक़ीर, आम कमीनापन) की एक मिसाल भी नहीं मिल सकती। एक शेर भी ऐसा नही मिलेगा, जिसमें मज़ाके-आमियानाका शाइबा भी हो। हद यह है कि कोई ग़ज़ल ऐसी नही मिलेगी, जिसमें एक भी शेर भर्तीका हो और अपने मियारसे गिरा हुआ। एक पैराय-ए-बयान भी ऐसा नहीं मिलेगा, जो कि उस ज़मानेके रंगसे मिलता-जुलता हो। कहीं भी वस्लोहिज्रका सोकयाना (बाज़ारी स्त्रियों संबंधी) बयान नहीं मिलेगा, और एक जगह भी

मुहमिल इस्तआ़रात (न समझमें आनेवाली उपमाएँ) और फ़रसूदा तख़ैयुलात (घटिया कल्पनाओं) का परतव नज़र नहीं आयेगा। यह वोह खूबी है जो हरेकको नसीब नहीं होती।"[1]

फ़ना होनेमें सोज़े-शमअ़की[2] मिन्नतकशी कैसी ?
जले जो आगमें अपनी उसे परवाना कहते हैं ॥

अभी मरना बहुत दुश्वार है ग़मकी कशाकशसे।
अदा हो जायगा यह फ़र्ज़ भी फ़ुरसत अगर होगी ॥
मुआफ़ ऐ हमनशीं[3] ! गर आह कोई लब पै आ जाये।
तबीयत रफ़्ता-रफ़्ता ख़ूगरे-दर्दे-जिगर[4] होगी ॥

मुजस्सिम[5] दागे़-हसरत[6] हूँ, सरापा नक़्शे-इबरतका[7]।
मुझे देखो ! यही अंजाम है, आख़िरको उलफ़तका ॥

जहाँमें चार दिन रहकर फ़क़त बूए-वफ़ा देना।
गुलोंसे मैं सबक़ लेता हूँ आईने-मुहब्बतका ॥

सुन लो कि रंगे-महफ़िल कुछ मौतबर नहीं है।
है इक ज़बान गोया, शमये-सहर[8] नहीं है ॥
मुद्दतसे ढूँढ़ता हूँ मिलता मगर नहीं है।
वोह इक सकूने-ख़ातिर[9] जो बेश्तर नहीं है ॥

यूं तो दिलको कभी क़रार न था।
अब बहुत बेक़रार रहता है ॥

---

[1]'निगार' सितम्बर १९४९ पृ० ३९-४४; [2]दीप शिखाकी; [3]पड़ौसी; [4]जिगरके दर्दकी अभ्यस्त; [5]पूर्ण-रूपेण; [6]अभिलाषाओंका दाग़; [7]नसीहतका सरसे पाँवतक आकार हूँ; [8]सुबहका दीपक; [9]पूर्ण शान्ति।

दिलकी हालत नहीं बदलनेकी।
अब यह दुनिया नहीं सम्भलनेकी॥

बस एक नज़र और कि अब ख़त्म है क़िस्सा।
फिर होगी न तुमको मेरे मरनेकी ख़बर भी॥

हुई है क्या जाने क्या बुराई, क़फ़ससे पाते नहीं रिहाई।
गुलोंकी बूतक न उड़के आई, इधरकी शायद हवा नहीं है॥
इतनी ही रह गई है अब कायनात[1] दिलकी।
देखोगे जब तुम आकर कुछ इज़्तराब[2] होगा॥
न हुई जलवा-गहे-नाज़की[3] वुसअ़त[4] मालूम।
गो मैं हर ज़र्रेको एक दीदये-हैराँ[5] समझा॥
तबाही दिलकी देखी है जो हमने अपनी आँखोंसे।
हो अब कैसी ही बस्ती हम उसे वीराना कहते हैं॥
कोई मुझ-सा मुस्तहक़्क़े-रहमो-ग़मख़्वारी[6] नहीं।
सौ मरज़ हैं और बज़ाहिर कोई बीमारी नहीं॥
इश्क़की नाकामियोंने इस क़दर खींचा है तूल।
मेरे ग़मख़्वारोंको अब चाराये-ग़मख़्वारी नहीं॥
क़फ़ससे छुटके हुआ बाग़-बाग़ दिल कैसा ?
बहार दे गया उजड़ा हुआ नशेमन भी॥
ख़िज़ाँ अंजाम है सबकी, बहारे चन्द रोज़ाकी।
बहुत रोता हूँ सूरत देखकर गुलहाये-ख़न्दाँकी[7]॥
परदा उठा दे इक दिन तू ऐ हिजाबे-हस्ती!
पाता हूँ उसको दिलमें देखा मगर नहीं है॥

---

[1]पूंजी; [2]बेचैनी; [3]माशूक़के सौन्दर्य्य सदनकी; [4]विशालता; [5]दृष्टिको चकित कर देनेवाला; [6]दया-पात्र; [7]विकसित फूलकी।

आते-आते रुक गया है, दम जो मुझ दिलगीरका।
आह भरकर मुन्तज़िर हूँ आहकी तासीरका॥
वोह एक तुम कि सरापा बहारो-नाज़शे-गुल।
वोह एक मैं कि नहीं सूरत आशनाये-बहार॥
ज़मींपै लाल-ओ-गुल बनके आशकार हुआ।
छुपा न ख़ाकमें जब हुस्ने-ख़ुदनुमाए-बहार॥

तआलुक़े-गुलो-शबनम है राज़े-उलफ़त भी।
उन्हें हँसाये, जहाँतक हमें रुलाये बहार॥

दिल था तो हो रहा था, अहसासे-ज़िन्दगी भी।
ज़िन्दा हूँ अब कि मुर्दा, मुझको ख़बर नहीं है॥
मरनेपै जिस्मे-ख़ाकी क्या साथ रूहका दे।
राहे-अदममें ग़ाफ़िल ! गर्देसफ़र नहीं है॥
बेसाख़्तगीये-जोशेजुनूं दाद तलब है।
चल निकले हैं, गो हमने बयाबाँ नहीं देखा॥
सोज़ाँ[1] ग़मे-जावेदसे[2] दिल भी है जिगर भी।
इक आहका शोला[3] कि इधर भी है उधर भी॥
वोह अंजुमने-नाज़[4] हैं और रंगे-तग़ाफ़ुल[5]।
याँ मरहलये-आह[6] भी, अन्दोहे-असर[7] भी॥
वोह शमअ़ नहीं हैं, कि हों इक रातके मेहमाँ।
जलते है तो बुझते नहीं हम वक़्ते-सहर[8] भी॥
जीनेके मज़े देख लिये तेरी बदौलत।
अब-ओ दिले-नाकामे-तमन्ना कहीं मर भी॥

---

[1]जलता हुआ; [2]स्थाई व्यथासे; [3]चिनगारी; [4]प्रेयसीकी महफ़िल; [5]उपेक्षा-भाव; [6]आहकी समस्या; [7]आहके असर न होनेका दुख; [8]प्रातः काल।

अपनी शबे-हिजराँमे[1] नहीं दख़ले-तग़ैय्युर[2]।
बातिल[3] है यहाँ फ़लसफ़ये शामो-सहर भी॥
सुनता हूँ कि ख़िरमनसे[4] है बिजलीको बहुत लाग।
हाँ एक निगाहे-ग़लत-अन्दाज़ इधर भी॥
मेरी सूरत देखकर क्यों तुमने ठंडी सांस ली?
बेकसोंपर रहम--आईने-सितमगारी[5] नहीं॥
हर तरफ़से यह सदा आती है मुल्के-हुस्नमें--
"यह वोह दुनिया है जहाँ रस्मे-वफ़ादारी नहीं।"
सिवादे-शामे-ग़मसे[6] रूह थर्राती है क़ालिबमें[7]।
नहीं मालूम क्या होगा, जो इस शबकी[8] सहर[9] होगी॥
क़फ़ससे छूटकर पहुँचे न हम, दीवारे-गुलशनतक।
रसाई आशियाँतक किस तरह बेबालो-पर होगी॥
फ़क़त इक साँस बाक़ी है, मरीज़े-हिज्रके तनमें।
यह काँटा भी निकल जाये तो राहतसे बसर होगी॥
हर क़दमपर बाग़े आलममें बिछा है दामे-हुस्न[10]।
कौन ऐसा है जिसे ज़ौक़े-गिरफ़्तारी[11] नहीं॥

२५ फरवरी १९५२]

---

[1]वियोग रात्रिमें; [2]परिवर्तनको स्थान; [3]निरर्थक; [4]खलिहानसे; [5]अत्याचारका नियम; [6]ग़मरूपी सन्ध्यासे; [7]शरीरमें; [8]रात्रिकी; [9]सुबह; [10]सौन्दर्य-जाल; [11]बन्दी होनेका चाव;

साक़िब लखनवी

[१८६९ – १९४६ ई०]

मिर्ज़ा ज़ाकिर हुसेन'साक़िब' २ जनवरी १८६९ ई०को आगरेमें उत्पन्न हुए। उसी आगरेमें, जहाँ उर्दूके अमर शायर—मीर, ग़ालिब, और नज़ीर पैदा हुए थे। यह प्रकृतिकी अनोखी सूझ ही समझिये कि जो साक़िब, मीर-ओ-ग़ालिबकी शिष्य परम्परासे दूरका वास्ता न रखते हुए भी शायरीमें उनके उत्तराधिकारी समझे जाते हैं; जिन्हें मीर-जैसी मधुर एवं हृदयस्पर्शी भाषा और ग़ालिब-जैसी उच्च भावनाएँ और अनोखी कल्पनाएँ प्राप्त हुई; उन्हें उनकी क्रीडास्थलीमें जन्म लेनेका भी सौभाग्य प्राप्त हुआ।

अभी आप छः माहके थे कि आपके पिता आगरा छोड़कर लखनऊ चले आये और कुछ दिनों नौकरीके सिलसिलेमें इधर-उधर रहकर स्थायी रूपसे लखनऊमें बस गये।

क़ुदरतकी सितमज़रीफ़ी देखिये कि साक़िबको बचपनसे ही जितनी ज़्यादा शायरीसे रग़बत थी, उतनी ही अधिक आपके पिताको उससे चिढ़ थी। परिणाम इसका यह हुआ कि आपके मनोभाव मन-ही-मनमें घुटने लगे। आख़िर यह घुटन कबतक चलती। वह भापकी तरह उमड़ पड़ी। अभी आप १२ वर्षके थे, और शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। बुज़ुर्गोंके भयसे न तो ग़ज़ल कह सकते थे और न किसी मुशायरेमें क़दम रख सकते थे। बेचारे मन मारकर रह जाते थे। आख़िर आपने एक उपाय निकाल ही लिया। आप मुशायरोंके मिसरा तरहोंपर ग़ज़ल कहते और अपने सह-

पाठियोंको मुशायरोंमें पढ़नेके लिए दे देते। किस शेरपर किस-किस उस्तादने दाद दी, साथियोंसे यही जानकर आत्मसंतोष कर लेते थे।

१८८७ से १८९१ तक आप अंग्रेज़ी शिक्षा प्राप्त करनेके लिए आगरे रहे। ख़ुश क़िस्मतीसे वहाँ आपको मोमिन हुसेन ख़ाँ 'सफ़ी' जैसे योग्य उस्ताद नसीब हुए। उन्हें उर्दू, फ़ारसी, अरबी तीनों भाषाओंमें शेर कहनेका बहुत अच्छा अभ्यास था। प्रतिभा संपन्न 'साक़िब'को उन्होंने मुक्त हृदयसे शिक्षा दी और आप चन्द ही दिनोंमें इस योग्य हो गये कि अपने गुरु भाइयों-की ग़ज़लोंका सफलतापूर्वक संशोधन करने लगे।

मिर्ज़ा साक़िब जितनी उच्च कोटिकी ग़ज़ल कहते थे, उतनी ही हृदय-स्पर्शी आवाज़में पढ़ते भी थे कि श्रोताओंपर जादू-सा होने लगता था, और मुशायरे-का-मुशायरा झूम उठता था। मुशायरोंमें पहले तरन्नुमसे[1] पढ़नेकी प्रथा नहीं थी, यह इसी बीसवीं सदीकी देन है[2]। इस प्रथाके कारण कलाम-पर कम और तरन्नुमपर अधिक दाद मिलती है, और अक्सर देखा जाता है कि तरन्नुमसे न पढ़ सकनेके कारण अच्छे-से-अच्छे उस्ताद नौसिखुए छोकरोंके सामने माँद पड़ जाते हैं। मिर्ज़ा कभी भी तरन्नुममें ग़ज़ल नहीं पढ़ते थे, फिर भी उनकी सादा और पुरजोश ग़ज़ल-ख़्वानीके सामने ख़ुश गुलू और संगीत पारंगत शायर भी अपना रंग नहीं जमा पाते थे। अक्सर दावेके साथ प्रतिद्वंद्वी शायर मुशायरोंमें गये, मगर आपके समक्ष मुँहकी खाकर बाहर निकले।

मिर्ज़ाको फ़िलबदी (तात्कालिक) शेर कहनेका बहुत अच्छा अभ्यास था। एक बार लखनऊके कुछ प्रतिष्ठित साहित्य-प्रेमियोंने यह आयोजन किया कि मुशायरेमें सम्मिलित होनेवाले शायरोंके आ जानेपर मिसरा तरह देकर वहीं ग़ज़ल कहलाई जाय, ताकि मालूम हो सके, कौन कितने पानीमें है।

---

[1] गाकर पढ़ना; [2] लोगोंका कहना है कि तरन्नुमसे पढ़नेका रिवाज नवाब 'साइल' देहलवीने चालू किया। आपका परिचय चौथे भागमें मिलेगा।

योजनाके अनुसार मिसरा तरह देनेपर आपने सबसे पहले, सबसे अधिक और सबसे अच्छे शेर कहे, और आप ही विजयी घोषित हुए। आप अक्सर चलते हुए शेर कहते थे, परिणाम स्वरूप कई बार सवारियोंसे और राहगीरोंसे टकराकर चोट खा गये।

मीर-ओ-ग़ालिबकी तरह आप भी आर्थिक चिंताओंमें ग्रसित रहे। एक हज़रतके साथ अपनी समस्त जमा पूंजी लगाकर व्यापार किया तो उन्होंने सब पूंजी चौपट कर दी।

१९०६ में यानी २७ वर्षकी उम्रमें आप कलकत्ते गये और वहाँ सिफ़ारितख़ानए ईरानमें दो वर्ष प्राइवेट सेक्रेटरी रहे। १९०८ ई० में राजा-महमूदाबादने आपको बुला लिया और ५० रु० मासिक पेंशन नियत कर दी। इस युगमें इस अल्प आयसे क्या होता है, मगर आप इतने सन्तोषी थे कि उसीमें आनन्दपूर्वक जीवन-यापन करते रहे।

मिर्ज़ा पुरानी वज़अ़-कत़अ़के बुज़ुर्ग थे। सरल स्वभावी, उच्च विचारक और गंभीर। बहुत मिलनसार लेकिन स्वाभिमानी व्यक्ति थे। मित्रोंके समक्ष नम्र, किन्तु शत्रु-पक्षके आगे सरबुलन्द। आत्मविज्ञापनसे कोसों दूर, अपने विचारोंमें अक्सर लीन और खोये-से रहते थे। स्वतन्त्र विचारक और बातचीतमें संजीदा। दुबले-पतले। शक्लो-शबाहत भद्रतापूर्ण। चेहरेपर सफेद फ्रेंच दाढी और आँखोंपर चश्मा निहायत ज़ेब देता था। अक्सर काली शेरवानी और गोल टोपी पहनते थे। २२ नवम्बर १९४६ को आप जन्नत नशीं हुए।

मिर्ज़ाकी शायरी

मिर्ज़ाका समस्त जीवन प्रायः लखनऊमें व्यतीत हुआ। उन्होंने अपनी किशोरावस्थामें १९ वीं शताब्दीके अंतिम युगोंके ख्यातिप्राप्त साहिबेकमाल उस्तादोंको अपनी आँखोंसे देखा। असीर, बर्क़, बहर, क़लक, अमीर,

जलाल, शमशाद, इश्क़, उन्स, बक़ा, तश्आशुक, रसीद, कामिल आदि सब लखनवी शायर तब ज़िंदा थे।

उन दिनों लखनऊकी शायरीपर दो प्रकारका वातावरण छाया हुआ था। एक नासिख़ी दूसरा बाज़ारी। यद्यपि नासिख़को गुज़रे हुए ५० वर्षके क़रीब हो चुके थे, तो भी उनके शिष्य और परशिष्य नासिख़ी स्कूल खोले हुए बैठे थे। बाज़ारी शोख़ तर्ज़े अदाने ग़ज़लको इस क़दर पतितावस्थामें पहुँचा दिया था कि भले आदमी दामन बचाकर निकलने लगे थे। मगर आम जनता इस तर्ज़े-अदापर टूटी पड़ती थी। संक्षेपमें यूँ समझिये कि जिस शहरमें नौटंकी हो रही हो, तो वहाँके भद्र पुरुषोंकी तो नींद हराम हो जाती है। मगर जनसमूह उमड़ पड़ता है। वर्तमानमें सिनेमाओंके कुरुचिपूर्ण प्रदर्शनोंसे लोग ऊब गये हैं, मगर जन-साधारणकी भीड़का यह आलम रहता है कि एक-पर-एक टूटा पड़ता है।

मिर्ज़ाने भी इसी वातावरणमें शायरीकी चौखटपर पाँव रखा, और नासिख़का जो रंग सामने था, उसीमें ग़ोते लगाने लगे। मिर्ज़ाका क्या ज़िक्र? नासिख़का रंग तो किसी वक़्तमें इतना मक़बूल हुआ कि 'आतिश'-जैसे उस्ताद उसके छींटोंसे अपने दामनको बचाये न रख सके। और आतिशको तो ख़ैर नज़रन्दाज़ किया भी जा सकता है, क्योंकि आख़िर वह भी लखनवी थे। मगर देहलवी शायर शाह 'नसीर' और 'ज़ौक़' को क्या हुआ था जो उम्रभर डुबकियाँ मारते रहे। और-तो-और ग़ालिब-ओ-मोमिन जैसोंके पाँव भी फिसले बग़ैर नहीं रह सके। वह तो ख़ैर हुई जो फ़ौरन सँभल गये, वरना ईश्वर ही जाने आज उर्दू ग़ज़ल कहाँ होती। और होती, या नहीं यह भी कुछ कहा नहीं जा सकता।

हाँ तो मिर्ज़ाने अपनी शायरीका श्रीगणेश नासिख़ी स्कूलसे ही किया। दो-चार नमूने देखिये—

इश्क़े-पेचाँ क़दे जानाँने बनाया 'साक़िब'!
ऐंड़ना भूल गये, सरव-ओ-सनोबर अपना॥

मेरे लहूसे अगर होके सुर्ख़रू आये।
मलो तो बर्गेहिनामें वफ़ाकी बू आये॥
देर-पा है किस क़दर 'साक़िब' हसीनोंका शबाब।
उम्रभर अपनी जवानीकी क़सम खाते रहे॥
मैं सख़्त जाँ नहीं, ख़ंजर भी तेज़ है लेकिन—
निगाहे-यास है क़ातिलकी तेज़ दस्ती है॥
ज़ख़्मे-जिगरसे अबरुए-क़ातिलने चाल की।
दिलतक शिगाफ़ दे गई, छूट उस हिलालकी॥
ग़ैरकी इमदादसे चमके नहीं अहले-कमाल।
नामको रोग़न चराग़े-तूरे-सीनामें न था॥

इस प्रकारके नासिख़ी शेर मिर्ज़ाके दीवानमें यत्र-तत्र काफ़ी नज़र आते हैं। आपने अपने सोज़ो गुदाज़से कलाममें वोह बात पैदा कर दी है कि नासिख़ी रंग धुलकर रह गया है। यही मिर्ज़ाकी शायरीका कमाल है। हाँ, जहाँ नासिख़का रंग गहरा हो गया है, वहाँ असर और मज़ा जाता रहा है।

मिर्ज़ा साहबका तग़ज़्ज़ुलकी दुनियामें जो उच्च और महत्वपूर्ण स्थान है, उसको देखते हुए न जाने क्यों इस तरहके हलके शेर भी दीवानमें दृष्टिगोचर होते हैं—

ख़फ़ा क्यों हो जो पैग़ामे-क़ज़ा अबतक नहीं आया।
बुरे दिलसे तुम्हें ख़ुद कोसना अबतक नहीं आया॥
ग़ैरोंको दिखाया मेरा दिल खोलके यूँ ही।
मुझसे दमे-पुरसिश यह कहा—"और ही कुछ है"॥
क्यों मेरे सीनेसे उठे फेरकर मुझपर छुरी?
नातवाँ है दिल, मगर यह बार रहने दीजिये॥

साफ़ कह दीजिये वादा ही किया था किसने।
उज्र क्या चाहिए झूठोंको मुकरनेके लिए॥

इस प्रकारके हलके अशआर निकाल दिये जाते तो बेहतर होता, लेकिन संभव है इन अशआरके दिये जानेका कारण यह भी हो कि मिर्ज़ा जनताको यह बताना चाहते हों कि वातावरणका प्रभाव किसी-न-किसी रूपमें सभीपर पड़ता है, और मेरे जैसा सुरुचिपूर्ण और उन्नत विचारक भी लखनवी दूषित वातावरणसे अपने दामनको अछूता न रख सका। और इसको क्या कहिये कि इस युगमें भी जब कि शायरी छलाँग मारती हुई कहाँ-से-कहाँ जा पहुँची है, आज भी बहुत-से लखनवी शायर इस फीकी बदमज़ा शायरीपर सर धुनते है।

मिर्ज़ाके यहाँ कुछ कलाम क्लिष्ट और ऐसा भी मिलता है, जिसका अभिप्राय समझना कठिन होता है।

मिर्ज़ा साक़िबने १९ वी शताब्दीमें आँखें खोलीं, और उन्हें उस युगके शायरोंके रंग-ढंग देखनेको मिले। बीसवीं सदीमें उनकी शायरी परवान चढ़ी। अतः उनकी शायरीमें अर्वाचीन और वर्तमान युगका ऐसा खट्टा-मीठा सम्मिश्रण हुआ है कि वह गुड़ और अमचूर न रहकर शन्तरा बन गई है। यानी उनकी शायरीमें परम्पराओंका निभाव, छन्द और पिंगलके व्याकरणकी पाबन्दी, साथ ही आधुनिक युगकी सभी समस्याओंकी झलक भी मिलेगी।

प्राचीन परम्पराके अनुसार मिर्ज़ाने भी गुलो-बुलबुल संबंधी अशआर कहे हैं। मगर अपने युगकी स्वतन्त्रताकी माँगको इस ख़ूबीसे व्यक्त किया है कि शेरमें तग़ज़्ज़ुल ज्यों-का-त्यों विद्यमान रहता है, और एक-एक शेरमें भाव ऐसे व्यक्त किये हैं कि गागरमें सागर भर दिया है।

स्वतन्त्रता-आन्दोलनको कुचलनेमें अंग्रेज़ोंने कोई कोर-कसर बाक़ी न रखी। देश-भक्त फाँसी चढ़ाये गये, जेलोंमें सड़ाये गये, उनके संदेश जनता-में गूंजते ही रहे, उन्हें कोई रोक न सका, इसी भावको मिर्ज़ाने यूँ व्यक्त किया है—

बनके इबरतकी ज़बाँ कहता रहेगा कुछ-न-कुछ।
सहने-गुलशनमें अगर मेरा कोई पर रह गया॥

जेलमें नेता पड़े हुए है, अंग्रेज़ सरकार समझती है कि स्वतन्त्रता-आन्दोलन समाप्त कर दिया गया है; परन्तु उसे जनताके हृदयमें दहकती आगका पता नहीं लगता, वह जनताके अन्तस्थलको छूनेका प्रयत्न ही नहीं करती—

तमाशा सोज़े-दिलका देख जाकर सहने-गुलशनमें।
क़फ़समें हूँ, मगर शोले भड़कते है नशेमनमें॥

संसारमें सुख-दुख, साथ-साथ रहते हैं। कोई रो रहा है, कोई हँस रहा है। एक उजड़ रहा है तो दूसरा बन रहा है। इसी भावको मिर्ज़ा यूँ व्यक्त करते है—

रस्मे-दुनिया है, कोई ख़ुश हो कोई नाशाद हो।
जब उजड़ जाये नशेमन तो क़फ़स आबाद हो॥

ज़ाहिरामें हँसोड़ व्यक्ति अपने जीवनमें कितना अधिक रोता है, यह दुनिया नहीं जानती। सिनेमा संसारका प्रसिद्ध हँसोड़ अभिनेता चार्ली चैपलिन, जो दर्शकोंके पेटमें हँसाते-हँसाते बल डाल देता है, कहते हैं उसे अपने जीवनमें हँसना कभी नसीब नहीं हुआ। हास्यरसके लेखकोंको अपने हृदयका कितना रस सुखाना पड़ता है, भुक्तभोगी ही जानते हैं। इन हँसोड़ व्यक्तियोंका मिर्ज़ाने कितना दयनीय दृश्य उपस्थित किया है—

सुबहको राज़े-गुलो-शबनम खुला।
हँसनेवाले रातभर रोया किये॥

सुभाष बाबू जीवित है या स्वर्गस्थ, यह अभीतक विवादका प्रश्न बना हुआ है। मिर्ज़ाका निम्न शेर देखिये इस जगह कैसा मौज़ूँ होता है—

ख़ूब था क़िस्सये-क़फ़स सुनते जो मेरे हमनवा।
क़ैदमें हूँ कि मर गया, इसमें भी इख़्तलाफ़ है॥

भारत-विभाजनके ५-६ माह पूर्व जो देशकी स्थिति थी, उसे देखते हुए स्वतन्त्रताका स्वप्न तो भंग हो ही गया था। संप्रदायके मोहमें पड़कर लोग अपने-अपने संप्रदायकी ख़ैर मना रहे थे। देश डूबे या रहे, इसकी संप्रदायवादियोंको तनिक भी चिन्ता नही थी। तब मिर्ज़ाका यह शेर हम अक्सर गुनगुनाया करते थे—

हमदम ! चमनकी ख़ैर मना, आशियाँ तो क्या ?
दो-चार दिन अगर यह हवा और चल गई ।।

और बापूकी वह अहिंसा, जिसकी साधाना वे निरंतर ३२ वर्षोंसे करते आ रहे थे, मुस्लिम लीगियोंके तनिक-से संकेतपर कितनी बिलखी, यह मिर्ज़ाके ही ज़बानेमुबारकसे सुनिये—

कल एक जाँ गुदाज़ तबस्सुममें बर्क़के।
बरसोंमें जो बसाई थी, बस्ती वोह जल गई ।।

१९४२ ई० में हज़ारीवाग़ जेलसे कुछ सत्याग्रही बन्दियोंने श्री जय-प्रकाशनारायण आदिको जेलसे भागनेमें सहायता दी, और बाहर निकलनेपर कुछ लोगोंने उन्हें अपने यहाँ छुपा लिया। इससे उनपर काफ़ी सख़्तियाँ हुईं। एक जी हुज़ूर क़िस्मके सज्जनसे इस बारेमें ज़िक्र आया तो बोले— "नाहक़ बैठे-बिठाये अपने सरपर आफ़त बुला ली, क्या ज़रूरत थी उन्हें यह दर्दे-सर मोल लेनेकी ?" अब मैं उन्हें कैसे समझाता कि लुत्फ़े-असीरी क्या है ? ख़ुद चाहे उम्र भर क़फ़समें पड़ा हुआ जान हलाक कर दे, मगर किस तरकीबसे सैयादकी नींदें उचाट हो सकती हैं, यह हर असीरकी ख़्वाहिश होती है। ग़रीबने मिर्ज़ाका यह शेर पढ़ा होता तो जज़बये-असीरी समझ सकता।

कोई छूटा तो असीरीसे, मेरी शुक्रे-ख़ुदा।
मैं क़फ़समें हूँ, मगर नींद उड़ गई सैयादकी ।।

और सचमुच सुभाषबाबू और जयप्रकाशनारायण आदिके अन्तर्धान हो जानेसे अंग्रेज़ शासकोंकी नीदें उड़ गई थीं।

भारत-विभाजनके बाद पंजाब और बंगालसे हिन्दू भारत चले आये। भारतका कुछ हिस्सा कटकर पाकिस्तान कहलाने लगा। मुल्लाओं, नवाबों, किसानों और ज़मींदारोंमें आरज़ी गठबन्धन हो गया। शिया-सुन्नी, अहमदी भी घी-खिचड़ी हो गये। यह ज़ाहिरा मिल्लते-इस्लाम परवान चढ़ने लगी। मगर जो दूरन्देश थे, वे अक्सर मिर्ज़ाका यह शेर गुनगुनाते होंगे--

फूलोंसे तो छुटा मैं, हाँ अब यह देखना है।
कबतक बनी रहेगी, गुलचीं-ओ-बाग़बाँमें?

स्वदेशी आन्दोलनपर मिर्ज़ाका यह शेर कैसा चस्पाँ होता है? कुछ जी-हुज़ूर विलायती कपड़ोंमें सजे हुए किसी खद्दरके कपड़े पहने हुए व्यक्तिका मज़ाक़ उड़ाते है। तो वह ग़रीब मिर्ज़ाका यह शेर सुनाकर उनकी बोलती बन्द कर देता है—

क़फ़सकी तीलियाँ अच्छी हैं, तिनकोंसे नशेमनके।
यह सब कुछ है मगर, सैयाद! दिलपर क्या इजारा है?

मिर्ज़ाके यहाँ हुस्नो-इश्क़का आसन बहुत ऊँचा है। इश्क़के लिए बहुत अधिक साधना और तप करने पड़ते है। जो विरहकी आँच बर्दाश्त नहीं कर सकते, ऐसे विषयासक्त इश्क़ करने योग्य नहीं—

इश्क़में सहल थी फ़रहादकी तक़लीद मगर।
यह मेरी हिम्मते-आलीको गवारा न हुआ॥

इश्क़ तो वोह रंग है कि जिसपर चढ़ा, फिर कभी न उतरा। चाहे मिलनकी बेला हो या विरह-रात्रि, आशिक़ तो दोनों ही हालतोंमें बेचैन रहता है–

विसालो-हिज्रमें छुपता है दिलका हाल कहीं।
बुझे तो प्यास सिवा हो, जले तो बू आये॥

जो अपने मन-मन्दिरमें प्रेम-ज्योति जला लेता है, वह चारों तरफ़से किवाड़ बन्द करके, सुध-बुध खोकर अपने हबीबको निहारता रहता है। भिलनी अपने रामको देखकर बोलनेकी शक्ति बिसार बैठी, और बुद्धि जो थोड़ी-बहुत पास थी, उसे भी खोकर एक टक निहारने लगी। प्रेमके आवेगमें उसे यह भी ध्यान नहीं रहा कि वह अपने हबीबको जो बेर खानेको दे रही है, वह स्वयं जूठे करके दे रही है। भला जूठी चीज़ भी किसी मेहमानको खिलाई जाती है? मगर इश्कके तो करिश्मे ही जुदा हैं—

इक लबे-ख़ामोश बनकर इश्क़ गोयाई रहा।
हम्द करता कौन? आलम महवे-यकताई रहा॥

[जिस इश्क़में बोलनेकी शक्ति थी, वह लब सीकर रह गया। प्रेयसीकी प्रशंसा करनेकी सामर्थ्य ही कहाँ रही, वह तो उसके यकता हुस्नपर महव होकर रह गया]

मिर्ज़ा आवाराओंकी तरह न तो कूचये-जानाँमें चक्कर लगाते हैं, और न वोह दिल फेंक तमाशबीनोंकी तरह इश्क़का ढिंढोरा पीटते हैं—

उम्र भर जलता रहा दिल और ख़ामोशीके साथ।
शमअको इक रातकी सोज़े-दिलीपर नाज़ था॥

जनकपुरीके उद्यानमें घूमते हुए राम-सीता अनजानेमें ही एक-दूसरेको दिल दे बैठे। उनकी समझमें यह नहीं आया कि अचानक यह क्या हो गया। किसीसे पूछ भी नहीं सकते। भला ऐसा रोग भी कोई किसीपर प्रकट करता है—

दिलने रग-रगसे छुपा रक्खा है, राज़े-इश्क़े-दोस्त!
जिसको कहदे नब्ज़ ऐसी मेरी बीमारी नहीं॥

मिर्ज़ाका हबीब मानवीय न होकर कहीं-कहीं ईश्वरीय नज़र आता है—

छुपाओ आपको जिस रंग या जिस भेसमें चाहो।
मगर चश्मे-हक़ीक़तबींसे परदा हो नहीं सकता॥
तमाशा चश्मे-दिलसे अहले-इरफाँ देख ही लेंगे।
किसी परदेमें हो तसवीरें-जानाँ देख ही लेंगे॥

मिर्ज़ा इश्क़को रुसवाईका बाइस न समझकर उसे ज़ीनत समझते हैं—

'साक़िब'! सियाह ख़ानये-दिलमें यह दाग़े-इश्क़।
एक चान्द है कि ज़ीनते-काशाना हो गया॥

क्यों मेरे दाग़े-दिलकी है दुश्मन हवाए-दहर।
ऐसे चराग़ बुझ नहीं सकते ज़मानेमें॥

मिर्ज़ाका हबीब बाज़ारी नहीं, अपितु हयापरवर सुशीला नारी है—

उमीदो-बीममें रक्खा तमाम रात मुझे।
कभी नक़ाब उठाई, कभी हिजाब आया॥

मन स्वस्थ होगा तो विचार भी स्वस्थ होंगे। वह अस्वस्थ हुआ तो सब चौपट हुआ। अतः अपने मन-मन्दिरको ऐसा बनाओ कि मन-मूरतको रहनेमें वहाँ असुविधा या संकोच न हो। जब मन-मन्दिरमें ही अँधेरा कर रखा है, तो प्रीतम उसमें कैसे जलवागर होगा?

शामेग़म जिसमें रहे बरसों, वहाँ क्या ईद हो?
वोह तो आजाते मगर, यह दिल ही इस क़ाबिल न था॥

मिर्ज़ाके यहाँ हबीबका तसव्वुर—

फैला है हुस्ने-आरिज़े-रोशन नक़ाबमें।
क्या-क्या तड़प रही है, तजल्ली हिजाबमें॥
शबे-वसलतमें भी इक हिज्रका अन्दाज़ पैदा है।
इधर मैं हूँ, उधर वोह हैं, हया हाइल है, परदा है॥

दीदये-दोस्त तेरी चश्म-नुमाईकी क़सम।
मैं तो समझा कि दर खुल गया मैख़ानेका॥
वोह उठे अँगड़ाइयाँ लेते हुए।
मैं यह समझा हश्र बरपा हो गया॥
हुस्नके हाथ बँधे तो, वोह ज़रा देर सही।
मुझपै अहसाँ तेरी आई हुई अँगड़ाईका॥

अँगड़ाईमें ही सही, हुस्नके हाथ तनिक-सी देरको बँधे तो! कितनी अछूती और प्यारी कल्पना है!!

शायरीका निर्माण भाषा और भावके सम्मिश्रणसे होता है। केवल एक चीज़से निर्माण नहीं हो सकता है। शायरके भाव जब कल्पना-क्षेत्रमें उड़ान भरनेको उद्यत होते हैं तो भाषा रूपी पंख उसकी सहायताको उद्यत होते हैं। न भावरूपी आत्माके बग़ैर केवल पंख ही उड़ सकते हैं, न भाषा रूपी पंखोंके बिना भाव। दोनोंका आत्मा और शरीर-जैसा संबंध है। जिस शायरकी भाषा जितनी अधिक अकृत्रिम, रसीली, प्रवाहयुक्त, सरल, सार्थक, लचकदार होगी और भाव मौलिक उच्च और हृदयस्पर्शी होंगे, वह उतना ही अधिक सफल होगा। आइये पहले मिर्जाकी भाषाकी बहार देखें, मालूम होता है कोई फूल बखेर रहा है—

बहुत-सी उम्र मिटाकर जिसे बनाया था।
मकाँ वोह जल गया, थोड़ी-सी रोशनीके लिए॥
वही रात मेरी, वही रात उनकी।
कहीं बढ़ गई है, कहीं घट गई है॥
लूटनेवाले हमारी नींद के।
किस मज़ेसे रातभर सोया किये॥
ग़मे-ज़िन्दगी जा-बजा हो रहा है।
अरे मरनेवालो! यह क्या हो रहा है?

इश्क़में दिल गँवाके हाल यह है।
कुछ मैं खोया हुआ-सा रहता हूँ॥
हिचकियोंसे राज़े-उल्फ़त खुल गया।
आगई मुँहपर जो दिलमें बात थी॥
कहाँतक जफ़ा हुस्नवालोंकी सहते।
जवानी जो रहती तो फिर हम न रहते॥
हँसके भी रोके भी कहा लेकिन।
मतलबे-दिल कभी अदा न हुआ॥
हसरते-ज़िबह रह गई 'साक़िब'!
यह फ़रीजा मेरा अदा न हुआ॥
यास-ओ-उम्मीदके माबेन हुई ख़त्म हयात।
एकने शाद किया, एकने नाशाद किया॥
गुलशनमें कहीं बूए-दमसाज़ नहीं आती।
अल्लाह रे सन्नाटा! आवाज़ नहीं आती॥
बरगश्ता हुई दुनिया रस्मो-रहे-उलफ़तसे।
इक मेरी तबीयत है जो बाज़ नहीं आती॥
ज़माना बड़े शौक़से सुन रहा था।
हमीं सोगये दास्ताँ कहते-कहते॥

उक्त कलाम पढ़कर ऐसा महसूस होता है कि ऐसे अशआर तो हम भी कह सकते हैं। मगर तबा आज़माई करनेपर पता चलता है कि यह कितना बड़ा आर्ट है।

मिर्ज़ाको 'मीर' जैसी ज़बान अता हुई है, और ग़ालिब-जैसे उच्च भाव-प्रदर्शनकी क्षमता। आपको लोग मीर-ओ-ग़ालिबका जाँनशीन कहते हैं[1]।

---

[1]लेकिन मिर्ज़ाने नम्रतापूर्वक इस प्रसिद्धिके संबंधमें १९३४ में फ़र्माया था—"छप्पन साल शायरीकी खिदमत की, इस तवील मुद्दतमें यह कोशिश

मिर्ज़ाकी ज़बान लखनऊकी टकसाली ज़बान है, और वह 'मीर' के व्यथापूर्ण रसमें डूबी हुई। शब्दोंकी सादगी, उपमाओंकी झड़ी, मुहाविरोंकी बन्दिश, भाषाका प्रवाह, और भावोंकी बुलन्दी—यह सब मिलकर मिर्ज़ाके कलाममें ऐसे घुल-मिल जाते है कि कुछ न पूछिये। उपरोक्त अशआ़रमें भाषाका सारल्य और लालित्य तो देखा, आगे दो-चार मुहावरोंका प्रयोग मुलाहिज़ा हो—

मुँहपर हाथ रखना, मुहावरा है, जो चुप करनेके स्थानपर बोला जाता है। निम्न शेरमें यह मुहावरा किस सलीक़ेसे नज़्म हुआ है—

लहदपर चलनेवाले थम कि हम कुछ कह नहीं सकते।
ज़मीं रखती है मुँहपर हाथ जब फ़रियाद करते है॥

किसी वस्तुपर तकिया करना, भरोसा करनेके स्थानपर बोला जाता है—

बाग़बाँने आग दी जब आशियानेको मेरे।
जिनपै तकिया था वही पत्ते हवा देने लगे॥

जामेसे बाहर हो जाना, यानी आपेसे बाहर हो जाना, अपने ऊपर अख़्तियार न रखना, इस मुहावरेने क्या लुत्फ़ पैदा किया है—

रही कि ज़बान 'मीर' की और तख़ैयुल ग़ालिबका-सा हो? मालूम नहीं यह सई मशकूर हुई या ग़ैर मशकूर।....इतनी उम्रमें सिर्फ इतना-सा ख़याल करनेका गुनहगार हूँ कि शायद चन्द शेर उन दोनों बाकमालोंके रंगमें नज़्म हो सके है। दुनिया इस जुर्मको माफ़ कर दे तो उसका अहसान है।

जाँ नशीनी मीरो-ग़ालिबकी कहाँ, और मैं कहाँ?
वोह ख़ुदाये-फ़न थे,उनसे मुझको निसबत कुछ नहीं॥

—अर्ज़ेहाल दीवाने-साक़िब पृ० ७।

वोह उलटकर जो आस्तीं निकले।
ज़ुल्म जामेसे अपने बाहर था॥

दम लेना, यह मुहावरा ठहरनेकी जगह बोला जाता है—

इश्क़के बाद अब हवादिसको ज़रूरत क्या रही।
आस्माँ दम ले, मेरे मरनेका सामाँ हो गया॥

अब तक मिर्ज़ाकी भाषाके चटख़ारे लिये। अब आइये हम आपको मीर, दर्द, ग़ालिब आदिके साथ मिर्ज़ाके भावोद्यानकी सैर करायें। ताकि आप जान सकें कि शायरीमें मिर्ज़ाका आसन कितना ऊँचा है। वोह किस जाँफ़िशानीसे उर्दूके अमर कलाकारोंके शाने-ब-शाने चलनेका प्रयत्न करते रहे और किस हदतक सफल हुए। यहाँ कुछ तुलनात्मक अशआर सैयद अकबरअलीद्वारा संकलित दीवाने-साक़िबसे साभार दिये जा रहे हैं—

मीर— **उसके फ़रोग़े-हुस्नसे झमके है सबमे नूर।**
शमए-हरम[1] हो, या कि दिया सोमनाथका॥

साक़िब— **बताइये, रहेगी शमअ किस तरह हिजाबमें?**
यह क्या समझके हुस्नको छुपा दिया नक़ाबमें॥

ज़ौक़— **तुझे हमने बहुत ढूंढ़ा न पाया।**
अगर पाया तो खोज अपना न पाया॥

ग़ालिब— **थक-थकके हर मुक़ामपै दो-चार रह गये।**
तेरा पता न पायें तो नाचार क्या करें?

अमीर— **उसकी हसरत है, जिसे दिलसे भुला भी न सकूं।**
ढूंढ़ने उसको चला हूँ, जिसे पा भी न सकूं॥

साक़िब— **अपनी क़िस्मतसे बिगड़ जाऊँ कि दौरे-चर्ख़से।**
मैं तो वोह ढूंढ़ा किया जो जेबे-दुनियामें[2] न था॥

---

[1]मसजिदका दीपक; [2]विश्वके पास।

ग़ालिब— मेरी तामीरमें मुज़मिर है इक सूरत ख़राबीकी।
हयूला बर्क़े-ख़िरमनका है ख़ूने-गर्म दहक़ाँका[1]॥

साक़िब— अपने ही दिलकी आगमें आख़िर पिघल गई।
शमए-हयात मौतके साँचेमें ढल गई॥

दर्द— हो गया महमाँ सराए[2] कसरते-मौहूम[3] आह!
वोह दिले-ख़ाली[4] जो तेरा ख़ास ख़िलवतख़ाना[5] था॥

साक़िब— जो कुछ हुआ आलममें, होता न तो क्या होता?
बहतर था बिगड़नेको यह दिल न बना होता॥

दर्द— वाये नादानी कि वक़्ते-मर्ग यह साबित हुआ।
ख़्वाब था जो कुछ कि देखा, जो सुना अफ़साना था॥

साक़िब— अफ़सोस है कि उम्रे-फ़ानीने[6] ख़त्म होकर।
मुझको वही बताया जिसको मैं जानता था॥

क़ायम— क़िस्मत तो देखिये कि कहाँ टूटी है कमन्द।
कुछ दूर अपने हाथसे जब बाम रह गया॥

साक़िब— मेरी क़ैदका दिलशिकन माजरा था।
बहार आई थी, आशियाँ बन चुका था॥

---

[1]मेरे निर्माणमें ही मेरे विनाशके तत्त्व निहित हैं। किसानके घोर परिश्रममें ही बिजलीके वे तत्त्व समाये हुए है, जो उसके अनाजके ढेरको जला देते हैं। तात्पर्य्य यह है कि हमारी समृद्धि और सुखके सामानोंमें हमारे विनाशके तत्त्व छिपे हुए हैं; [2]अतिथि गृह; [3]वहमकी अधिकतासे; [4]रिक्त हृदय; [5]एकान्तवास; [6]नश्वर शरीरने।

सौदा— ऐ हमसफ़ीर[1]! फ़ायदा नाहक़के शोरका?
हम तो क़फ़समें आनके ख़ामोश हो गये॥
साक़िब— क़फ़समें चुप न रहूँ तो मैं क्या करूँ कि यह क़ैद।
न दोस्तीके लिए है न दुश्मनी के लिए॥

दर्द— जगमें कोई न टुक हँसा होगा।
कि न हँसते ही रो दिया होगा॥
साक़िब— शादीमें भी कुछ ग़मके पहलू निकल आते हैं।
बे-साख़्ता हँसनेमें आँसू निकल आते हैं॥

दर्द— गो नाला नारसा[2] हो, न हो आहमें असर।
मैंने तो दर ग़ुज़र न की जो मुझसे हो सका॥
साक़िब— शुक्रगुज़ार दर्द हो, दिलकी ख़बर पहुँच गई।
तू जो नहीं, नहीं सही, नाला तो बारयाब[3] है॥

दर्द— आती है दिलमें और ही सूरत नज़र मुझे।
शायद यह आइना भी किसीके हुज़ूर है॥
साक़िब— हटे यह आइना महफ़िलसे और तू आये।
कोई तो हो जो मेरे दिलके रूबरू आये॥

मीर— जो इस शोरसे 'मीर' रोता रहेगा।
तो काहेको हमसाया[4] सोता रहेगा॥
साक़िब— हिज्रकी शब नालयेदिल वोह सदा देने लगे।
सुननेवाले रात कटनेकी दुआ देने लगे॥

---

[1]साथी; [2]प्रेयसीतक न पहुँचनेवाला; [3]प्रेयसीतक पहुँचनेमें कामयाब; [4]पड़ौसी।

दर्द— हस्तीने तो टुक जगा दिया था।
फिर खुलते ही आँख सो गये हम॥

साक़िब— उम्र भर ग़फ़लत रही हस्तीए बे बुनियादसे[1]।
उठ गये इक नींद लेकर आलमे-ईजादसे[2]॥

दर्द— वाइज़! किसे डराये है, यौमुल-हिसाबसे[3]।
गिरया[4] मेरा तो नामये-ऐमाल[5] धो गया॥

साक़िब— इस तरह पाक किया अश्केनदामतने[6] मुझे।
इससे पहले कभी जैसे मैं गुनहगार न था॥

दर्द— बला है नशए-दुनिया, कि ता-क़यामत आह।
सब अहले क़ब्र उसीका ख़ुमार रखते है॥

साक़िब— क्या चीज़ है हयात[7] कि मरनेके बाद भी।
जो चुप हुआ वोह गोशबर आवाज़े-सूर[8] था॥

दर्द— जिन्होंके दिलमें जगह की है नक़्शे-इबरतने।
सदा नज़रमें वोह लोहे-मज़ार रखते है॥

साक़िब— नज़दीक समझ, हश्र हो या पैके-अजल हो।
मिलना जिसे मंज़ूर है वोह दूर नहीं है॥
इबरते-दहर हो गया जबसे छुपा मज़ारमें।
ख़ैर जगह तो मिल गई दीदये-एतबारमें॥

दर्द— कीजिये क्या, आह किधर जाइये।
छूटिये उस दुःखसे जो मर जाइये॥

ज़ौक़— अब तो घबराके यह कहते है कि मर जायेंगे।
मरके भी चैन न पाया तो किधर जायेंगे॥

---

[1]निःसार जीवनसे; [2]संसारसे; [3]किये हुए कर्मोंके लेखसे; [4]रुदन; [5]कर्म-लेख; [6]पश्चात्तापके आँसुओंने; [7]ज़िन्दगी; [8]नरसिंहा बाजेकी आवाज़।

साक़िब— एक दम था जो किसी सूरत निकलता ही न था।
इश्क़के हाथोंसे यह मुश्किल भी आसाँ हो गई॥

दर्द— गर मारफ़तका[1] चश्मेबसीरतमें[2] नूर है।
तो जिस तरफ़को देखिये उसका जहूर[3] है॥

साक़िब— छुपाओ आपको जिस रंग या जिस भेसमें चाहो।
मगर चश्मे-हक़ीक़तबींसे[4] परदा हो नहीं सकता॥

दर्द— बस है यही मज़ारपै मेरे कि गाह-गाह।
जाए-चराग़[5] कोई दिले-महरबाँ[6] जले॥

साक़िब— बहुत-से याद हैं महफ़िलके बैठनेवाले।
कभी तो भूलके कोई सरे-मज़ार आये॥

दर्द— हमने तो एक मआसिअत[7] चाही छुपे न छुप सकी।
अपने गुनाहको तेरा अफ़्वू[8] ही परदापोश है॥

साक़िब— परदा-पोशीपै तेरे नाज़ है ऐ ज़र्रा-नवाज़!
हश्रमें ढाँप लिया मुँह मेरा रुसवाईने॥

दर्द— मआलकार सुझाया क़ब्रूनें[9] हमको।
यह नक़्द माल लगा हाथ इस दफ़ीनेसे[10]॥

साक़िब— रोशनी डालके दुनियाका दिखाता था मआल।
यह चराग़े-सरे-तुरबत मेरा बेकार न था॥

दर्द— मुझे यह डर है दिले-ज़िन्दा तू न मर जाये।
कि ज़िन्दगानी इबारत है तेरे जीनेसे॥

---

[1]ईश्वरीय; [2]दिव्य दृष्टिमें; [3]प्रकाश; अस्तित्व; [4]दिव्य दृष्टिसे; [5]दीपककी बजाय; [6]हितैषी-हृदय; [7]पाप-गुनाहगारी; भूल; [8]दरगुज़र; क्षमाशीलता; [9]क़ब्रोंने; [10]ख़ज़ानेसे।

साक़िब— दिले-मुर्दा कभी जीनेका तलबगार न था।
होश्यारीको समझता था पै हुश्यार न था॥
ज़िंदगी अच्छी सही, लेकिन इसे समझे तो कौन?
दिल नहीं तो आलमे-ईजादमें क्या रह गया?

मीर— मरता था मैं तो बाज़ रखा मरनेसे मुझे।
यह कहके—"कोई ऐसा करे है, अरे! अरे!!"

ग़ालिब— मैंने चाहा था कि अन्दोहे-वफ़ासे छूटूं।
वोह सितमगर मेरे मरनेपै भी राज़ी न हुआ॥

साक़िब— दर्दसे इक आह भी करने नहीं देते मुझे।
मौत है आसाँ मगर मरने नहीं देते मुझे॥

ग़ालिब— कोई वीरानी-सी वीरानी है।
दश्तको[1] देखके घर याद आया॥

साक़िब— वीराना जहाँ देख लिया राहे-सफ़रमें।
बढ़ता हूँ उसी सिम्तको शायद मेरा घर हो॥

ग़ालिब— नाले अदममें चन्द हमारे सुपुर्द थे।
जो वाँ न खिंच सके सो वोह याँ आके दम हुए॥

साक़िब— वोह रूहबख़्शे जाँ थे, जाँकाह बनके निकले।
कुछ दम थे पास मेरे जो आह बनके निकले॥

ग़ालिब— क़ैदे-हयात, बन्दे-ग़म, अस्लमें दोनों एक हैं।
मौतसे पहले आदमी ग़मसे निजात पाये क्यों?

साक़िब— उक़्दाहाये ग़मसे वाबस्ता है अपनी ज़िन्दगी।
हम कहाँ? यह मुश्किलें जिस वक़्त आसाँ हो गईं॥

---

[1] जंगलको।

ग़ालिब— हमने माना कि तग़ाफ़ुल न करोगे लेकिन—
ख़ाक हो जायेंगे हम तुमको ख़बर होनेतक॥
साक़िब— सद, हादसये-दहरकी[1] टूटी न अजलसे[2]।
जाती नहीं उनतक मेरे मरनेकी ख़बर भी॥

मीर— दुनियाकी क़द्र क्या जो तलबगार हो कोई।
कुछ चीज़ माल हो तो ख़रीदार हो कोई॥
साक़िब— उरूसे-दहरको[3] दिल देके आज़माऊँ क्या?
सँवारनेमें जो बिगड़े उसे बनाऊँ क्या?

मीर— अबकी जुनूंमें फ़ासला शायद न कुछ रहे।
दामनके चाक और गरेबाँके चाकमें॥
साक़िब— रास्ता वहशतको आख़िर मिल गया तंगीमें भी।
यह गरेबाँ था कि दो हाथोंमें दामाँ हो गया॥

मीर— दीदनी[4] है शकिस्तगी[5] दिलकी।
क्या इमारत ग़मोंने ढाई है॥
साक़िब— हम जभी समझे थे अंजाम कि जब फ़ितरतने।
ख़ाक और ख़ूनसे तैयार किया ख़ूनये-दिल॥

मीर— हम कहते थे यूँ कहते, यूँ कहते जो वोह आता।
यह कहनेकी बातें थीं, कुछ भी न कहा जाता॥
साक़िब— बयाने-हालका[6] नैरंगे-इश्क़ दुश्मन है।
इधर वोह सामने आये, उधर गिला न रहा॥

---

[1]संसारके कष्टोंकी दीवार; [2]मृत्युसे; [3]संसार रूपी दुलहिनको; [4]देखने योग्य; [5]दिलकी ख़स्ताहाली; [6]अपनी स्थिति बयान करनेका।

उनकी बज़्मे-नाज़में तो सांस भी दिलने न ली।
नालाकश बरसोंका इक तसवीर बनके रह गया॥

मीर--- 'मीर' साहबसे ख़ुदा जाने हुई क्या तक़सीर।
जिससे इस ज़ुल्मे नुमायाँके सज़ावार हुए॥

ग़ालिब--- हद चाहिए[1] सज़ामें अक़ूबतके वास्ते।
आख़िर गुनाहगार हूँ, काफ़िर नहीं हूँ मैं॥

साक़िब--- या न था उनके सिवा दहरमें ज़ालिम कोई।
या सिवा मेरे कोई और गुनहगार न था॥

मीर--- तेरा है वहम कि मै अपने पैरहनमें हूँ।
निगाह ग़ौरसे कर मुझमें कुछ रहा भी है?

साक़िब--- यह ज़ौक़का आलम है कि तक़दीरका लिखा
बिस्तरपै हूँ मै या कोई तसवीर पड़ी है॥

मीर--- आगे किसूके क्या करें दस्ते-तमअ़ दराज़।
यह हाथ सो गया है सिरहाने धरे-धरे॥

साक़िब--- अपना-सा ज़ोर करके थके मुनअ़माने-दहर[2]।
मुट्ठी न खुल सकी मेरे दस्ते-सवालकी॥

मीर--- हालेबद गुफ़्तनी नहीं अपना।
तुमने पूछा तो महर्बानी की॥

साक़िब--- किस मुँहसे ज़बाँ करती इज़हारे-परेशानी।
जब तुमने मेरी हालत सूरतसे न पहचानी॥

मीर--- पोशीदा राज़ेइश्क़ चला जाये था सो आज।
नाताक़तीने दिलकी वोह, परदा उठा दिया॥

---

[1]सख़्ती, दण्ड देनेके लिए एक सीमा होनी चाहिए; [2]संसारके धनिक।

साक़िब— गिरने लगी है क़ीमते-दिल आँसुओंके साथ।
किसने उलट दिया वरक़े-एतबारको?

मीर— आह हर ग़ैरसे ताचन्द कहूँ दिलकी बात।
इश्क़का राज़ तो कहते नहीं महरमसे[1] भी॥

साक़िब— दिलने रग-रगसे छुपा रक्खा है तेरा राज़े-इश्क़।
जिसको कहदे नब्ज़ ऐसी मेरी बीमारी नहीं॥

मीर— दिलके तई आतिशे-हिजराँसे बचाया न गया।
घर जला सामने और हमसे बुझाया न गया॥

साक़िब— मुख़्तार है बन्दा कोई मजबूर नहीं है।
फिर क्या है जो दिलपर मेरा मक़दूर नहीं है॥
हवास, सोज़ेग़मे दिलकी ताब ला न सके।
वोह आग घरमें लगी थी कि हम बुझा न सके॥

दर्द— तुझमें कुछ देखा न हमने जुज़जफ़ा[2]।
परदा क्या कुछ था कि जीको भा गया॥

साक़िब— जफ़ा उठानेकी आदत पड़ी तो क्योंकर जाय?
सितम सहे, मगर इतने कहाँ कि जी भर जाय॥

दर्द— मेरी-सी नालातराशी न कर सका फ़रहाद।
अगर्चे उसने भी इक उम्र तेशारानी[3] की॥

साक़िब— दिले-ग़मनाक ऐसा है कि दर्द ईजाद करता है।
ज़माना रो रहा है यूँ कोई फ़रियाद करता है॥

ग़ालिब— है आदमी बजाये ख़ुद इक महशरे-ख़याल।
हम अंजुमन समझते हैं ख़िलवत ही क्यों न हो॥

---

[1]अन्तरंग साथीसे; [2]सितमके सिवा; [3]कुदालसे पहाड़ तोड़कर नहर निकाली।

साक़िब— आओ तो हम दिखायें तुम्हें इक नया जहाँ।
आबाद है ख़यालमें दुनिया विसालकी॥

दर्द— उठती नहीं है ख़ानये-ज़ंजीरसे[1] सदा।
देखो तो क्या सभी यह गिरफ़्तार सो गये॥

साक़िब— क़ाबिले-जुम्बिश था जबतक रो चुकीं कड़ियाँ मुझे।
आज सन्नाटा पड़ा है ख़ानये-ज़ंजीरमें॥

दर्द— हम इतनी उम्रमें दुनियासे हो गये बेज़ार।
अजब है ख़िज़्रने क्योंकरके ज़िन्दगानी की?

साक़िब— यहाँ दम भरका जीना भी है दूभर।
कोई ख़ुश होगा उम्रे-जाविदाँसे[2]॥

ग़ालिब— दहरमें[3] नक़्शे-वफ़ा[4] वजहे-तसल्ली न हुआ।
है यह वोह लफ़्ज़ कि शरमिन्दये मानी न हुआ॥

साक़िब— उभरा हुआ न देखा नक़्शे-वफ़ा किसीका।
ख़ुद दिल मिला न कोई इस लफ़्ज़े बे निशाँसे॥

दर्द— 'दर्द' अपने हालसे तुझे आगाह क्या करे?
जो साँस भी न ले सके वोह आह क्या करे?

साक़िब— ख़मोशीपर मेरे क्यों बदगुमानी है मेरे दिलसे?
वोह क्या नाले करे जो साँस भी लेता हो मुश्किलसे॥

दर्द— कोई भी शख़्स उसका मारा हुआ न पनपा।
दिल मत कहीं लगाना उलफ़त बुरी बला है॥

साक़िब— तड़पना किसका देखोगे, जो ज़िन्दा हूँ तो सब कुछ हो।
बलाये इश्क़का मारा कभी बिस्मिल नहीं होता॥

---

[1]ज़ंजीरकी कड़ियोंसे; [2]अमर जीवनसे; [3]संसारमें; [4]नेकी।

दर्द— दिल भी तेरा ही ढंग सीखा है।
आनमें कुछ है, आनमें कुछ है॥
साक़िब— हरदम है अब नई ख़लिशेग़म कि दिल मेरा।
सूरतनुमा-ए-जलवये-जानानाँ हो गया॥

ग़ालिब— हैफ़ उस चार गिरह कपड़ेकी क़िस्मत 'ग़ालिब'!
जिसकी क़िस्मतमें हो आशिक़का गरेबाँ होना॥
साक़िब— हाथोंकी ख़ता हो कि मुक़द्दरकी जफ़ा हो।
जो चाक न होता वो गरेबाँ नहीं देखा॥

शहनशाहहुसेन रिज़वीद्वारा संकलित कुछ तुलनात्मक अशआ़र—

दर्द— पड़ी है ख़ाकपर यह लाश उस रश्के-शहीदाँकी।
लहूके आँसुओं रोया है जिसको देखकर ख़ूनी॥
साक़िब— हमारी दास्तानेग़म रुलाती है ज़मानेको।
वोह हम है जो ज़बाने-ग़ैरसे फ़रियाद करते हैं॥

दर्द— अश्कने मेरे मिलाये कितने ही दरियाके पाट।
दामने-सहरामें वर्ना इस क़दर कब घेर था?
साक़िब— वोह काँटे जिनको चुन लाया हूँ मैं वादीए-वहशतसे।
निकालूंगा अगर वुसअ़त हुई सहराके दामनमें॥

दर्द— बाद मरनेके भी वोह बात नहीं आती नज़र।
जिस तवक़्क़ोहपै कि हम अब तई याँ जीते हैं॥
साक़िब— परदये-हश्र उठा फिर भी तमन्ना है बईद।
काम मुश्किल था तो मरनेपै भी आसाँ न हुआ॥

दर्द— कबतक आँसू कोई पिये जाये?
इस मुहब्बतने जी बहुत खाया॥

साक़िब— जब ख़ूनमें है जोश तो पी जाइये क्योंकर?
ज़ख़्मोंका लहू बाद-ए-अंगूर नहीं है॥

दर्द— आगे जो बला आई थी सो दिलपै टली थी।
अबकी तो मेरी जान ही पै आन बनी है॥
साक़िब— या इलाही कौन-सी बिजली गिरी थी बाग़में।
जो नशेमनसे सरककर मेरे दिलपर आगई॥
शबे-फ़िराक़, मैं दिल फूंककर सहर की थी।
शबे-मज़ार तो वह भी नहीं, जलाऊँ क्या?

दर्द— बाद मरनेके मेरे होगी मेरे रोनेकी क़द्र।
तब कहा कीजेगा लोगोंसे—"वोह बरसाते कहाँ?"
साक़िब— मिट चुके यह दिल तो फिर पूछें मिज़ाजे-हुस्ने-दोस्त।
सैद ही[1] नाबूद[2] हो तो किस लिए सैयाद हो॥

ग़ालिब— बेदरो-दीवार-सा इक घर बनाना चाहिए।
कोई हमसाया[3] न हो और पासबाँ[4] कोई न हो॥
साक़िब— वीराना ही अच्छा है कि वीराँ तो न होगा।
घर हो तो न दीवार हो उस घरमें, न दर हो॥

मीर— बार-हा बादोंकी रातें आइयाँ।
तालओंने[5] सुबह कर दिखलाइयाँ॥
मुसहफ़ी— शाहिद[6] रहियो तू ऐ शबे-हिज्र[7]!
झपकी नहीं आँख 'मुसहफ़ी'की॥

---

[1]जिसका शिकार किया जाय; [2]अस्तित्वहीन; [3]पड़ोसी; [4]रक्षक, चौकीदार; [5]भाग्यने; [6]साक्षी; [7]विरहरात्रि।

साक़िब— उम्रभर जलता रहा दिल, और ख़ामोशीके साथ।
शमअ़को इक रातकी सोज़े-दिलीपर नाज़ था॥
सहरको भी मेरी महफ़िलमें बरहमी न हुई।
तमाम रात हुई, दर्दमें कमी न हुई॥

मूनिस— शब[1] जो ज़िंदाँमें[2] हुई ताज़ा गिरफ़्तारोंको।
सर वोह टकराये कि दर[3] कर दिया दीवारोंको॥
साक़िब— शबको ज़िन्दाँमें मेरा सर फोड़ना अच्छा हुआ।
आज कुछ-कुछ रोशनी आने लगी दीवारसे॥

नफ़ीस— अपने ही आज़ाने[4] की आख़िरको हमसे दुश्मनी।
दोस्तोंकी दोस्तीका हाल हमपर खुल गया॥
साक़िब— बाग़बाँने आग दी जब आशियानेको मेरे।
जिनपै तकिया था वही पत्ते हवा देने लगे॥

ग़ालिब— समझके करते हैं बाज़ारमे वोह पुरसिशेहाल।
कि यह कहे कि सरे-रहगुज़र है क्या कहिये॥
साक़िब— कब उसने की है पुरसिशेग़महाय-जाँगुसल।
जब हाले-दिल बयानके क़ाबिल नहीं रहा॥

दर्द— वहदतने[5] हर तरफ़ तेरे जलवे दिखा दिये॥
परदे तअ़य्युनातके[6] जो थे उठा दिये॥
साक़िब— शबेग़मकी तनहाइयोंको न पूछो।
जिधर देखता था ख़ुदा ही ख़ुदा था॥

---

[1]रात्रि; [2]बन्दीगृहमें; [3]दर्वाज़ा; [4]इन्द्रियोंने; [5]एक-ईश्वरवादने; [6]सीमाओंके बन्धन।

इज़ाफ़ा कुछ न हो अपने यक़ींमें।
अगर उठ जाये परदा दरमियाँ से॥

दर्द— पूछ मत काफ़िलये-इश्क़ किधर जाता है।
राहरव[1] आपसे उस रहमें गुज़र जाता है॥

साक़िब— ऐ कर्दगारे[2]-इश्क़! किधर जा रहा हूँ मैं।
हर सिम्त यह सदा है कि "दीवाना हो गया"॥

दर्द— हर आह शररबार है जूँ सर्द चराग़ां।
क्या आग इलाही मेरे सीनेमें भरी है॥

साक़िब— सीनये-सोज़ाँमें 'साक़िब' घुट रहा है वोह धुआँ।
उफ़ करूँ तो आग दुनियाकी हवा देने लगे॥

१९३४ में प्रकाशित दीवाने 'साक़िब' ४२४ पृष्ठका हमारे समक्ष है। आगे हम मिर्ज़ाके सभी तरहके रंगके चुने हुए अशआ़र दे रहे हैं—

एक उनपर क्या ज़मानेपर है मेरा बारे-ख़ूं[3]।
ज़िबह में होता गया आलम तमाशाई रहा॥

फूलको तोड़के देखो, असरे-वस्लो-फ़िराक़[4]।
मौत है चाहनेवालोंसे जुदा हो जाना॥

अहले-बातिल[5] डालते हैं तिफ़रक़ा-ए-चश्मे-हक़[6]।
वरना काबेमें वोह क्या था, जो कलीसामें न था?

हुस्न और इश्क़के नैरंग ख़ुदा ही जाने।
शमअ़ जलती है कि दिल जलता है परवानेका॥

---

[1]यात्री; [2]प्रेम रूपी ईश्वर; [3]क़त्ल करनेका अभियोग; [4]मिलन और विरहका प्रभाव; [5]मायावी; [6]वास्तविकतामें भेद।

ज़मानेवालोंको पहचानने दिया न कभी।
बदल-बदलके लिबास अपने इनक़लाब आया॥
सिवाय यास[1] न कुछ गुम्बदे-फ़लकसे मिला।
सदा भी दी तो पलटकर वही जवाब आया॥

मैं नहीं, लेकिन मेरा अफ़साना उनके दिलमें है।
जानता हूँ मैं कि किस रगमें यह नश्तर रह गया॥
आशियानेके तनज्जुलसे बहुत ख़ुश हूँ कि वोह,
इस क़दर उतरा कि फूलोंके बराबर रह गया॥

जीते जी साय-ए-दीवारे-चमन तक न गया।
मरके क्या फूलका शरमिन्दये-अहसाँ होता॥

कुछ सम्भल जाता, अगर करवट बदल जाता मेरी।
यह मुझे दुश्वार था, उसके लिए मुश्किल न था॥

जो अच्छा कर नहीं सकते, तो क्यों तड़पूँ मैं बिस्तरपर।
दुआ देना नहीं आता तो सीखो बद्दुआ देना॥

इज़्ज़तसे बज़्मे-गुलमें रहा आशियाँ मेरा।
तिनकोंकी क्या बिसात मगर नाम हो गया॥
इक मेरा आशियाँ है कि जलकर है बेनिशाँ।
इक तूर है कि जबसे जला नाम हो गया॥

मेरे पहलूसे अगर निकला तो मेरा क्या गया?
गुम शुदा दिल आप ही का एक मख़फ़ीराज़[2] था॥

---

[1]निराशा; [2]छुपा हुआ भेद।

होश ही मुझको न था जब पहलुओंमें लूट थी।
मुझको क्या मालूम, क्या जाता रहा, क्या रह गया ?

सुबह समझे थे किसे ? 'साक़िब' शबेग़म है तवील[1]।
दिलका कोई दाग़ होगा, जो चमककर रह गया।।

शहीदे-ग़मकी लाशपर न सर झुकाके रोइये।
वोह आँसुओंको क्या करे, जो मुँह लहूसे धो चुका।।

कोई तो दाद देता इस दर्दे-दिलकी आख़िर।
जब तुम न बोलते थे, तब मैं कराहता था।।

क़ैद करता मुझको लेकिन जब गुज़र जाती बहार।
क्या बिगड़ जाता ज़रा-सी देरमें सैयादका।।
चोट देकर आज़माते हो दिले-आशिक़का सब्र।
काम शीशेसे नहीं लेता कोई फ़ौलादका।।

आये हो वक़्ते-दफ़न तो शाना[2] हिलाके जाओ।
आँख उसकी लग गई है, जिसे इन्तज़ार था।।
मैयत[3] तो उठ गई वोह न आये नहीं सही।
'साक़िब' किसीके दिलपै, कोई अख़्तियार था ?

खोया इस इख़्तलाफ़ने[4] लुत्फ़े-विसाल भी।
उनमें न इंकसार[5] न मुझमें ग़रूर था।।

बताइये मुझे कमयाब इश्क़ है कि जमाल[6]।
चमनमें फूल मिले मेरा एक पर न मिला।।

---

[1]बहुत लम्बी; [2]कन्धा; [3]अर्थी; [4]मतभेदने; [5]विनय; [6]रूप।

मेरी ज़बान उनके दहनमें हो ऐ करीम !
होना है फ़ैसला जो उन्हींके बयानपर ॥
'साक़िब' ! जहाँमें इश्क़की राहें हैं बेशुमार।
हैरान अक़्ल है कि चलूं किस निशानपर ?

महशरमें कोई पूछनेवाला तो मिल गया।
रहमत बढ़ी है मुझको गुनहगार देखकर ॥
उन दोस्तोंमें दोह न हों या रब ! जो वक़्ते-दीद[1]।
बीमार हो गये रुख़े-बीमार देखकर ॥

ज़रा देख परवाने करवट बदलकर।
सती हो गई शमअ़ महफ़िलमें जलकर ॥

क़द्रदाँ पाके बदल जाते हैं आवारा वतन।
जब तो निकले हुए मोतीको अदन याद नहीं ॥

असीर[2] मैं तो हो चुका, ख़बर लो अपने पाँवकी।
कमरसे आगे बढ़ चली है, ज़ुल्फ़ पेचोतावमें ॥

नाम मालूम है क़ातिलका मगर हश्रके दिन।
जाननेवालोंसे कहता हूँ, मुझे याद नहीं ॥

अब और इससे सिवा, क्या असर हो नालोंका।
कि फ़र्क़ आ गया, ज़ालिमके ख़्वाबे-राहतमें[3] ॥

उदू, सैयादो-गुलचीं क्यों हुए मेरे नशेमनके ?
यह तिनके भी हैं इस क़ाबिल ? जिन्हें बरबाद करते हैं ॥

---

[1]बीमारको देखकर; [2]बन्दी; [3]सुखकी नींदमें।

चमनवालो ! यह तिनके आशियाँके चुभ नहीं सकते।
निशानी कुछ तो बहरे-ख़ानुमाँ बरबाद रहने दो।।

सैकड़ों नाले करूँ लेकिन नतीजा भी तो हो।
याद दिलवाऊँ किसे जब कोई भूला भी तो हो।।
उनपै दावा क़त्लका महशरमें आसाँ है मगर।
बावफ़ाका ख़ून है, ख़ंजरपै ज़ाहिर भी तो हो।।

रोनेसे हया शमअ़की ज़ाहिर हो तो क्योंकर ?
उरियाँ है मगर बीचमें महफ़िलके खड़ी है।।[२]

दौरे-फ़लक था जिसके बुझानेकी फ़िक्रमे।
वोह शमअ़ रात सुबहसे पहले ही जल गई।।

काटना पत्थरका भी अच्छा नहीं क्या ज़िक्रे-दिल ?
धार उलटी हो गई थी तेशये-फ़रहादकी।।

बातें अहले-फ़ुक्रसे[२] क्यों हो कि है ख़ौफ़े-सवाल।
मुनअ़मों[३] ! यह होश्यारी नशये-दौलतपै[४] भी है !!

जलवये-हुस्न इक इशारेमें बहुत कुछ कह गया।
मै नहीं समझा मगर हाँ दिल तड़पकर रह गया।।

---

[२]घूरते है सैकड़ों परवाने उरियाँ देखकर।
मारे ग़ैरतके गड़ी जाती है महफ़िलमें शमअ़।।—अज्ञात

[२]भिक्षुकोंसे; [३] धनिको; [४]दौलतका इतना अधिक नशा होनेपर भी इतनी होश्यारी कि ग़रीबोंसे इस भयसे बात नहीं करते कि कुछ सवाल न कर बैठें।

हादसोंके ज़लज़लेसे जामेदिल छलका किया।
एक चुल्लू ख़ून ही क्या ? बहते-बहते बह गया ॥[1]

मुझको यक़ीने-वादये-फ़रदा ज़रूर था।
मुश्किल यह आ पड़ी थी कि दिल नासबूर[2] था ॥

मेरी दास्तानेग़मको, वोह ग़लत समझ रहे हैं।
कुछ उन्हींकी बात बनती अगर एतबार होता ॥
दिले पारा-पारा तुझको कोई यूँ तो दफ़्न करता।
वोह जिधर निगाह करते उधर इक मज़ार होता ॥

ख़ुश है सैयाद नशेमन मेरा जल जानेसे।
मुझको बतलाये वोह आबाद जो वीराँ न हुआ ॥

शरीके-क़ैद थे जज़बाते-दिल, मगर बेकार।
क़फ़स था ऐसा कि नालोंको रास्ता न मिला ॥

दिलसे मैं कह रहा हूँ—"तुझपर हुआ फ़िदा मैं"
दिल मुझसे कह रहा है—"ओ बेख़बर! जला मैं"
फिर और किस तरहसे उजड़े मकाँको सजता।
क़ब्रे-लहदमें जाकर तसवीर हो गया हूँ ॥
क़ूवतेग़म देख, ज़ोरे-नातवानी[3] पर न जा।
ज़लज़ले आलममें थे, जब दिल मेरा बेताब था ॥

---

[1] दिलकी बिसात क्या थी निगाहे-जमालमें।
यह आईना था टूट गया देख-भालमें ॥
—सीमाब अकबराबादी

[2] बेसब्र; [3] निर्बलताकी अधिकतापर।

यह एक वादिये-पुरख़ारे-इश्क़[1] थी 'साक़िब'!
उलझके रह गई हर दिलमें गुफ़्तगू मेरी॥

जो आँख हो तो देखिये, न पूछिये कि क्या किया।
चराग़े-बज़्म हो गया, जला किया, हँसा किया॥

उसकी रहमतपै गिरे पड़ते है इसियाँवाले[2]।
हश्र काहेको है इक जलस-ए-रिन्दाना[3] है॥

रोज़े-महशरके उजालेमें खिला मेरा लहू।
तुम तो तुम, धब्बा है दामाने-शबे-फ़ुरक़तपै भी॥

ख़ुद उनका हुस्न मेरी दादख़ाही[4] उनसे करता है।
वोह आइना लिये है और मुझको याद करते हैं॥

सदायें देके हमने एक दुनिया आज़मा देखी।
यही सुनते चले आये—"बढ़ो आगे, यहाँ क्या है"॥

किसको शौक़े-दीद बेताबी नहीं?
दिल न ठहरा इक तमाशा हो गया॥

यह है बहते हुए दरियाकी आवाज़।
"वहीं जाना है आये थे जहाँसे"॥

मैं रो रहा हूँ जो दिलको तो बेकसीके लिए।
वगर्ना मौत तो दुनियामें है सभीके लिए॥

---

[1]प्रेमकी कण्टकाकीर्ण पगडण्डी; [2]अपराधी; [3]मद्यपोंका मेला;
[4]हुस्न अपने सौंदर्यकी प्रशंसा आशिक़से सुननेका अभिलाषी है।

चराग़े-अक़्ल भी गुल है शबेग़मकी सियाहीसे।
न मैं मालूम होता हूँ, न तू मालूम होता है॥

इक नया दिल ज़ुल्म सहनेको बनाना चाहिए।
हो तो सकता है मगर उसको ज़माना चाहिए॥

हँसनेवाला रो रहा है, आफ़रीं ऐ वक़्ते-नज़अ!
कुछ कहा शायद मेरी डूबी हुई आवाज़ने॥

गुलशनकी तरफ़ मुँह किये बैठा हूँ क़फ़समें।
शायद कोई दमसाज़ निकल आये इधर भी॥

इबरतसे देख पंजएक़ातिल रँगा हुआ।
रहगीरोंसे न पूछ कि दिल मेरा क्या हुआ॥

नहीं मालूम पाये-सईमें काँटे कहाँके हैं?
मुरादें हटके चलती हैं निकलता हूँ जिधर होकर॥

क्या देखता आसारे-सहर मैं शबे-फ़ुरक़त।
वोह जोशपर आँसू थे कि दिल डूब रहा था॥

सजदेका काम आज न लेंगे जबींसे[1] हम।
नक़्शे-क़दम उठायेंगे उनके ज़मींसे हम॥

लहदपर[2] तास्सुफ़के[3] मानी न समझा।
यह काहेका रोना है जब मैं बुरा था?

नादाँ भी हो गये मेरे नालोंसे होशयार।
अब आपके सिवा कोई ग़ाफ़िल नहीं रहा॥

---

[1]मस्तकसे; [2]क़ब्रपर; [3]रुदनके; मातमके।

सहने-ज़िंदाँ-ओ-चमन मेरी नज़रमें एक है।
क़ैदसे घबराये वोह जो रंजसे आज़ाद था।।

कम-से-कमपर आज राज़ी है शहीदोंके मज़ार।
आप हँस देंगे तो समझेंगे चराग़ाँ[1] हो गया।।
ख़्वाहिशे-दुनियाँ-ए-हुस्नो-इश्क़ है।
वरना फिर मै किसलिए, तू किसलिए?

दिलके होते भी कहीं दर्द जुदा होता है।
इक फ़क़त मौतके आजानेसे क्या होता है?

पेशे-अरबाबे-करम हाथ वोह क्या फैलाता?
जिसको तिनकेका भी अहसान गवारा न हुआ।।

जवाब ज़ख़्मे-जिगर दे रहा है हँस-हँसकर—
"वही तो दिल है कि जो ख़ुश रहे मुसीबतमें"।।

बढ़ाई जिसने तेरी नींद मुझको तड़पाकर।
वोह मेरी उम्रे-गुज़िश्ता न थी, कहानी थी।।

न जागते न सही, सुनके नींद तो आती।
यूँ ही सही मेरा क़िस्सा कभी बयाँ होता।।

मेरी तरह है हाल मिरा, उनका ख़ैर-ख़्वाह।
आशिक़ है उनकी नींद मिरी दास्तान पर।।

---

[1]दीपावलि।

दिलने अपनी हसरतोंके क़ाफ़िले ठहरा दिये।
इस क़दर आबाद पहले कूचये-क़ातिल न था॥

ख़िलवत पसन्द हश्रसे ख़ुश होके क्या करे?
वादेका रोज़ जलवागहे-आम हो गया॥

उसके सुननेके लिए जमा हुआ है महशर।
रह गया था जो फ़साना मेरी रुसवाईका॥

नजअ़ इक ईद है, वोह रोते हुए आये है।
ऐ दिलेज़ार यही वक़्त है मर जानेका॥

नशेमन आगसे बचता तो ख़ौफ़ बर्क़का था।
जो बाग़बाँ भी न होता तो आस्माँ होता॥

मकाँ मुनअ़मका[1] सोनेसे, यह ख़ूने-दिलसे बनता है।
ख़सो-ख़ाशाकका घर[2] भी बड़ी मुश्किलसे बनता है॥

किसीका रंज देखूँ यह नहीं होगा मेरे दिलसे।
नज़र सैयादकी झपके तो कुछ कह दूँ अनादिलसे[3]॥
बर्क़के गिरनेसे मातम एक ही होता तो ख़ैर।
आशियाँके साथ आँच-आई मेरी हसरतपै भी॥

हो गये बरसों कि आँखोंकी खटक जाती नहीं।
जब कोई तिनका उड़ा घर अपना याद आया मुझे॥

ग़नीमत है क़फ़स, फ़िक्रे रिहाई क्या करें हमदम!
नहीं मालूम अब कैसी हवा चलती है गुलशनमें॥

---

[1]धनिकका महल; [2]ग़रीबका झोंपड़ा; [3]बुलबुलोंसे।

देखा किये वोह चान्दको अपने गुमानपर।
मैं ख़ुश हुआ कि तीर चले आसमानपर॥

ग़ुस्सेके बाद तेग़ज़नीका महल नहीं।
पहले ही ज़िबह होगये चीने-जबींसे[1] हम॥

कुछ वफ़ा कुछ ज़ुल्मके आसार रहने दीजिये।
ख़ूनमें डूबी हुई तलवार रहने दीजिये॥

शिकायत ज़ुल्मे-ख़ंजरकी नहीं, ग़म है तो इतना है।
ज़बाने-ग़ैरसे क्यों मौतका पैग़ाम आता है॥

दाग़ेदिल क़ब्रकी ज़ुल्मतमें है बेनूर ऐसा।
जैसे देखा हो चराग़ आपने वीरानेका॥*

क्या कहे बेज़बाँ असीरे-क़फ़स[2]।
क्यों हुआ क़ैद क्यों रिहा न हुआ॥

बदल-बदलके जहाँ एतबार खो बैठा।
ख़ुशीमें भी मेरे दिलको मलाल होता है॥

हिज्रके दर्दको बढ़ने दे कि है मुज़दये-वस्ल[3]।
वही घटता है जहाँमें जो सिवा होता है॥

---

*रोशन है इस तरह दिले-वीराँमें एक दाग़।
उजड़े नगरमें जैसे जले है चराग़ एक॥
—मीर

[1]त्योरी पड़े मस्तकसे; [2]पिंजरेका बेज़बान पक्षी; [3]मिलनका शुभ संदेश।

इस दर्दे-मुहब्बतके अन्दाज़ निराले हैं।
घटता तो मरज़ होता, बढ़ता तो दवा होता॥

क़हक़हे हमने सुने दुनियामें और फ़रियाद भी।
एक ही रस्तेसे गुज़रे शाद भी नाशाद भी॥

नब्ज़ हो या दिल हो इसका क्या इलाज?
डूबनेवाला उभर सकता नहीं॥

न आँख बन्द करूँ मैं तो क्या करूँ या रब!
वोह आ रहे हैं तमाशाये-जाँ-कनोके[1] लिए॥

मुट्ठियोंमें ख़ाक लेकर दोस्त आये वक़्ते-दफ़्न।
ज़िन्दगी भरकी मुहब्बतका सिला देने लगे॥

लहद[2] सियाह है 'साक़िब' कोई चराग़ नहीं।
और इसपै शाम हुई है दयारे-ग़ुरबतमें[3]॥

न समझा मानीए गोरो-कफ़न समझा तो यह समझा।
थका था मैं लिपटकर सो रहा दामाने-मंज़िलसे॥

कहनेको मुश्ते-परकी[4] असीरी[5] तो थी मगर।
ख़ामोश हो गया है, चमन बोलता हुआ॥

यूँ तो मुश्ते-ख़ाक था दिल, ख़ून होकर बह गया।
लेकिन इस क़तरेमें वोह कुछ था, जो दरियामें न था॥

---

[1]मृत्युकी छटपटाहट देखनेको; [2]क़ब्र; [3]परदेशमें, सफ़रमें; [4]मुट्ठीभर परोंकी; [5]क़ैद।

तीरगी[1] नाम है दिलवालोंके उठ जानेका।
जिसको शब[2] कहते है मक़तल[3] है वोह परवानोंका॥

बला है अहदे-जवानीसे ख़ुश न हो ऐ दिल!
सँभल कि उम्रकी दुनियामें इनक़लाब आया॥

यह किसने ग़मकदा दुनियाका नाम रक्खा है?
हमे तो कोई यहाँ दर्द-आश्ना न मिला॥

नहीं मालूम, वोह मै हूँ कि कोई और असीर।
सुन रहा हूँ कि गिरफ़्तारको आज़ाद किया॥

मेरे ज़ुल्मतकदेमें रोज़े-रोशनका[4] गुज़र कैसा?
सलामत है शबे-ग़म तो, उजाला हो नहीं सकता॥

नाज़ोअदाकी चोटें, सहना तो और शै है।
ज़ख्मोंको देख लेता कोई, तो देखता मै॥
बर्क़ेजमाले-बहदत! तू ही मुझे बता दे।
शोला तो दूर भड़का, फिर किसलिए जला मै?

ज़िन्दगीमें क्या मुझे मिलती बलाओंसे नजात।
जो दुआएँ कीं, वोह सब तेरी निगहबाँ हो गई॥
कम न समझो दहरमें[5] सरमाय-ए-अरबाबे-ग़म[6]।
चार बून्दें आँसुओंकी, बढ़के तूफ़ाँ हो गई॥

ज़ुज़ ज़मीने-कूए-जानाँ[7] कुछ नहीं पेशे-निगाह[8]।
जिसका दरवाज़ा नज़र आया सदा[9] देने लगे॥

---

[1]अँधेरा; [2]रात्रि; [3]वधस्थल; [4]प्रकाशका; [5]संसारमें; [6]मित्रोंका सहृदयता-रूपी धन; [7]प्रेयसीके कूचेके अतिरिक्त; [8]दृष्टिमें; [9]आवाज़।

दिलके क़िस्से कहाँ नहीं होते?
हाँ, वोह सबसे बयाँ नहीं होते॥

कहूँ क्योंकर कि मै कुछ भूल आया हूँ नशेमनमें।
मेरा सैयाद कहता है कि "क्या रक्खा है गुलशनमें?"

जिसमें भरा हुआ है मेरी ज़िंदगीका हाल।
दुनियाको नींद आती है अब उस फ़सानेमें॥

दुआएँ दें मेरे बाद आनेवाले मेरी वहशतको।
बहुत काँटे निकल आये, मेरे हमराह मंज़िलसे॥

नाले करता जा कि ज़ोरे-नातवानी है बहुत।
झुक चला है चर्ख़ गिर जायेगा दो-इक तीरमे॥

तड़पा दिया है दिलको, शाबाश हम सफ़ीरो!
यूँ ही फिर इक सदा दो, टूटा क़फ़स, चला मै॥

गुलचीं बुरा किया जो यह तिनके जला दिये।
था आशियाँ मगर तेरे फूलोंसे दूर था॥

१० मई १९५३ ई०]

आशियाँ

आरज़ू लखनवी

[१८७२ – १९५१ ई०]

सैयद अनवर हुसेन 'आरज़ू'के पूर्वज औरंगज़ेबके शासनकालमें हिरातसे भारत आये और अजमेरमें रहने लगे। १८५७के विप्लवसे पूर्व वे लखनऊ चले गये और वहीं स्थायी रूपसे बस गये।

१८ फ़रवरी १८७२ ई० में 'आरज़ू' लखनऊमें उत्पन्न हुए। ५ वर्षकी आयुमें मदर्से भेजे गये। अरबी-फ़ारसीकी आपने शिक्षा प्राप्त की।

आपके पिता मीर ज़ाकिरहुसेन 'यास' और बड़े भाई यूसुफ़हुसेन 'क़यास' अच्छे शायरोंमें शुमार किये जाते थे। घरेलू वातावरणका प्रभाव आपपर भी पड़ा, और आप भी चुपके-चुपके शेर कहने लगे। एक रोज़ अपने एक शिष्यकी ग़ज़ल आपके पिता 'यास' साहबने आपके बड़े भाई 'क़यास'को संशोधनके लिए दी। संशोधनके समय आप भी बड़े भाईके समीप बैठे हुए थे। आप नहीं चाहते थे कि आपके इस शौक़का पता किसीको लगे। मगर आपके मुँहसे यकायक निकल गया "भाईसाहब यह शेर इसतरह कहा जाय तो कैसा रहे?"

भाईसाहबने आश्चर्यके साथ आपकी ओर देखा और संशोधन इतना पसन्द आया कि शेर उसीतरह बना दिया। शेष अशआर भी आपकी सम्मतिपूर्वक संशोधित किये गये। यह संशोधित ग़ज़ल जब आपके पिता 'यास' साहबकी नज़रोंसे गुज़री और उन्हें वास्तविक बात बतलाई गई

तो वे उसी रोज़ आपको 'जलाल'[1] के पास ले गये, और उन्हींके चरणोंमें छोड़ आये। आरज़ू तब १३ वर्षके थे।

उन दिनों शेरो-सुख़नके चर्चे आम थे। मुहल्ले-मुहल्ले और गली-कूचोंमें मासिक मुशायरे होते रहते थे। नवीन अभ्यासियोंके लिए तो यह शिक्षण-शिविरका काम देते थे। सबसे पहले एक मुशायरेमें जो ग़ज़ल 'आरज़ू'ने पढ़ी उसके दो शेर ये हैं—

हमारा ज़िक्र जो ज़ालिमकी अंजुमनमें[2] नहीं।
जभी तो दर्दका पहलू किसी सुख़नमें[3] नहीं॥
शहीदे-नाज़की[4] महशरमें[5] दे गवाही कौन?
कोई लहूका भी धब्बा मेरे कफ़नमें नहीं॥

उन दिनों उत्साह बढ़ानेवाले भी सर्वत्र मिलते थे। मुशायरोंमें तो किशोर 'आरज़ू'को उचित दाद मिली ही। बाहर भी लोग उन्हें प्रोत्साहन देने लगे। एक रोज़ एक साहबने यह मिसरा देकर—

"उड़ गई सोनेकी चिड़िया रह गये पर हाथमें"।

फ़र्माया कि "अगर दस बरसमें भी तुम इसपर मिसरा लगा दोगे तो मैं तुमको शायर मान लूंगा।" 'आरज़ू'ने अर्ज़ की—"दस बरसतक ज़िन्दा रहनेकी उम्मीद यहाँ किसे ? यही नही मालूम कि एक साँसके बाद दूसरी आयेगी भी या नहीं। मैं अभी कोशिश करता हूँ, मुमकिन है कि मिसरा लग जाये।"

---

[1] 'जलाल' उन दिनो ख्यातिप्राप्त प्रामाणिक उस्तादोंमें थे और उनका सर्वत्र तूती बोल रहा था। 'जलाल'का परिचय शेर-ओ-सुख़न भाग १ पृ० ५९३-६०५में मिलेगा।

[2] महफ़िलमें; [3] वार्त्तालापमें; [4] प्रेयसीपर बलिदान हुए प्रेमीकी; [5] ईश्वरके न्यायालयमें।

थोड़ी देरमे ही दूसरा मिसरा ऐसा चस्पाँ किया कि पहला बे-मायनी-सा मिसरा भी चमक उठा—

दामन उस यूसुफ़का आया पुरजे होकर हाथमें।
उड़ गई सोनेकी चिड़िया रह गये पर हाथमें॥

'आरज़ू'की किशोरावस्थामें ऐसी प्रतिभा देखकर विद्वानोंने भविष्य-वाणी की कि 'आरज़ू' अपने समयके शायरोंमें श्रेष्ठ होगा। अभी बमुश्किल १८ वर्षके हुए थे कि उस्तादने अपने सभी शिष्योंकी ग़ज़लें संशोधनका भार आपपर डाल दिया, और उस्तादकी मृत्यु (१९०९ ई०)के बाद आप ही को लोगोंने उनका जाँनशीन (उत्तराधिकारी) मान लिया।

'आरज़ू'के तीन संकलन—१ 'फ़ुगाने आरज़ू' २ 'जहाने आरज़ू' ३ 'सुरीली बाँसुरी'—प्रकाशित हो चुके हैं। 'फ़ुगाने आरज़ू'में उनकी प्रारम्भिक १५ वर्षकी अवस्थासे लेकर ३५ वर्षकी अवस्थातककी २६४ ग़ज़लोंका संकलन है। १९४५में प्रकाशित इसकी द्वितीयावृत्ति हमारे सामने है। 'जहाने आरज़ू'में ३५ वर्षकी अवस्थाके बाद कही हुई १८४ ग़ज़लें हैं। १९४६में प्रकाशित इसकी द्वितीयावृत्ति हमारे सामने है। 'सुरीली बाँसुरी' खेद है कि हमें प्राप्त न हो सकी। उसमें आपकी ऐसी सरल ग़जलों-गीतोंका संकलन है, जिनके निर्माणमें एक भी अरबी-फ़ारसी शब्दका प्रयोग नहीं हुआ है। आपने नाटक कम्पनियोंके लिए ड्रामे भी काफ़ी लिखे हैं। भारत-विभाजनके बाद आप पाकिस्तान चले गये थे। वहाँ १९५१ ई०को आपने समाधि पाई।

—

कब दस्तेनिगर[1] ग़ैरका है जौहरेजाती[2]।
ममनून[3] नहीं पंजयेगुल[4] बर्गेहिनाका[5]॥

---

[1]आसरतू, दूसरोंका मुँहताज; [2]गुणवान; [3]आभारी; [4]फूलोंके गुच्छे; [5]मेंहदीके पत्तोंका।

दरयूज़ागरेहिर्स[1] न बन राहेतलबमें[2]।
दिल इश्क़से ख़ाली है तो कासा[3] है गदाका[4]॥

सदमा न सही मेरा, नादिम[5] तो हुए होंगे।
आँखोंमें न हों आँसू, माथेपै अरक़[6] होगा॥

आके क़ासिदने[7] कहा जो, वही अक्सर निकला।
नामाबर[8] समझे थे हम, वह तो पयम्बर[9] निकला॥
वाएग़ुरबत[10] कि हुए जिसके लिए ख़ाना-ख़राब।
सुनके आवाज़ भी घरसे न वह बाहर निकला॥

नादाँकी दोस्तीमें जीका ज़रर[11] न जाना।
इक काम कर तो बैठे, और हाय कर न जाना॥
नादानियाँ हज़ारों, दानाई इक यही है।
दुनियाको कुछ न जाना और उम्रभर न जाना॥
नादानियोंसे अपनी आफ़तमें फँस गया हूँ।
बेदादगरको[12] मैंने बेदादगर न जाना॥

दिलका जिस शख़्सके पता पाया।
उसको आफ़तमें मुब्तला पाया॥
नफ़ा अपना हो कुछ तो दो नुक़सान।
मुझको दुनियासे खोके क्या पाया?

बेकसीमें भी गुज़र हो जायगी।
दिलको मैं और दिल मुझे समझा गया॥

---

[1]तृष्णाके कारण दर-दरका भिखारी; [2]अभिलाषाके मार्गमें; [3]पात्र; [4]भिक्षुकका; [5]शर्मिन्दा; [6]पसीना; [7]पत्रवाहकने; [8]पत्र ले आनेवाला; [9]सन्देश लानेवाला; [10]हायरी मुसाफ़िरी; [11]नुक़सान; [12]अत्याचारीको।

ऐ निगहेदिलफ़रेब[1] ! क्या यह सितम कर दिया ?
हौसले जब बढ़ चले रब्तको कम कर दिया ।।

आज़ारेजुदाईसे[2] वाक़िफ़ न था दिल पहले ।
जब तल्ख़ हुआ जीना उल्फ़तका मज़ा जाना ।।

ऐ 'आरज़ू' ! इस बाग़में फूलोंके क़फ़ससे[3] ।
बहतर हमें अपना वोह नशेमन[4] कि है ख़सका ।।

ख़मोशी मेरी मानेख़ेज़ थी ऐ 'आरज़ू' ! कितनी ?
कि जिसने जैसा चाहा, वैसा अफ़साना बना डाला ।।

होके महवेदीद[5] खोये 'आरज़ू'ने होश भी ।
कोई पूछे तो यह ओ दीवाने ! तूने क्या किया ।।

बर्क़ने[6] की हर तरफ़ मेरे नशेमनकी तलाश ।
चार तिनकोंकी बिनापर बाग़ सारा जल गया ।।

कामयाबी ख़ुदग़रज़की 'आरज़ू' बेफ़ैज[7] है ।
वोह हवा क्या जो चराग़े-कुश्तये-मंज़िल[8] हुआ ।।

यह मेरी तौबा नतीजा है बुख़लेसाक़ीका[9] ।
ज़रा-सी पीके कोई मुँह ख़राब क्या करता ?
यही थी ज़ीस्तकी[10] लज्ज़त यही थी इश्क़की शान ।
शिकायते-तपिशो-इज़्तराब[11] क्या करता ।।

---

[1]हृदयको धोखा देनेवाली निगाह; [2]विरह-रोगसे; [3]पिंजरेसे; [4]घोंसला [5]देखनेमें लीन; [6]बिजलीने; [7]व्यर्थ, बेफ़ायदा; [8]वह पवन किस कामकी, जो मार्गके दीपकको बुझाकर रख दे; [9]साक़ीकी कंजूसीका परिणाम; [10]जीवनकी; [11]विरहज्वर, बेचैनीकी शिकायत ।

मुझे मिटा तो दिया क़ब्ल अहदेपीरीके[1]।
सलूक और दो रोज़ा शबाब[2] क्या करता॥
यह बहरेइश्क़का[3] तूफ़ान और ज़रा-सा दिल।
जहाज़ उलट गये लाखों हुबाब[4] क्या करता॥
पड़े न होते जो ग़फ़लतके 'आरज़ू' ! परदे।
ख़ुदा ही जाने यह जोशेशबाब क्या करता!

एक शौक़ेदिल इधर है, लाख अन्देशे उधर।
सोचकर कुछ ख़तमें लिखना फिर मिटाना ख़ुद-ब-ख़ुद॥

हौसले फिर बढ़ गये टूटा हुआ दिल जुड़ गया।
उफ़ यह ज़ालिम मुसकरा देना ख़फ़ा होनेके बाद॥

अपना जो बनाना है तो ओ दुश्मनेईमाँ!
इतना भी न कर ज़ुल्म कि आजाये ख़ुदा याद॥

ऐसी हसरत ही से बाज़ आना है ख़ूब।
जो मुझे मरग़ूब[5] उनको नापसन्द॥

ऐसी अँधेरी रातके सदक़े हज़ार चाँद।
शरमानेवाला जिसमें सरक आये डरके पास॥

उफ़रे बेदीद पढ़के सारा ख़त।
कह दिया यह नहीं हमारा ख़त॥

हिम्मते-कोताहसे[6] दिल तंगेज़िन्दाँ[7] बन गया।
वर्ना था घरसे सिवा इस घरका हर गोशा वसीअ[8]॥

---

[1]वृद्ध होनेसे पूर्व; [2]यौवन; [3]प्रेम-नदीका; [4]बुलबुला; [5]प्रिय; [6]हिम्मतोंकी कमीके कारण; [7]तंग कारागृह; संकीर्ण हृदय; [8]विशाल।

छोड़ दे दो गज़ ज़मीं, है दफ़्न जिसमें इक ग़रीब ।
है तेरी मश्क़े-ख़रामेनाज़को[1] दुनिया वसीअ ।।
है यह सब क़िस्मतकी कोताही[2] वगर्ना 'आरज़ू' ।
बढ़के दामाने-तलबसे[3] हाथ है उसका वसीअ ।।

जादह[4]-ओ-मंज़िल[5] जहाँ दोनों हैं एक ।
उस जगहसे है मेरा सेहरा[6] शुरू ।।
वक़्त थोड़ा और यह भी तै नहीं ।
किस जगहसे कीजिये क़िस्सा शुरू ।।
देखा ललचाई निगाहोंका मआल[7] ।
'आरज़ू' लो हो गया परदा शुरू ।।

जो मेरी सरगुज़िश्त[8] सुनते हैं ।
सरको दो-दो पहर वह धुनते हैं ।।
क़ैदमें माजराये-तनहाई[9] ।
आप कहते हैं, आप सुनते हैं ।।
आशियाँ कबतक और ख़ुद कबतक ।
वोह सिड़ी है जो तिनके चुनते हैं ।।

झूठे वादेका भी यक़ीन आ जाये ।
कुछ वोह इन तेवरोंसे कहते हैं ।।

मुझ ग़मज़दाके पाससे सब रोके उठे हैं ।
हाँ आप इक ऐसे हैं कि ख़ुश होके उठे हैं ।।

---

[1]अठखेलियोंके अभ्यासके लिए; [2]कमी; हीनता; [3]अभिलाषीके आँचलसे विस्तृत; [4]पगडंडी; [5]मार्गका पड़ाव; [6]जंगल; [7]परिणाम; [8]आत्म-कहानी; [9]एकाकी जीवनकी बात ।

मुँह उठके तो सब धोते हैं ऐ दीदये-ख़ूंबाज़[1] !
बिस्तरसे हम उठे हैं तो मुँह धोके उठे हैं ॥

आरामके थे साथी क्या-क्या जब वक़्त पड़ा तो कोई नहीं ।
सब दोस्त हैं अपने मतलबके दुनियामें किसीका कोई नहीं ॥

न तौबा[2] की है बज़ाहिर न छुपके पी है शराब ।
बरी हूँ दाग़ेरियासे[3] वह पाकदामन[4] हूँ ॥

तुम हो कि एक तर्ज़े-सितमपर नहीं क़रार ।
हम हैं कि पायेबन्द हरेक इम्तहाँके हैं ॥
हों सर्फ़[5] तीलियोंमें क़फ़सके[6] तो ख़ौफ़ है ।
तिनके जो मेरे उजड़े हुए आशियाँके हैं ॥

ख़ुदावन्दा ! एवज़ मिन्नतपज़ीरीके[7] वोह जौहर दे ।
ख़ुद अपने दर्दका इस दुःखभरी दुनियामें दरमाँ[8] हूँ ॥

इस आलमे-इमकाँमें[9] क्या है जो है नामुमकिन ।
ढूंढ़ो तो मिले उनक़ा,[10] चाहो तो ख़ुदा मुमकिन ॥

परदा जो दुईका उठ जाये फिर यह[11] न रहें अफ़साने दो ।
धोका है यह नामे दैरोहरम, बुत एक ही है बुतख़ाने दो ॥

लाता नहीं पैग़ाम कोई इसपै है यह हाल ।
क़ासिदको दिया करता हूँ इनआ़म हमेशा ॥

---

[1]रक्त रोनेवाले नेत्र; [2]प्रतिज्ञा; [3]दिखावटी धार्मिकतासे; [4]पवित्र; [5]-[6]पिंजरा बननेके लिए काम आयें; [7]प्रार्थना एवं स्तुति करानेके बजाय; [8]इलाज; [9]संसारमें; [10]एक पक्षी जिसका अस्तित्व नहीं; [11]दीवानमें शब्द यहाँ 'दो' है। मालूम होता है किताबतकी ग़लतीसे दो जगह 'दो' हो गया है । हमने पहले 'दो'को 'यह' बना देनेकी बेअदबी की है ।

सितमसे शमअ़ सरापा बयानेराज़[1] हुई ।
कटी ज़बान तो कुछ और भी दराज़[2] हुई ।।

फैल गई बालोंमें सफ़ेदी चौंक ज़रा करवट तो बदल ।
शामसे ग़ाफ़िल सोनेवाले देख तो कितनी रात रही ।।

ख़ुद चले आओ या बुला भेजो ।
रात अकेले बसर नहीं होती ।।
हम ख़ुदाईमें हो गये रुसवा ।
मगर उनको ख़बर नहीं होती ।।
किसी नादाँसे जो कही जाये ।
बात वह मुख़्तसर नहीं होती ।।
जबसे अश्कोंने राज़[3] खोल दिया ।
चार अपनी नज़र नहीं होती ।।
आग दिलमें लगी न हो जबतक ।
आँख अश्कोंसे तर नहीं होती ।।

क़फ़ससे ठोकरें खाती नज़र जिस नख़लतक[4] पहुँची ।
उसीपर लेके इक तिनका बिनाए-आशियाँ रख दी ।।
सकूनेदिल[5] नहीं जिस वक़्तसे इस बज़्ममें[6] आये ।
ज़रा-सी चीज़ घबराहटमें क्या जानें कहाँ रख दी ।।
बुरा हो इस मुहब्बतका हुए बरबाद घर लाखों ।
वहींसे आग लग उट्ठी यह चिनगारी जहाँ रख दी ।।
किया फिर तुमने रोता देखकर दीदारका[7] वादा ।
फिर एक बहते हुए पानीमें बुनियादेमकाँ रख दी ।।

---

[1]प्रेम-भेद बतानेको उद्यत; [2]बड़ी; [3]प्रेम-भेद; [4]वृक्षतक; [5]हृदयको चैन; [6]महफ़िलमें; [7]सूरत दिखानेका।

दरेदिल[1] 'आरज़ू' दरवाज़ए काबेसे बहतर था।
यह ओ ग़फ़लतके मारे ! तूने पेशानी कहाँ रख दी ?

शरअमें अपनी वाइज़ो ! हुक्म हैं मैकशीके दो।
"दे जो कोई हलाल है, ख़ुद जो पिये हराम है" ॥

अब मुझको फ़ायदा हो दवा-ओ-दुआसे क्या ?
वोह मुँहपै कह गये—"यह मरज़ ला इलाज है" ॥

इज्ज़त कुछ और शय है, नुमाइश कुछ और चीज़।
यूँ तो यहाँ ख़ुरोसके[2] सरपर भी ताज है ॥

मेरे ग़मने होश उनके भी खो दिये।
वोह समझाते-समझाते ख़ुद रो दिये ॥

इक जाम-ए-बोसीदा हस्ती[3] और रूह[4] अज़लसे[5] सौदाई[6]।
यह तंग लिबास न यूँ चढ़ता ख़ुद फाड़के हमने पहना है ॥
हिचकीमें जो उखड़ी साँस अपनी घबराके पुकारी याद उसकी—
"फिर जोड़ ले यह टूटा रिश्ता इक झटका और भी सहना है" ॥

नतीजा एक ही निकला कि थी क़िस्मतमें नाकामी।
कभी कुछ कहके पछताये कभी चुप रहके पछताये ॥

रहने दो तसल्ली तुम अपनी, दुख झेल चुके दिल टूट गया।
अब हाथ मलेसे होता है क्या, जब हाथसे नावक[7] छूट गया ॥

दो तुन्द[8] हवाओंपर बुनियाद है तूफ़ाँकी।
या तुम न हसीं होते या मैं न जवाँ होता ॥

लुत्फ़े-बहार कुछ नहीं, गो है वही बहार।
दिल क्या उजड़ गया कि ज़माना उजड़ गया ॥

---

[1]हृदय-द्वार; [2]मुर्गाके; [3]शरीररूपी गली-सड़ी पोशाक; [4]आत्मा; [5]प्रारम्भसे; [6]दीवानी; [7]तीर; [8]तेज़।

दफ़अ़तन तर्के-मुहब्बतमें भी रुसवाई है।
उलझे दामनको छुड़ाते नहीं झटका देकर ॥

दिलकी कशिशको अब भी, गुलशनसे है तआ़ल्लुक़ ।
कुछ पत्तियाँ क़फ़स तक उड़-उड़के आ रही हैं ॥

इम्तहाँ इश्क़में मंजूर है, ग़मख़्वारोंका ।
इक ज़रा होशमें आजाऊँ तो दीवाना बनूँ ॥

रोनेपै मेरे हँसते क्या हो ? बेसमझे न दीवाना जानो ?
दिल किससे लगाया है तुमने ? तुम दर्द किसीका क्या जानो ?

बातोंसे तसल्ली थी दिलको, वादेपै भरोसा हो न सका ।
फिर हो गई वैसी ही हालत, जब पाससे वोह समझाके उठे ।।

शबनमके आँसुओंपर क्या हँस रहे हैं गुंचे !
उनसे तो कोई पूछे कबतक हँसा करेंगे ?

क्या सोज़े-मुहब्बतने जफ़ा ज़ब्तमें की है ।
दर बन्द है और चार तरफ़ आग लगी है ॥

ताज़े वोह फिरसे हो गये, ग़म जो फ़लकने थे दिये ।
जिसने कि हँसके बात की, हम भी पलटके रो दिये ॥

कहके यह और कुछ कहा न गया—
कि "हमें आपसे शिकायत है" ॥

खींच लाया था यह किस आलमसे किस आलममें होश ?
अपना हाल अपने लिए जैसे कोई अफ़साना था ॥

वस्लका[1] ख़्वाहिशमन्द बने क्यों, हुस्नका सच्चा परवाना ।
दिलसे लगी है लाग तो इकदिन, ख़ुद शोला[2] बन जायेगा ॥

---

[1]मिलनका; [2]अंगारा ।

इश्क़पर भी छा गई रअ़नाइयाँ[1] ।
उफ़ तेरी तोड़ी हुई अँगड़ाइयाँ ॥

वोह तो कुछ मुसकराके हो गये चुप ।
एक उलझनमें पड़ गया हूँ मैं ॥

उलफ़त भी अजब शय है, जो दर्द वही दरमाँ[2] ।
पानीपै नहीं गिरता, जलता हुआ परवाना[3] ॥

कुछ सहारा चाहती है आशिक़ीकी जिन्दगी ।
बेनियाज़ी[4] तेरे सदक़े[5] नाज़[6] बेजा ही सही ॥

मुझे रहनेको वोह मिला है घर कि जो आफ़तोंकी है रहगुजर[7] ।
तुम्हें ख़ाकसारोंकी[8] क्या ख़बर, कभी नीचे उतरे हो बामसे[9] ?

जो तेरे अमलका चराग़ है, वही बेमहल[10] है तो दाग़ है ।
न जलाके बैठ उसे सुबहसे, न बुझाके सो उसे शामसे ॥

जमा हुए हैं कुछ हसीं, गिर्द मेरे मज़ारके ।
फूल कहाँसे खिल गये दिन तो न थे बहारके ॥

छीना था छलकता हुआ जाम, उसने झटककर ।
क्या मुफ़्तका धब्बा मेरे दामनमें लगा है ।

तजरुबे सब हेच हैं, क़ानून सब बेकार है ।
हर ज़माना इक नया पैग़ाम लेकर आये है ॥

धूप सह लेना है अच्छा, बारे-अहसाँ कौन उठाये ?
छाँव इक गिरती हुई दीवार है मेरे लिए ॥

---

[1]सुन्दरता; [2]इलाज; [3]पतंगा; [4]बेपरवाही, उपेक्षा; [5]न्योछावर; [6]सौन्दर्य-अभिमान; [7]मार्ग; [8]धूलमें मिले हुओंकी, सेवकोंकी; [9]ऊपरसे, कोठेसे; [10]अव्यवस्थित ।

जो देखेगा रोते मुझे, तुमको हँसते।
मेरी बात छोड़ो तुम्हें क्या कहेगा?

आँख उसने फिराके रुत पलट दी।
हँसते हुए फूल रो रहे है॥

बैठे तकते तो है, कनखियोंसे।
यह नहीं पूछते, खड़े क्यों हो?

चुभते हुए देखा है न काँटा, न कोई फाँस।
ऐ साँस बता दे, यह है काहेकी खटक-सी॥

यह है तेरे घायलका अब साँस लेना।
छुरी इक कलेजेमें जैसे चुभो ली॥

किसने भीगे हुए बालोंसे यह झटका पानी।
झूमकर आई घटा टूटके बरसा पानी॥

आये दिन अच्छा नहीं एक बावलेको छेड़ना।
मर मिटेगा 'आरज़ू' जिस दिन उसे झक आगई॥

अपने लिए मतवाली है कैसी, यह न पूछो।
वोह आँख कि जो दूसरोंकी नींद उड़ा दे॥

रहते न तुम अलग-थलग हम न गुज़रते आपसे।
चुपके-से कहनेवाली बात कहनी पड़ी पुकारके॥

पूछी थी छेड़कर जो बात, कहने न दी वोह बात भी।
तुमने खटकती फाँसको छोड़ दिया उभारके॥

तारा टूटते देखा सबने, यह नहीं देखा एकने भी।
किसकी आँखसे आँसू टपका, किसका सहारा टूटा है॥

चुप एक पहेली है, सोचोगे तो बूझोगे।
तुमसे वही कहना है, जो सबसे छुपाना है॥

बता देगी भेद 'आरज़ू' ! नींद उड़कर।
कि जो रात छोटी थी, अब क्यों बड़ी है॥

दो घड़ीको दे-दे कोई अपनी आँखोंकी जो नींद।
पाँव फैला दूँ गलीमें तेरी सोनेके लिए॥

मिट भी सकती थी कहीं, बेरोये छातीकी जलन।
आगको पिघला लिया फाहा भिगोनेके लिए॥

—फ़ुग़ाने आरज़ूसे

आ गई मंज़िले-मुराद[1],
बाँगेदराको[2] भूल जा।
जाते-ख़ुदामें यूँ हो महव,[3]
नामे-ख़ुदाको भूल जा॥*

सबकी पसन्द अलग-अलग, सबके जुदा-जुदा मज़ाक़।
जिसपै कि मर मिटा कोई, अब उस अदाको भूल जा॥

ज़ख़्मसे कम नहीं है, उसकी हँसी।
जिसको रोना भी अब नहीं आता॥

---

[1] अभिलिषित यात्रा-स्थान; [2] घण्टीकी आवाज़; [3] लीन।

*होश किसीका भी न रख जलवागहे—नियाज़में[4]।
बल्कि ख़ुदाको भूल जा सजदये बेनियाज़में[5]॥ 'असग़र' गोंडवी

---

*-[4]ईश्वरके प्रासादमें, प्रेम-मन्दिरमें; [5]भक्तिकी तल्लीनतामें।

क्यों किसी रहबरसे पूछूँ अपनी मंज़िलका पता ।
मौजेदरिया ख़ुद लगा लेती है साहिलका पता ।।
राहबर रहज़न न बन जाये कहीं, इस सोचमें ।
चुप खड़ा हूँ भूलकर रस्तेमें मंज़िलका पता ।।*

मैं चुप आसरा लगाये, और उन्हें यही बहाना--
"कि यह मुँहसे कुछ तो कहता, जो उमीदवार होता" ।।†

इश्क़में सौ बार नाला आके लबतक रह गया ।
बात अकेलेकी नहीं थी दो दिलोंका राज़ था ।।

वोह कहते हैं "मैं तेरे घर मेहमान था" ।
यह सच है तो ऐ बेख़ुदी[1]! मैं कहाँ था ?

नैरंगियाँ चमनकी तिलिस्मे-फ़रेब हैं ।
उस जा भटक रहा हूँ जहाँ आशियाँ न था ।।
पाबन्दियोंने खोल दी आँखें तो समझे हम ।
आकर क़फ़समें बस गये थे आशियाँ न था ।।

जो दर्द मिटते-मिटते भी मुझको मिटा गया ।
क्या उसका पूछना कि कहाँ था कहाँ न था ।।
अबतक वह चारासाज़िये[2]-चश्मेकरम[3] है याद
फाहा वहाँ लगाते थे, चरका जहाँ न था ।।

---

*छोड़ा न रश्कने कि तेरे घरका नाम लूँ ।
हरइकसे पूछता हूँ कि जाऊँ किधरको मैं ।।--ग़ालिब

†कहते हैं जब रही न मुझे ताक़ते-सुख़न--
"जानूँ किसीके दिलकी मैं क्योंकर कहे बग़ैर ?"--ग़ालिब

[1] आत्म-लीनता; [2-3] चिकित्सककी कृपा ।

हमको इतना भी रिहाईकी ख़ुशीमें नहीं होश।
टूटी ज़ंजीर कि ख़ुद पाँव हमारा टूटा॥

पहले बाला-ए-ज़मीं[1] थे आबसे[2] अब ज़ेरेख़ाक[3]।
तूलने मीयादके बदला है, ज़िन्दाँ[4] दूसरा॥

उढ़ा दी वादिये-ग़ुरबतमें[5] चादर गर्दने आकर।
मिला आख़िर वही लिखवाके लाये थे कफ़न जैसा॥

जो कोई हद हो मुअ़य्यन[6] तो शौक़, शौक़ नहीं।
वोह कामयाब है जो कामयाब हो न सका॥

बुरी सरिश्त[7] न बदली जगह बदलनेसे।
चमनमें आके भी काँटा गुलाब हो न सका॥

उदू न थी मगर अन्धी ज़रूर थी बिजली।
कि देखे फूल न पत्ते न आशियाँ देखा॥

ज़मानेसे नाज़ अपने उठवानेवाले।
मुहब्बतका बोझ आप उठाना पड़ेगा॥
सज़ा तो बजा है, यह अन्धेर कैसा?
ख़ताको भी जो ख़ुद बताना पड़ेगा॥
मुहब्बत नहीं, आगसे खेलना है।
लगाना पड़ेगा, बुझाना पड़ेगा॥

ख़ुदारा! न दो बदगुमानीका मौक़ा।
कहलवाके औरोंसे पैग़ाम अपना॥
हविसकार[8] आशिक़ भी ऐसा है जैसे—
वह बन्दा कि रखले ख़ुदा नाम अपना॥

---

[1] ज़मीनके ऊपर; [2] पानीसे; [3] ज़मीनके नीचे; [4] क़ैदख़ाना; [5] यात्राके मार्गमें; [6] निश्चित; [7] क़िस्मत; [8] काम-लोलुप।

पलक झपकी कि मंज़र[1] ख़त्म था बर्क़े-तजल्लीका।
ज़रा-सी न्यामतेदीद, उसका भी यूँ रायगाँ[2] जाना॥
समझ ले शमासे ऐ हमनशीं[3]! आदाबे[4]-ग़मख़्वारी।
ज़बाँ कटवानेवालेका है, मन्सब[5] राज़दाँ[6] होना॥

अल्लाह, अल्लाह हुस्नकी यह परदेदारी देखिये।
भेद जिसने खोलना चाहा, वोह दीवाना हुआ॥

महमाँनवाज़[7], वादिये-ग़ुरबतकी[8] ख़ाक थी।
लाशा[9] किसी ग़रीबका उरियाँ[10] नहीं रहा॥
आँसू बना जबींका अरक़[11] ज़ब्ते-अश्कसे।
बदला भी ग़मने भेस तो पिन्हाँ[12] नहीं रहा॥

ज़बाँका फ़र्क़ हक़ीक़त बदल नहीं सकता।
यह कोई बात नहीं, बुत कहा ख़ुदा न कहा॥

क़रीबेसुबह यह कहकर अजलने[13] आँख झपका दी--
"अरे-ओ हिज्रके मारे तुझे अबतक न ख़्वाब आया"॥
दिल उस आवाज़के सदक़े, यह मुश्किलमे कहा किसने--
"न घबराना, न घबराना, मैं आया और शिताब[14] आया"॥
कोई क़त्ताल सूरत देख ली मरने लगे उसपर।
यह मौत इक ख़ुशनुमाँ परदेमें आई या शबाब आया।*

---

[1] दृश्य; [2] व्यर्थ; [3] पड़ौसी, साथी; [4] दुखियोंका अदब करना; [5] ओहदा; [6] भेदी; [7] अतिथिका सत्कार करनेवाली; [8] यात्रा-मार्गकी; [9] शव; [10] नग्न, बेकफ़न; [11] मस्तकका पसीना; [12] छिपा हुआ; [13] मृत्युने; [14] शीघ्र।

*सँभाला होश तो मरने लगे हसीनोंपर।
हमें तो मौत ही आई शबाबके बदले॥
--अज्ञात

मुअ़म्मा[1] बन गया राज़ेमुहब्बत[2] 'आरज़ू' यूँ ही।
वे मुझसे पूछते झिझके, मुझे कहते हिजाब आया ॥*

जिसमें कैफ़ेग़म[3] नहीं, बाज़ आये ऐसे दिलसे हम।
यह भी देना है कोई ? मय तो न दी, साग़र दिया !
'आरज़ू' इकरोज़ ढा देता मुझे मेरा ही ज़ोर।
यह भी उसकी कारसाज़ी दिलमें जिसने डर दिया ॥†

एक दिलमें ग़म ज़माने भरका, क्योंकर भर दिया।
ख़ूए-हमदर्दीने[4] कूज़ेमें समन्दर भर दिया ॥
आँख थी साक़ीकी जानिब, हाथमें जामेतिही[5]।
मय तो क़िस्मतमें कहाँ ? अश्कोंने साग़र भर दिया ॥

साथ हर हिचकीके लबपर उनका नाम आया तो क्या ?
जो समझ ही में न आये वह पयाम[6] आया तो क्या ?
मयसे हूँ महरूम अब भी जो शरीके-दौर हूँ।
पाये-साक़ीसे जो ठोकर खाके जाम आया तो क्या ?

आशिक़ीने मत पलट दी हुस्नने खोये हवास।
उसने जितनी दुश्मनी की और प्यारा हो गया ॥

---

[1]पहेली; [2]प्रेम-भेद; [3]व्यथा सहनेकी आदत; [4]हमदर्दीकी आदतने; [5]खाली गिलास; [6]सन्देश।

*ग़लत फ़हमियोंमें जवानी गुज़ारी।
कभी वे न समझे, कभी हम न समझे ॥
—सबा अकबराबादी

†मेरी हविसको ऐशे-दो आलम भी था क़ुबूल।
तेरा करम कि तूने दिया दिल दुखा हुआ ॥
—फ़ानी बदायूनी

जवाब देनेके बदले वे शक्ल देखते हैं।
यह क्या हुआ मेरे चेहरेको, अर्ज़ेहालके बाद॥*

अदाशनास निगाहोंने ऐसा कुछ देखा।
जवाबकी न तमन्ना रही सवालके बाद॥

नातवाँ बीमारेग़म, उसपर थपेड़े मौतके।
बुझ गया आख़िर चिराग़ेसुबह लहरानेके बाद॥†

आफ़तमें पड़े दर्दके इज़हारसे हम और।
याद आ गये भूले हुए कुछ उसको सितम और॥
हम 'आरज़ू' इस शानसे पहुँचे सरेमंज़िल।
ख़ुद लग़ज़िशेपा[1] ले गई दो-चार क़दम और॥

माँग जो खोके आन-बान न माँग।
क़त्ल हो जा मगर अमान[2] न माँग॥

आलूदगीये-गर्देतमासे[3] ख़ुदा बचाय।
जाते हैं झाड़ते हुए दामन चमनसे हम॥

---

[1]पाँवोंकी लड़खड़ाहट; [2]जीवन-रक्षा; [3]अभिलाषा रूपी धूलकी लिप्ततासे।

*तेरे सवालपर चुप है इसे ग़नीमत जान।
कहीं जवाब न दे-दे कि मैं नहीं सुनता॥—शाद अज़ीमाबादी

†जब उखड़ी साँस तो बीमारेग़म सँभल न सका।
हवा थी तेज़ चराग़ेहयात जल न सका॥
चराग़ेहुस्न तेरा और मेरा चराग़ेदिल।
वह जलके बुझ न सका और यह बुझके जल न सका॥

—नानक लखनवी

मिली है इसलिए दो-चार दिनकी आज़ादी।
कि सर्फ़[1] करता है देखे यह अख़्तियार कहाँ ?

'आरज़ू' ! हो चुकी सौ मर्तबा दुनिया बेदार[2]।
और मैं सोई हुई तक़दीर लिये बैठा हूँ ॥

मेरी नाकामियाँ रोती है ख़ुद मेरी जवानीपर।
हूँ एक जामेतमन्ना[3] और मयेइशरतसे[4] ख़ाली हूँ ॥

उनकी बेजा भी सुनूँ, आप बजा भी न कहूँ।
आख़िर इन्सान हूँ मैं भी, कोई दीवार नहीं ॥

सरूरे-शबका[5] नहीं, सुबहका ख़ुमार[6] हूँ मैं।
निकल चुकी है जो गुलशनसे वोह बहार हूँ मैं ॥
करम[7]पै तेरे नज़र की तो ढै गया वह ग़रूर।
बढ़ा था नाज़[8] कि हदका गुनहगार[9] हूँ मैं ॥

कौन दीवाना कहे इश्क़के दीवानेको।
गिरते देखा न बुझी शमअ़पै परवानेको ॥*

---

[1]ख़र्च; [2]जाग्रत; [3]अभिलाषा रूपी गिलास; [4]ऐश्वर्यरूपी मदिरासे; [5]रात्रिकालीन नशा; [6]नशेका उतार; [7]कृपाओंपर; [8]घमड; [9]पापी।

*बुझी हुई शमापर परवाना तो नही जलता, परन्तु भारत-ललनाएँ अपने मृतक पतियोंके साथ जलती रही हैं। शेख़ शादीने भारतकी सैर करते हुए लिखा था—

चूँ जने हिन्दी कसे दर आशिक़ी मर्दाना नेस्त।
सोख़्तन बर शमा मुर्दन कारे हर परवाना नेस्त ॥

प्रेममें हिन्दकी स्त्रियोंसे बढ़कर कोई नही। परवाना तो जलती हुई शमापर ही जलता है, परन्तु भारतकी नारियाँ बुझे हुए चराग़ (मृतक पति)पर जल मरती हैं।

उनको तो हर बातपर हँस देनेकी आदत है।
क्या निकला ज़बाँसे हम इस उलझनमें पड़े हैं ॥

न यह कहो "तेरी तक़दीरका हूँ मैं मालिक"।
बनो जो चाहो ख़ुदाके लिए, ख़ुदा न बनो ॥
अगर है ज़ुर्मेमुहब्बत तो ख़ैर यूँ ही सही।
मगर तुम्हीं कहीं इस ज़ुर्मकी सज़ा न बनो ॥
मिले भी कुछ तो है बहतर तलबसे इस्तग़ना[1]।
बनो तो शाह[2] बनो, 'आरज़ू' ! गदा[3] न बनो ॥

दैरोहरम हुए तो क्या, है ये मकान बेमुकीं।
तो सर वहाँ झुकेगा जो तेरा हरीमे-नाज़ हो ॥

क़ैद मज़बूत नहीं, दामोक़फ़सकी[4] सैयाद !।
रख वोह बर्ताव कि दिल माइल-परवाज़[5] न हो ॥

रुकके लिया जो दम तो फिर, ख़ाम[6] है शौक़ेजुस्तजू[7]।
जिसकी मददका हो यकीं, उसका भी आसरा न देख ॥

हर दानेपै इक क़तरा, हर क़तरेपै इक दाना।
इस हाथमें सुमरन है, उस हाथमें पैमाना ॥
कुछ तंगियेज़िन्दाँसे[8] दिलतंग नहीं वहशी[9]।
फिरता है निगाहोंमें, वीराना-ही-वीराना ॥

फ़स्लेगुल बाग़में दिलकश नहीं सैयाद ! अभी।
पर हैं बेज़ोर न कर क़ैदसे आज़ाद अभी ॥

---

[1]सन्तोष; [2]बादशाह; [3]भिक्षुक; [4]जाल और पिंजरेका बन्धन; [5]उड़नेको उद्यत; [6]व्यर्थ; [7]तलाशका शौक़; [8]कारागृहकी संकीर्णतासे; [9]पागल।

हुस्ने-सीरतपर नज़रकर, हुस्ने-सूरतको न देख ।
आदमी है नामका गर ख़ू नहीं इन्सानकी ।।
ध्यान आता है कि टूटा था, ग़लतफ़हमीमें अहद[1] ।
यादगार इक है तो धुँधली-सी मगर किस शानकी ।।

उठ खड़ा हो तो बगोला है, जो बैठे तो ग़ुबार ।
ख़ाक होकर भी वही शान है, दीवानेकी ।।
'आरज़ू' ! ख़त्म हक़ीक़तपै हुआ दौरे-मजाज़ ।
डाली काबेकी बिना, आड़से बुतख़ानेकी ।।

क्यों शौक़ेतलबसे बाज़ रहें, अंजामेमुहब्बत क्यों सोचें ?
इक दिलका बहलावा तो है, सब दर्दसरी बेकार सही ।।

सबब बग़ैर था हर जब्र क़ाबिले-इलज़ाम ।
बहाना ढूँढ लिया, देके अख़्तियार मुझे ।।
किया है आग लगानेको बन्द दरवाज़ा ।
कि होंट सीके बनाया है राज़दार मुझे ।।

ज़ाहिद ! वोह उन आँखोंकी टपकती हुई मस्ती ।
पत्थरमें गढ़ा डालके पैमाना बना दे ।।

यह तो बात उनके समझनेकी है ऐ ग़ैरतेइश्क़ !
हम कहें क्यों ? न उठेगा ग़मेहिज्राँ हमसे ।।

नालाँ ख़ुद अपने दिलसे हूँ दरबाँको[2] क्या कहूँ !
जैसे बिठा गया है, कोई पाँव तोड़के ।।
क्या जाने टपके आँखसे किस वक़्त ख़ूनेदिल ।
आँसू गिरा रहा हूँ जगह छोड़-छोड़के ।।

---

[1]प्रतिज्ञा; [2]पहरेदारको ।

भले दिन आये तो आज़ार बन गया आराम।
क़फ़सके तिनके भी काम आ गये नशेमनके॥
मिटाके फिर तो बनानेपर अब नहीं क़ाबू।
वोह सर झुकाये खड़े हैं, क़रीब मदफ़नके[1]॥*

हमें इक रोज़ यह भी देखना है 'आरज़ू' मरकर।
कि ख़ुश होता है कौन और कौन मातमदार होता है॥

क्यों उसकी यह दिलजोई, दिल जिसका दुखाना है।
ठहराके निशानेको क्या तीर लगाना है?
अन्दाज़े-तग़ाफ़ुलपर[2] दिल चोट तो खा बैठा।
अब उनकी निशानीको, उनसे भी छुपाना है॥
कमताक़तिये—नालाँ अश्कोंसे मदद ले-ले।
बेरब्त कहानीमें, पेवन्द लगाना है॥

किसी जा गर्दमें मोती, कहीं है गर्द मोतीमें।
तेरी राहोंको ऐ तक़दीर! हमने ख़ूब छाना है॥

ग़ुबार उठता है यह कहता हुआ गोरेग़रीबाँसे[3]—
"जहाँमें एक दिन सबका यही अंजाम होना है"॥

फिर 'आरज़ू'को दरसे[4] उठा, पहले यह बता।
आख़िर ग़रीब जाये कहाँ और कहाँ रहे?

---

[1]क़ब्रके;

*मिलाकर ख़ाकमें भी हाय! शर्म उनकी नहीं जाती।
निगह नीची किये वोह सामने मदफ़नके बैठे हैं॥
—असीर लखनवी

[2]उपेक्षाके अन्दाज़पर; [3]क़ब्रिस्तानसे; [4]दरवाज़ेसे।

था शौक़ेदीद[1] ताब-ए-आदाबे-बज़्मेनाज़[2]।
यानी बचा-बचाके नज़र देखते रहे॥
अहले-क़फ़सका ख़ौफ़ज़दा शौक़ क्या कहूँ?
सूएचमन समेटके पर देखते रहे॥

पाँवको लग़ज़िश है, लबपर शोरे-नोशा-नोश है।
जितनी पैमानेमे अब बाक़ी है, उतना होश है॥

इश्क़ दिलमें शोलाअफ़गन[3], चश्मेतरमें[4] अश्केरेज़[5]।
एक ही शै[6] और कहीं पानी किसी जा आग है॥

आँख जिस दिनसे लगी है, आँख लगना जुर्म है।
उसकी वैसी ही सज़ा भी होगी जैसा जुर्म है॥

बेराहनुमा डाला है, जिस राहपै दिलने।
इतनी है ख़तरनाक कि रहज़न[7] भी नहीं है॥

ग़म दिया है कि मसर्रत दी है, सबमें इक तरहकी लज़्ज़त दी है।
हँस न इतना कि ख़ुशी ग़म हो जाये, शै हरइक हस्ब ज़रूरत दी है॥

अलअमाँ मेरे ग़मकदेकी शाम।
सुर्ख़ शोअ़ला सियाह हो जाये॥*
पाक निकले वहाँसे कौन जहाँ।
उज़्रख़्वाही गुनाह हो जाये॥

---

[1]देखनेका चाव; [2]महफ़िलके अदब-क़ायदेका ख़याल रखते हुए; [3]दहकता हुआ; [4]नेत्रोंमें; [5]आँसू; [6]वस्तु; [7]लुटेरा।

*मेरे ग़मख़ानये मुसीबतकी।
चाँदनी भी सियाह होती है॥

—जिगर मुरादाबादी

इन्तहाये-करम वोह है कि जहाँ।
बेगुनाही गुनाह हो जाये॥

जाँचकर ताबेनज़रको रूएजानाँ देखिये।
देख सकिये कौंदती बिजली तो हाँ-हाँ देखिये॥

—जहाने आरज़ूसे

साक़िया! चश्मेकरमका वक़्त होगा कौन-सा?
जामे-दिल ख़ाली है, जामे-ज़िन्दगी लबरेज़ है॥

१५ जुलाई १९४९]

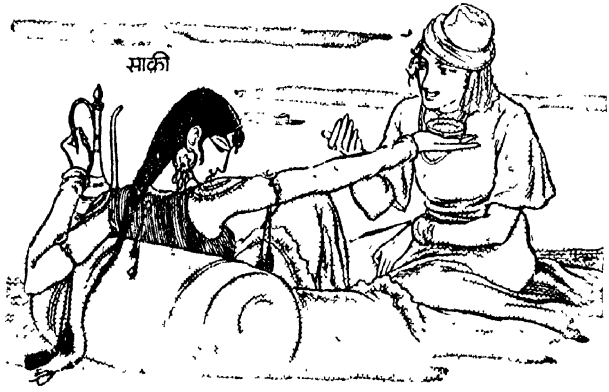

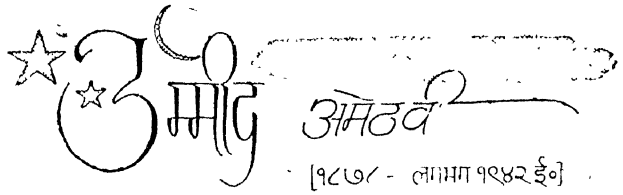

मुहम्मदअली 'उम्मीद' सुलतानपुर ज़िलेके उमेठगढ़ क़स्बेमें ३ फ़रवरी १८७८ ई० में पैदा हुए। आप १८९३ ई० में लखनऊ चले गये। फ़ारसी-उर्दू दोनोंमें शेर कहते हैं। आप उर्दू शायरीमें 'जलालके' शिष्य थे। मगर आप फ़ारसीके क्लिष्ट और अव्यवहारिक शब्दोंको उर्दूमें ठूंसनेका प्रयत्न करते थे। जो कि उस्तादको नागवार गुज़रता था। एक दिन उस्तादने फ़र्माया—"हज़रत! आप वही मिर्ज़ा नोशा (ग़ालिब) की तरह झाड़-झंकाड़में चले जा रहे हैं। मुझे आपका यह असलूबे-बयान पसन्द नहीं।"

परिणामस्वरूप आप उर्दूका कलाम भी अपने फ़ारसी उस्तादको दिखाने लगे।

आपके स्वयं पसन्दीदा अशआर 'निगार' जनवरी-फ़रवरी १९४१ में प्रकाशित हुए थे, उनमेंसे चन्द हम यहाँ साभार उद्धृत कर रहे हैं—

ख़ुशनसीबीका उसकी क्या कहना।
तुम हो दुनियामें जिस किसीसे ख़ुश॥
'उम्मीद'! रो दिये तो क्या लुत्फ़ दिल्लगीका?
इतना ही गुदगुदाओ आये हँसी जहाँ तक॥

रोई शबनम, गुल हँसा, ग़ुंचा खिला, मेरे लिए।
जिससे जो कुछ हो सका उसने किया मेरे लिए॥

आम है यूं तो मेरी बरबादियोंका वाक़या।
वह भी तो कह दें कि कोई मर मिटा मेरे लिए॥
हँसनेवाले रो दिये और रोनेवाले हँस पड़े।
दिलके हाथों जो न होना था हुआ मेरे लिए॥

नाम सुनकर ख़ुशीका ऐ 'उम्मीद'!
रंज होता है अब ख़ुशी कैसी?

फ़र्ते-सजूदे-ग़ैरसे ख़स्ता है जब वोह संगेदर।
अपनी जबीने शौक़को दाग़ कोई लगाये क्यों?
वोह ज़ूद रंज है और ज़ूद रंज भी कैसा?
जो रूठ जाये तो जुरअत न हो मनाने की॥
ख़ुशी तो उनकी ख़ुशी है कि जिससे सब ख़ुश है।
हमारे दिलकी ख़ुशी क्या? हुई-हुई न हुई॥
यह और बात है रंजीदा हो गये 'उम्मीद'।
तेरी तरफ़से तो ख़ातिरमें कुछ कमी न हुई॥
कल तक जो पूछता तो इक बात भी थी ज़ालिम!
अब किसको पूछता है? 'उम्मीद' अब कहाँ है?
अरे सूदोज़ियाँ देखा नहीं जाता मुहब्बतमें।
यह सौदा और सौदा है यह दुनिया और दुनिया है॥
कलतक तो उनके वादये-फ़रदाका उज्र था।
अब आज क्या अजलसे बहाना करेंगे हम॥
समझे न थे कि एक दिन ऐसा भी आयगा।
हँसनेपर अपने आप ही रोया करेंगे हम॥
ज़िंदगी है अपने क़ब्ज़ेमें न अपने बसमें मौत।
आदमी मजबूर है और किस क़दर मजबूर है॥
गुनाहसे हूँ ख़िजल लेकिन, कभी तेरी तरह ज़ाहिद!
ख़ुदा बनकर नहीं की है ख़ुदाकी बंदगी मैंने॥

नाज है यह कि मुहब्बतमें बड़ा सब्र किया।
पूछिये, सब्र न करते तो भला करते क्या?
दिलकी उलझन न पूछिये 'उम्मीद'।
हम न ख़िलवतके हैं न महफ़िलके॥
आप कल गुज़रे हैं जिस राहगुज़रसे पहले।
वहीं बैठा है कोई जाके सहरसे पहले॥
फिर इन्तज़ारकी लज़्ज़त नसीब हो कि न हो।
ख़ुदा करे कोई ख़तका जवाब रहने दे॥
ख़याल और किसीका अगर नहीं, न सही।
तुझे तो चैनसे तेरा शबाब रहने दे॥
कहनेके लिए ख़िज्रो-मसीहाकी भी सुनलो।
लेकिन ग़मेहस्तीकी दवा और ही कुछ है॥
जो देखें तो तड़पें न देखें तो तरसे।
यह सूरत है देखें जो सूरत किसीकी॥
जो बस हो तो ख़ुदको भी ख़ुदसे छुपायें।
हैं ऐसे भी शर्मो-हया करनेवाले॥
टूटा तो तिलस्म 'उम्मीद'! उन शरमगीं आँखोंका।
आप अपने ही को देखा ज़ालिमने मगर देखा॥
हँसते हैं यूँ ही ख़ूबिये तक़दीरपर अपनी।
तू और कुछ ऐ रहबरे-कामिल न समझना॥
तूर हो या कलीम हो मुझको तो है यह देखना।
इश्क़ो हविसका फ़ैसला तेरी नज़रने क्या किया?
पहले तो मुझको ग़म यह था आहमें कुछ असर नहीं।
अब तो मुझे यह रंज है, हाय असरने क्या किया?
हुबाबो-मौजको भी देखकर आँखें नहीं खुलतीं।
ग़ज़बकी नींदमें डूबा हुआ है नाख़ुदा मेरा॥

क़ैसके हुस्ने-तसव्वुरकी करे तसदीक़ कौन ?
वरना अब महमिलमे कोई है, न जब महमिलमें था ।।
कहाँका हश्र किसकी दाद इक ख़्वाबे-परीशाँ था।
खुली जब आँख तो अपना ही हाथ अपना गरेबाँ था ।।
मुझे मेरे तसव्वुरने बड़ा धोखा दिया वरना।
किसीका मेज़बाँ था मैं न कोई मेरा महमाँ था।।
ख़ुदा मालूम क्या वादा है उस जाने-तग़ाफ़ुलसे।
कि अब जीना बड़ा मुश्किल है मर जाना तो आसाँ था ।।
अल्लाहरे फ़रेबे-तमन्ना कि बार-हा ।
अपने ही ख़तको लेके पढ़ा नामाबरसे आप ।।
'उम्मीद' ! पासे-चश्मे-मुरव्वतका हो बुरा।
दिल ले गये वोह कह न सके कुछ ज़बाँसे हम ।।
परस्तिशके क़ाबिल है ज़र्रा-ज़र्रा मेरी हस्तीका।
मगर यह बात कहनेकी नहीं शेख़ो-बिरहमनमें ।।
बतायें क्यों निकलवाये गये 'उम्मीद' काबेसे !
वहाँ भी कोई शै पोशीदा थी हज़रतके दामनमें ।।
मरहूने-इल्तफ़ाते-मसीहा नहीं हूँ मैं।
आख़िर बुरा ही क्या है जो अच्छा नहीं हूँ मैं ।।
बिगड़ बैठे अगर 'उम्मीद' उस जाने-तमन्नासे।
ताज्जुब क्या कभी ऐसा भी होता है मुहब्बतमें ।।
कहीं वोह शोख़ न सुनता हो चुप रहो 'उम्मीद' !
जफ़ाशुआर तो है जो वफ़ाशुआर नहीं ।।

२८ फ़रवरी १९५२]

रियाज़ ख़ैराबादी

[१८५३ – १९३४ ई०]

सैयद रियाजअहमद 'रियाज़' लखनऊके समीप ख़ैराबाद ज़िला सीतापुरमें १८५३ ई० में उत्पन्न हुए। आपके पिता सैयद तुफ़ैलअहमद पहले गोरखपुरमें कोर्ट इन्सपेक्टर, बादमें आगरेके शहर कोतवाल रहे।

रियाज़ भी पहले-पहल पुलिस-विभागमें ही गये, किन्तु आपकी साहित्यिक रुचिने वहाँ अधिक नही रहने दिया और १८७२ ई० में त्यागपत्र देकर साहित्यिक क्षेत्रमें उतर पड़े। १६ वर्षकी पूरी तरह उम्र हो भी नही पाई थी कि गोरखपुरसे 'रियाजुल' अखबारका संपादन एवं प्रकाशन करने लगे। थोड़े ही अर्सेके बाद 'तारवर्क़ी' दैनिक पत्र भी निकालने लगे। १८७६ ई० में शायरी संबंधी 'गलक़दये-रियाज़' का प्रकाशन प्रारंभ कर दिया। आपके गद्यके लोग काफ़ी प्रशंसक थे। बहुत-से तो केवल आपका संपादकीय पढनेको अखबार लेते थे।

रियाज़को कमसिनीसे ही शायरीका शौक़ हो गया था। पहले आप 'असीर'से मशविरये-सुखन लेते थे, किन्तु 'असीर' वृद्ध हो जानेके कारण शिष्योंकी ग़ज़लोंका संशोधन पूरी तवज्जहसे नही कर पाते थे। अतः उन्होंने अपने प्रधान शिष्य 'अमीर' मीनाईके सुपुर्द अपने सभी शिष्य कर दिये थे। 'अमीर' मीनाई उन दिनों ख्यातिके शिखरको छू रहे थे। तभीसे 'रियाज़' 'अमीर' मीनाईके शिष्य होकर उनका हृदयसे कलमा पढ़ने लगे।

१९ वीं शताब्दीके इन अंतिम दिनोंमें जब कि चमने-उर्दूमें मिर्ज़ा 'दाग़', मुंशी 'अमीर' मीनाई, और 'जलाल'की शायरीका तूती बोल रहा था, 'रियाज़' भी अपने उस्तादके जीवनकालमें ही ख्यातिकी सीढ़ियोंपर पाँव रखने लगे थे।

१८५७ के विप्लवके बाद दिल्ली-लखनऊकी सल्तनतें नष्ट हो चुकी थी। राज्याश्रित प्रायः सभी उच्चकोटिके कलाकारोंको रामपुरके तत्कालीन गुणज्ञ नवाबने अपने यहाँ बुला लिया था। मुनीर, अरूज, बहर, आग़ा, कलक, अमीर मीनाई, जलाल, दाग़--जैसे ख्यातिप्राप्त शायर रामपुरकी रौनक बढ़ा रहे थे। कलापारखी नवाबने 'रियाज' को भी रामपुर बुलाकर पुरस्कृत किया, और स्थायी रूपसे रामपुरमें ही रखनेकी अभिलाषा प्रकट की, किन्तु रियाज़की स्वतन्त्र और स्वाभिमानी प्रकृतिने वहाँ रहना उचित नही समझा। यहाँतक कि नवाब रामपुरने दो बार अपने साहब- ज़ादेको 'रियाज़'को लखनऊसे लिवा लानेको भेजा और तीसरी बार राजा नौशादअलीद्वारा प्रेरणा की, किन्तु 'रियाज' फिर भी रामपुर नही जा सके। रामपुर नवाबके अतिरिक्त नवाब हैदराबाद और उनके प्रधान मन्त्री राजा किशनप्रसाद 'शाद' ने भी रियाज़को हैदराबाद बसनेके लिए क़ाफ़ी ज़ोर दिया, परन्तु आप वहाँ भी नहीं गये।

बचपनसे १९०८ तक आप अधिकतर गोरखपुरमे रहे। खैराबाद बहुत कम रहे। मरते दमतक गोरखपुर नही छोड़ना चाहते थे, परन्तु भवितव्यको कौन टाल सकता है? महाराजा महमूदाबादके प्रेमाग्रहको आप नही टाल सके, और १९०८ ई० में आपको लखनऊ चला जाना पड़ा। गोरखपुरसे आपको कितना प्रेम था, उसको छोड़ते समय जो व्यथा पहुँची, उसे यूँ व्यक्त किया है--

जवानी जिनमें खोई है वोह गलियाँ याद आती हैं।
बड़ी हसरतसे लबपर ज़िक्रे-गोरखपूर आता है॥

'रियाज़' थी जो मुक़द्दरमें बाज़गश्तेशबाब।
जवान होनेको पीरीमे लखनऊ आये॥

'रियाज़' अपने उस्ताद 'अमीर' मीनाईको अत्यंत आदर और श्रद्धाकी दृष्टिसे देखते थे। अपने दीवानमें कई स्थलोंपर उस्तादका मुक्त कठसे गुणगान किया है--

मस्ते-मीना हूँ, पिया है मैंने,
जाम 'अमीर' अहमद मीनाई का॥

जब कि वे आसमाने-शायरीपै चमक रहे थे, और शायरीका बहुत अच्छा अभ्यास हो गया था, तब भी उस्तादको बिना दिखाये न कही कलाम पढ़ते थे और न छपने भेजते थे। उस्तादके होते हुए कलाम न दिखायें, यह बे-अदबी रियाजसे मुमकिन ही नही थी। और यही कारण था कि उस्ताद भी उनका कलाम बहुत ध्यानपूर्वक मनसे संशोधन करते थे; और उन्हें बहुत अधिक स्नेह करते थे[1]।

उस्तादकी मृत्युसे रियाजको इतना सदमा पहुंचा कि आपने आम मुशायरोंमे ग़जल पढ़नेकी क़सम खा ली, और मृत्यु पर्यंत इस कसमको निभाया।

महाराजा महमूदाबादने एक मर्तबा कहा--"रियाज़! इस वक़्त 'अमीर' अगर ज़िन्दा होते तो तुम पर फख्र (अभिमान) करते।"

रियाजने अर्ज़ की--"ऐसा न फ़र्माइये, वोह उस्ताद थे।"

महाराजा यह सुनकर भी अपनी रायपर क़ायम रहे तो रियाज़ने अपना यह शेर--

---

[1]रियाज़का अमीर मीनाई कितना ख़याल रखते थे, उनकी कैसी-कैसी ज़िदोंको पूरा करते थे, यह शेरो-सुखन प्रथम भाग में अमीर मीनाईके परिचयमे दिया जा चुका है।

नसीम आई है शमये-मज़ार गुल करने।
वोह उसके आनेसे पहले ही जल बुझी होगी॥

सुनाकर कहा—"उस्तादने सिर्फ़ एक लफ़्ज़ बढाकर ज़मीनको आस्मान कर दिया"—

नसीम अब आई है, शमये-मज़ार गुल करने।
वोह उसके आनेसे पहले ही जल बुझी होगी॥[1]

'रियाज़' केवल अपने उस्तादके ही भक्त न थे, उनके परिवारसे भी आत्मीयताका संबंध रखते थे। 'अमीर' मीनाईके पुत्र 'अख़्तर' मीनाई लिखते हैं—"हम लोगोंसे उनका जो ताल्लुक़ था, वोह अज़ीज़ोंसे बढ़कर हक़ीक़ी भाइयोंका-सा था और अब तो हक़ीक़ी भाइयोंमें भी ऐसी मुहब्बत कम होती है। उनकी रहलत (मृत्यु) से मुहब्बत और ख़ुलूसका एक मुजस्सिम पैकर (स्नेह-सभ्यताका मूर्तमान रूप) उठ गया।"[2]

'रियाज़' नम्र, मिलनसार, ख़ुशमिज़ाज शायर थे। तबीयत रंगीन पाई थी। फ़र्माया है—

वाह क्या रंग है क्या ख़ूब तबीयत है 'रियाज़'!
हो ज़मीं कोई तुम्हें . फूलते-फलते देखा॥

मुश्किल-से-मुश्किल ज़मीनमें कई-कई ग़ज़ल कहते थे। 'अख़्तर' मीनाई आँखों देखी घटना बयान करते हुए लिखते हैं—"अक्सर ऐसा हुआ है कि उनको एक ही तरहमें कई-कई ग़ज़लें कहनी पड़ीं। एक ग़ज़ल कही, जिसने उसकी तारीफ़ की उसको देदी। अपने लिए दूसरी कही, वह भी किसीने माँग ली। लेकिन क्या मजाल कि उनके तेवरपर ज़रा भी मैल आया हो। हमेशा यही कहकर टाल दिया कि "ऊँह, क्या है? और कह लेंगे।"[3]

---

[1]मयख़ानये-रियाज़ पृ० ४१; [2]रियाज़े रिज़वाँ पेशे-लफ़्ज़ पृ० ५; [3]रियाज़े-रिज़वाँ, पेशे-लफ़्ज़ पृ० ५।

'रियाज़' पर शबाबका रंग हमेशा छाया रहा। बुढ़ापा भी शबाबकी बातें करते गुज़रा और ८१ वर्ष की आयुमें मरते समयतक वे रौनक़े महफ़िल बने रहे।

वही शबाबकी बातें, वही शबाबका रंग।
तुझे 'रियाज़' बुढ़ापेमें भी जवाँ देखा॥

अल्लामा नियाज़ फ़तहपुरी फ़र्माते है—"रियाज़को मैंने उस ज़मानेमें देखा, जब वोह ज़ोफ़-ओ-कहूलत (वृद्धावस्था और दुर्बलता) के दौरसे गुज़र रहे थे। बावजूद इसके कि ज़माना मुआफ़िक़ न था, हालातने सख़्त दिलगीर बना रखा था, हुजूमे अफ़कार (चिन्ताओंके समूह) ने चारों तरफ़से घेर लिया था, लेकिन 'रियाज़' बावजूद—सरापा ग़मोअलम (दुःख-व्यथासे ओत-प्रोत) होनेके दूसरोंके लिए यक्सर बहारे-शगुफ़्तगी (खिले हुए उद्यान) थे। आप ख़्वाह कितने ही मग़मूम-ओ-मलूल (चिंतित दुःखी) क्यों न हों, लेकिन यह मुमकिन नही कि 'रियाज़' आपको मिल जायें, और थोड़ी देरके लिए आप किसी और आलम (दुनिया) में न पहुँच जायें। उनकी दिलकश-ओ-दिलनशी (मनोरंजक एवं हृदयस्पर्शी) गुफ़्तगू, उनका अन्दाज़े-बयान, लतीफ़ बज़ला संजी (कोमल हास्य) और सबसे बढ़कर उनका ख़लूस (सभ्य-स्नेह-व्यवहार)—यह मालूम होता था कि इन्सान किसी ऐसी फ़िज़ा (वातावरण) में पहुँच गया है, जहाँ फ़िरदौस (स्वर्ग) की हवा है, कौसर-ओ-सबीलकी रवानी (जन्नतमें बहनेवाली शराबकी नहरोंका प्रवाह) है। बच्चोंके लिए उनका वजूद गहवारा-ए-इस्तराहत (सुख-चैनका पालना) जवानोंके लिए उनकी हस्ती दास्ताने-हुस्नो-इश्क़ और ज़ईफों (वृद्धों) के लिए उनकी ज़ात एक बिरादराना आग़ोश थी। यह मुमकिन नहीं कि कोई शख़्स रियाज़से मिले, और अपने ज़ोक़ (शौक़) को उनके पाससे ना-आसूदा वापिस लाये"[१]

---

[१]रियाज़े-रिज़वाँ, ऐतराफ़ात पृ० ४२।

अपनी इस ज़िंदा दिलीके बारेमें स्वयं ही कहा है—

जिस अंजुमनमें बैठ गया रौनक़ आ गई।
कुछ आदमी 'रियाज़' अजब दिल्लगीका था॥

आपकी ज़िंदादिलीके दो नमूने मुलाहिज़ा हों—

१—दिल्ली दरबारके अवसरपर अपने एक दोस्त निज़ामके साथ घूमते-फिरते रियाज़ एक रईससे भी मिलने चले गये। अब आगेकी कहानी स्वयं रियाज साहबकी ज़बानी सुनिये—"दिनमें सिवा नाश्तेके कुछ खानेका इत्तफ़ाक़ नहीं हुआ था। मिलकर जल्द वापिस होनेका क़स्द था। ८ बजे शब (रात्रि) को वापिसीकी इजाज़त चाही, मगर फ़र्शपर दस्तरख़्वान बिछ चुका था। पहले मुझसे भी खानेका इसरार किया गया, मगर मैंने मआज़ुरत की (नम्रतापूर्वक इन्कार कर दिया)। जब निज़ामसे कहा गया तो वे बेतकल्लुफ़ दस्तरख़्वानपर नज़र आये (भोजनपर डट गये)। मेरी तरफ़ मुड़कर भी न देखा कि मैं इशारेसे कुछ काम लेता। मेरे लिए सब्रके सिवा चारा क्या था। खानेके साथ सुर्ख़-सब्ज़ मुख़्तलिफ़ (भिन्न-भिन्न) रंगकी मदरासी शीरनी (मिठाइयाँ) भी थी। निज़ामने इसके लिए भी इशारा न किया। दस्तरख़्वान ख़त्म हुआ तो ख़्वाबगाह (शयनागार) के अन्दर मेज़ोंकी तरफ तश्तरियाँ जाती नज़र पड़ीं। कुछ देरके बाद मैंने इजाज़त चाही। महमानवाज़ने फ़र्माया—"शहर बहुत दूर है, रात ज़्यादा हो गई है, वापिस नहीं जा सकते।" मैं कुछ कहने भी न पाया था कि निज़ामने मंज़ूर कर लिया। ख़्वाबगाहमें सामाने इस्तराहत (शयनागारमें आरामदेह बिछौना) हो गया। सब हज़रात आराम फ़र्माने लगे, मैं करवटें बदलने लगा। रोशनी कम कर दी गई थी। मुझे कुछ सहारा था तो रंगीन शीरनीकी तश्तरियोंका। जब हर तरफ़से नफ़ीरेख़्वाब (खर्राटे) बुलन्द हुई, मैं उठा और दबे पाँव मेज़के क़रीब पहुँचकर हाथ बढ़ाया। डलीका महसूस होना था कि वह मुँहके अन्दर पहुँच गई। मैं चाहता यह था कि ज़बानपर पहुँचने-से पहले हलकमें उतर जाय। मगर वोह कम्बख़्त साँपके मुँहकी छछून्दर

बन गई। न उगलनेकी न निगलनेकी। यह रंगीन शीरनीकी डली न थी, साबुनकी बट्टी थी। मेरी मुसीबतका पूरा लुत्फ़ उठाना हो तो कुछ देरके लिए साबुनकी टिकिया मुँहमें रखकर मुझे ममनून (आभारी) कीजिये। रूमालसे साफ़ होकर वह चीज़ वहीं गई, जहाँसे उठाई गई थी। पानीकी तलाशमें किसीकी आँख खुल जानेका अन्देशा था। रूमालकी कारफ़रमाई मुँहके अन्दर भी रही। हम इस आसानीसे पलंगतक न पहुँच सके, जिस तरह वह चीज़ मुँहतक पहुँची थी। अब साबुन अपनी जगहपर था, मगर उसकी लज्ज़त ज़बानपर। सुबह चाय और बिस्कुट सामने आये। मैंने दो-चार घूंट पीकर बिस्कुट उठाकर इतने ज़्यादा पियालीमें डाले कि मह-माँनवाज़की मेरी तरफ़ तवज्जह हो गई। उन्होंने दूसरी पियाली बढ़ाकर कहा—"अब बिस्कुट इसमें डाले जाएँ।" निज़ामको हंसी आ गई जो मायने-खेज़ थी। ब-इस्तफ़सार उन्होंने कहा—आप तमाम दिन भूखे रहे थे, फिर भी शबको खानेमें तकल्लुफ़ किया, वापिसीका भी सहारा टूटा। अब चायमें तकल्लुफ़ रुख़सत हो गया।" मै दिलमें ख़ुश था कि ख़ुदाने साबुनके वाक़येका परदा रख लिया।"[1]

२—ख़्वाजा फ़रीदुद्दीन उर्फ़ फ़द्दन साहब 'रियाज़' के बचपनके दोस्त थे। १०-१५ वर्षके बाद रियाज़ लखनऊ आये तो उनसे मिलने गये। इतनी मुद्दतके बाद सूरतमें फ़र्क़ हो जाता है। कुछ इस वजहसे और कुछ काममें मसरूफ़ होनेकी वजहसे ख़्वाजा साहबने 'रियाज़' को नहीं पहचाना तो फ़ौरन उन्हें एक शरारत सूझी। अदबसे सलाम करके दूर एक मूँढ़ेपर बैठ गये। मग़रिबका वक़्त था। काम ज़ियादा था, इसलिए ख़्वाजा साहब परेशान थे। उनकी तरफ़ मुख़ातिब न हो सके। इतना वक़्त रियाज़को मिला तो हज़रतने पूरी स्कीम तैयार कर ली। अब जो ख़्वाजा साहब मुख़ातिब हुए और पूछा आप कहाँसे तशरीफ़ लाये हैं तो हज़रत रियाज़ने कहा—

---

[1]मयख़ानये-रियाज़ पृ० १२१-१२३।

"हुज़ूर! मैं शेख़ असग़रअलीके कारख़ानेसे आया हूँ, आपके यहाँ कुछ इत्र और तेल आया था उसके १४।।) बाक़ी हैं।"

ख़्वाजा साहब हिसाब-किताब और लेन-देनके साफ़ आदमी थे। सुनकर बरहम (कुपित) हो गये। 'रियाज़' उनकी इस आदतको अच्छी तरह जानते थे।

ख़्वाजा बोले—"कैसा रुपया? मैंने आजतक किसी जगहसे कोई चीज़ क़र्ज़ नहीं मँगाई है।"

रियाज़—"मैं क्या जानूं शेख़ साहब झूठ कहते होंगे।" शेख़ असग़र अली भी ख़्वाजाके गहरे दोस्त थे। उनकी शानमें यह कलमा न सुन सके। पूछा—"यह तो बताइये आप हैं कौन?"

रियाज़—"एक दफ़ा तो अर्ज़ कर चुका हूँ, कहिये तो काबेकी तरफ़ हाथ उठाकर कहूँ। क़ुरान पाकपर हाथ रखके कहूँ।"

यह जवाब सुनकर ख़्वाजा साहब आग हो गये। कहा—"तुम बड़े गुस्ताख़ आदमी मालूम होते हो।"

रियाज़—"बजा है, चीज़ लेके रुपया न दें और जब तक़ाज़ा करने आदमी आये, तो उसको गुस्ताख़ बतायें।"

यह तू-तू मैं-मैं हो ही रही थी कि हादीअलीख़ाँ आ गये। यह भी इन दोनोंके बचपनके दोस्त थे। उन्होंने रियाज़को पहचान लिया और बोल उठे—

"अरे फ़द्दन! तूने नही पहचाना।" अब जो ख़्वाजाने ग़ौरसे देखा तो दौड़कर लिपट गये[1]।

रियाज़की क़लमी तसवीर तस्नीम मीनाई यूँ खींचते हैं—ख़ूब घनी लंबी दाढ़ी, दराज़ क़ामत (ऊँचा शरीर) बड़ी-बड़ी कटीली आँखें, होंटोंपर मुस्तक़िल तबस्सुम (स्थाई मुसकराहट) लबोलहजेमें चाशनी, लफ़्ज़ोंमें

---

[1]मयख़ानये रियाज़ पृ० १३३-१३४।

दिलकशी और शगुफ़्तगी, ख़यालात पाकीज़ा और सुथरे, बयानमें हलका-हलका-सा लतीफ़ मज़ाह (मज़ाक़) और तंज़का (मीठी चुटकियाँ लेनेका) पहलू।"

नमाज़ पाँचो वक़्त पढ़ते थे, रमज़ानमें तीसों रोज़े रखते थे। मृत्यु पर्यंत ८१ वर्षकी आयुतक बग़ैर चश्मेके लिख लेते थे और चाँदकी रोशनीमें पढ लेते थे।

२० जुलाई १६३४ ई० में ८१ वर्षकी आयुमें ख़ैराबादमें समाधि पाई।

ऐसे चुलबुले, ज़िन्दादिल, ख़ुश-मज़ाक़ और रंगीन मिजाजकी शायरीका रंग कुदरती तौरपर लखनवी होना था। एक तो वे स्वभावतः रंगीन मिजाज थे, दूसरे जब उन्होंने शायरीकी चौखटपर पाँव रखा, तब लखनवी शायरी पूरे शबाबपर थी। तीसरे उनके उस्ताद 'अमीर' मीनाई तत्कालीन लखनवी रंगके[1] एकमात्र प्रतिनिधि समझे जाते थे। अतः 'रियाज़' का इस रंगमें शराबोर होना लाज़िमी था। उन्ही दिनों मिर्ज़ा 'दाग़'की शायरीका आफ़ताब पूरी आब-ओ-ताबके साथ चमक रहा था। भारतके इस सिरेसे उस सिरेतक उनके नामकी धूम थी। हर तवायफ़की ज़बानपर,

---

[1]लखनवी शायरी क्या है, यह 'शेर-ओ-सुखन' प्रथम भाग में पृ० २४८ से २७२ तक विस्तारके साथ लिखा जा चुका है। इसके अतिरिक्त भी नासिख़, आतिश, जुरअत, इन्शा, मुसहफ़ी, रंगीन आदि शायरोंके परिचय-कलाममें प्रथमभागमें यत्र-तत्र उल्लेख हुआ है। प्रस्तुत पुस्तकमें भी संक्षेप रूपमें सिंहावलोकनमें उल्लेख किया गया है। अत्युक्ति, ज्ञानानापन, कृत्रिमता, तकल्लुफ़, उपमाओं, उदाहरणोंकी भरमार, शब्दाडंबर, ज़ाहिरा चमक-दमक, स्त्रियोंके लिबास, ज़ेवर, शृंगार आदिका अश्लील वर्णन, ऐसे भाव जिनसे मनमें विकार उत्पन्न हों, शब्दोंका रख-रखाव, यही उस युगकी लखनवी शायरी थी।

हर महफ़िलमें और हर गली कूचेमें 'दाग़'की ग़ज़लें थिरक रही थीं। कहनेको मिर्ज़ा दाग़ देहलवी शायर थे, मगर अपनी शोख़ बयानी, चुटीले अन्दाज़ और रंगीन मिज़ाजीकी वजहसे आम लोगोंके महबूब बने हुए थे। क्या देहलवी, क्या लखनवी, क्या हैदराबादी—सभी उनके शोख़याना रंगको अपना रहे थे।

जिस तरह दीपक बुझनेसे पूर्व एक बारगी प्रज्वलित हो उठता है, उसी तरह मिटनेसे पूर्व लखनवी शायरी भी, १९ वीं शताब्दीके अंतिम वर्षोंमें ख़ूब चमक रही थी। लेकिन देहलवी शायरीकी आबोताबके समक्ष इसकी चमक मान्द पड़ने लगी थी। उस युगके सभी लखनवी शायरोंने यह महसूस किया कि अब लखनवी शायरीका बाज़ार तेज़ीसे मन्दा होता जा रहा है, अतः उन्होंने धीरे-धीरे अपने लबो-लहजेको बदलना प्रारंभ कर दिया और 'जलाल'ने तो यकबारगी ही अपने दामनसे लखनवी रंग पूँछ दिया। अ़सातज़ाए लखनऊ लखनवी रंगसे तो बेज़ार होने लगे, मगर वे मीर, ग़ालिब, मोमिनके वास्तविक देहलवी रंगको न अपनाकर मिर्ज़ा दाग़के शोखयाना धारेमें पड़ गये। मिर्ज़ा दाग़की शायरीमें यूँ तो देहलवी शायरीके कितने ही गुण विद्यमान थे। मगर उनका इश्क़ वही लखनवी-जैसा बाज़ारी इश्क़ था, और इंशा-जुरअ़त-जैसी मुआमले बन्दी। लेकिन यह रंग उन दिनों इतना मक़बूल हुआ कि 'अमीर' मीनाई-जैसा संजीदा और बाइख़लाक़ उस्ताद दाग़के रंगीन हौज़में कूद पड़ा। फिर 'रियाज़'का तो कहना ही क्या? वे तो क़ुदरतकी तरफ़से चुलबुली और रिन्दाना तबियत ही लेकर आये थे।

उर्दू-शायरीमें फ़ारसी-शायरीका अनुकरण हुआ है। अतः उर्दूमें भी फ़ारसीके समान शराबका रंग घुला-मिला है। कोई भी शायर ऐसा नहीं गुज़रा, जिसने शराबपर न कहा हो। चाहे उसने उम्र भर शराब छूई भी न हो, और समस्त जीवन संयमी एवं धार्मिक रहा हो। मगर कूचये-शायरीमें पाँव रखनेके बाद मयख़ानेकी ज़ियारतको न जाय और

पायेसाक़ीपर सजदा न करे यह कैसे हो सकता है? क्योंकि उर्दू-फ़ारसी-शायरीका निर्माण ही उन तन्तुओंसे हुआ है, जिससे कि साक़ी-ओ-मयख़ाना बनाये गये हैं। यहाँतक कि पवित्र-से-पवित्र विचार, आध्यात्मिक एवं दार्शनिक बातें भी शराबके रंगमें ही कही जायेंगी।
बक़ौल ग़ालिब—

हर चन्द हो मुशाहद-ए-हक़्क़की गुफ़्तगू।
बनती नहीं है बादा-ओ-साग़र कहे बग़ैर॥

यूँ तो हर उर्दू-शायरने शराबपर लिखा है, मगर उर्दू शायरीके इस ४०० वर्षके इतिहासमें और सैकड़ों ख्यातिप्राप्त शायरोंमें—१ ग़ालिब, २ दाग़, ३ रियाज़, ४ जिगर, और ५ जोशने जितने अधिक और जिस ख़ूबीसे शराबके मज़मून नज़्म किये है, शेष समस्त शायरोंके दीवान मिलाकर भी उतना कलाम पेश नहीं कर सकते।

उक्त पाँचों शायरोंमें 'ग़ालिब' खुले-आम पीते थे। 'दाग़'ने इस काफ़िर-को कभी मुँह न लगाया। 'जिगर' कभी पीते थे, मगर तौबा किये उन्हें अरसा हो गया है। 'जोश' अलबत्ता शौक़ फ़र्माते हैं। रियाज़ने कभी एक बूँदतक ज़बानपर नहीं रखी। फ़र्माते हैं—

गुनाह कोई न करते शराब हो पीते।
यह क्या किया कि गुनह तो किये, शराब न पी॥

लेकिन आगरेके एक शायरका कहना है कि—" 'रियाज़'ने मेरे सामने पी है और मेरे साथ पी है।"[1] केवल इस शहादतके अतिरिक्त और जितने भी रियाज़के इष्ट-मित्र और साथी हैं, वे सब एकमत होकर कहते है कि रियाज़ने ता-उम्र शराब नहीं पी। नियाज़ फ़तहपुरी लिखते हैं—

"इसका इल्म बहुत कम लोगोंको होगा कि सारी उम्र ख़ुमरियात

---

[1]नक़्दो-नज़र पृ० २१५।

(शराब) की शायरीमें मुब्तिला रहकर ज़ौक़े-बादा (शराबके शौक़) से ना आश्ना (अनभिज्ञ) रहने वाला शायर ज़िंदगीकी तमाम शगुफ़्ता सामानियों (भोगविलासके समस्त साधनों) के साथ हुस्नो-शबाबके हुज़्ममें बहतरीन ऐयाम गुज़ारते हुए जादा-ए-इख़लाक़ (चारित्रके मार्ग) से कभी एक लमहाके लिए न हटनेवाला शख़्स जिस तरह एक इन्सान पैदा हुआ था, बदस्तूर उसीतरह इन्सान रहा। उस ज़मानेमें भी जबकि गुनाहसे पहले उज्रे-गुनाह पैदा कर लिया जाता है।"[१] नवाब फ़साहत जंग 'जलील' दीवाने–रियाज़की तारीख़ कहते हुए फ़र्माते हैं––

मस्तेमय कर दिया जहाँ भरको।
ख़ुद लगाया न मुंहसे साग़रको॥

'अमीर' मीनाईके सुपुत्र मुंशी लतीफ़ अहमद 'अख़्तर' मीनाई लिखते हैं––

"हक़ीकत यह है कि वोह बड़े पाकनफ़्स और सच्चे मुसलमान थे। उनका रिन्दाना रंग उनकी शायरी ही की हद तक था। जो रंग क़ाल (बयाने-कलाम) में देखा, वोह उनका हाल (वास्तविक) न था।"[२]

मौ० सैयद सुभान अल्लाह साहब प्रस्तावना लिखते हुए फ़र्माते हैं––

"हर जाननेवाला और पूरा गोरखपुर और ख़ैराबाद क़ुरान लेकर दिन और रातकी सुहबतोंकी बाबत क़सम खानेको तैयार है कि रियाज़ने कभी एक बूँद भी शराब लबतक न आने दी"।[३]

एक बूंद कभी लबतक न आने दी,मगर तमाम उम्र शराबका गुण-गान करते रहे। किसीको यह आभास भी नहीं होने दिया कि रियाज़ परहेज़गार हैं। आभास हो जाने दें तो फिर रिन्दाना मस्ती ही कहाँ रही। जीवन भर बेपियें झूमते रहे। बक़ौल चकबस्त––

---

[१]रियाज़े-रिजवाँ ऐतराफ़ात पृ० ४१ । [२]रियाज़े-रिज़वाँ पेशेलफ़्ज़ पृ० ५-६। [३]रियाज़े-रिज़वाँ मुक़दमा पृ० ३।

बेपिये नशा रहे जिसमें, जवानी वोह है

लेकिन रियाज़ तो बुढ़ापेमें भी सरशार रहे। मुसीबतों, चिन्ताओं और बुढ़ापेकी निर्बलताओंका बोझ ढोते रहे। मगर फूलोंकी तरह मुसकराते रहे, ता-उम्र मादक बने रहे। शराबपर इस ख़ूबीसे लिखा कि कोई अनुमान ही नहीं कर सकता कि बग़ैर पिये भी इस तरहके अशआर निकल सकते हैं, और स्वयं कभी बताकर नहीं दिया कि शराब नहीं पीते हैं। यहाँतक कि उनके अंतरंग मित्र तक उनकी परहेज़गारीकी गंध नहीं पा सके।

पण्डित रतननाथ 'सरशार' और 'रियाज़' गुरु-भाई होनेके अतिरिक्त परस्पर घनिष्ट मित्र थे। लेकिन 'सरशार' जैसे ख्यातिप्राप्त सुरासेवी मित्रको भी यह मालूम नहीं था कि रियाज़ केवल दुनियाये-शायरीमें ही रिन्द महशूर हैं, पीते-वीते नहीं हैं। एक रोज़ 'सरशार' ने रियाज़को दावत-पर बुलाया, और उनके सामने शराब भी रखी गई। शराबको देखकर रियाज़के होश उड़ गये। मगर ज़ाहिरमें झूमने लगे और यकायक 'सरशार' से 'दो मिनट' कहकर कुछ इस अन्दाज़से उठे, गोया अभी वापिस आये जाते हैं, और कोई बहुत ज़रूरी कामके लिए जाना पड़ रहा है। मगर रियाज़ आनेको तो गये नहीं थे।

संयोगकी बात उक्त घटनाके बीस वर्ष बाद हैदराबादमें 'सरशार' और रियाज़की मुलाक़ात हुई। खानेपर वहाँ भी शराब मौज़ूद थी। रियाज़ने यह कहते हुए सहर्ष हाथ बढ़ाया—"जिगरकी ख़राबीकी वजहसे डाक्टरोंने एक सालके लिए क़तई मुमानियत कर दी है। मगर देखकर रहा नहीं जाता।" जिगर-ख़राबीकी बात सुनी तो लोगोंने हाथसे प्याला छीन लिया। ख़ूब—

रिन्द-के-रिन्द रहे हाथसे जन्नत न गई

किसीने पूछा भी कि —"हज़रत! आप पीते भी हैं या लिखते ही लिखते हैं"। तो देखिये क्या दुमायनी शेर कहकर उलझनोंमें डाला है—

शेरे तर मेरे छलकते हुए साग़र हैं 'रियाज़' !
फिर भी सब पूछते हैं—"आपने पी है कि नहीं"।

उक्त शेरसे इक़रार और इनकारकी दोनों ध्वनि निकलती हैं। एक तो यह कि जब मेरे शेरोंमें भी शराब भरी हुई है तो फिर पी क्यों न होगी? दूसरी यह कि मेरे छलकते हुए साग़र तो बस मेरे शेरतर हैं, और किसी साग़रको मैंने हाथ नहीं लगाया।

रियाज़का दीवान १९३७ में प्रकाशित 'रियाज़े-रिज़वाँ' हमारे सामने है। इसमें ८२८ पृष्ठ हैं। जिनमें १०४ में विषय-सूची और प्रस्तावनाएँ हैं। ४८० पृष्ठोंमें ६०० ग़ज़लें हैं, जिनमें ८१६० अशआर हैं। शेष २४४ पृष्ठोंमें क़िते, सहरे, क़सीदे, मसनवी, नात, नौहा वग़ैरह हैं। रियाज़की इन छः सो ग़ज़लोंमें एक भी ऐसी ग़ज़ल नहीं, जिसमें साग़रोमीना न छलकते हों। ८१६० अशआ़रमें १३६६ अशआ़र इसी विषयके हैं। आइये सबसे पहले मैख़ानये-रियाज़की ज़ियारत कर लें—

शरमाओ 'रियाज़' मैकशीसे।
लम्बी दाढ़ी है हाथ भरकी॥

क्या-क्या ख़ुशामदें हैं कि पीलूं बहारमें।
बादलके टुकड़े सरपै मेरे छाये जाते हैं॥

जोशेमय और सब्ज़ाज़ारोंमें घटा छाई हुई।
बात ऐसी है कि तौबा भी है ललचाई हुई॥

इक हमीं हैं कि बहक जाते हैं तौबाकी तरफ़।
वरना रिन्दोंमें बुरा चाल-चलन किसका है?

मुझको भी इन्तज़ार था, अब्र आये तो पिऊँ।
साक़ी! अगर यह सच है कि 'बादल उ ठा' तो ला।

मसजिदमें मरनेकी अपेक्षा तो मैखानेमें मरना कहीं अच्छा—

रहने देगा न दमे-नज़अ कोई हल्क़को ख़ुश्क।
मैकदेमें हमें इतना तो सहारा होगा॥
आबे-ज़मज़मके सिवा कुछ नहीं काबेमें 'रियाज़'!
मैकदा तुम जिसे समझे हो मदीना होगा॥

बज़मे-महशर गर बनें साक़ीकी बज़्म।
मैं न उठ्ठूंगा अगर पीकर गिरा॥

बनाई क्या बुरी गत मैकदेमें बादानोशोंने?
'रियाज़' आये थे कल जामा पहनकर पारसाईका॥

[कर्तव्यशील और अपने धुनके मस्त व्यक्तियोंके समूहमें जब कोई ढोंगी पहुँच जाता है, तब उसकी दुर्गति होना स्वाभाविक है]

दस्ते शफ़क़त इस तरह इक रिन्दने फेरा 'रियाज़'!
बैठकर-यादे ख़ुदामें झूमना जाता रहा॥

[जब किसी पहुँचे हुए महापुरुषका वरदहस्त सरपर हो जाता है, तब यही स्थिति हो जाती है]

जब लोगोंमें दोनोंकी बुज़ुर्गी है मुसल्लिम।
क्या शेख़-हरम पीरेमुग़ां हो नहीं सकता?

नमाज़े-ईद हुई मैकदेमें धूमसे आज।
'रियाज़'! बादाकशोंने हमें इमाम किया॥

जाते थे सूयेमैकदा निकले हरममें हम।
क्या जाने आज राहमें क्या फेर हो गया?

सस्ते छूटे जो सरेराह अमामा[1] उतरा।
सरसे उन बादाफ़रोशोंका[2] तक़ाज़ा उतरा॥

दुनिया से अलग हमने मैख़ानेका दर देखा।
मैख़ानेका दर देखा, अल्लाहका घर देखा॥
दोनोंके मज़े लूटे, दोनोंका असर देखा।
अल्लाहका घर देखा, मैख़ानेका दर देखा॥
काबेमें नज़र आये जो सुबह अज़ाँ देते।
मैख़ानेमें रातोंको उनका भी गुज़र देखा॥
कुछ काम नहीं मयसे गो इश्क़ है इस शयसे।
हैं रिन्द 'रियाज़' ऐसे दामन भी न तर देखा॥

क़यामतमें भी ऐ साक़ी उड़ाये काग बोतलके।
तेरे रिन्दोंने क्या मैदान मारा है, क़यामतका॥

यह अपनी वज़अ और यह दुश्नामे-मयफ़रोश।
सुनकर जो पी गये यह मज़ा मुफ़लिसीका था॥
जा-जाके बज़मेवाज़में सौ बार हमने पी।
चोरी किसीकी थी न हमें डर किसीका था॥
अहले-हरम[3] भी आके हुए थे शरीके-दौर।
कुछ और रंग आज मेरी मयकशीका था॥

हम हैं गदाये-मैकदा[4] हमको कमी नहीं।
सब कुछ हमारे घर है ख़ुदाका दिया हुआ॥

तौबाकी जान ख़ुश्क है बिजलीके ख़ौफ़से।
क़िबलेसे आज अब्रेकरम है उठा हुआ॥

---

[1]पगड़ी; [2]शराब बेचनेवालोंका; [3]मसजिदवाले; [4]मधुशाला-भिक्षुक।

तौबासे डराया मुझे साक़ीने यह कहकर—
"तौबा-शिकनीके लिए इसरार न होगा"॥

हम गिरे जब लड़खड़ाकर बज़्ममें।
सर सुबूपर हाथ साग़रपर पड़ा॥

हश्रमें मैकदेवालो ! जो ख़ुदाने चाहा।
यही जलसा, यही साग़र, यही मीना होगा॥

उम्मीद है कि शबको[1] भी हो शग़ले-मय[2] 'रियाज़'।
मुँह सुबह होते देख लिया रोज़ादारका[3]॥

वोह हवा जन्नतकी, वोह अब्रेकरम छाया हुआ।
मैकदा जन्नत है, जन्नतमें जो पी तो क्या हुआ ?

रहमतको यह अदा मेरी शायद पसन्द आये—
डर-डरके काँप-काँपके पीना शराबका॥

चले न काम, मएख़ुम[4] अगर न साथ चले।
हरमकी[5] राहमें कोसों कुआँ नहीं मिलता॥
'रियाज़' को हरम-ओ-मैकदा बराबर हैं।
पिये शराब वोह शबको कहाँ नहीं मिलता ?

राहसे काबेके हमने रेज़ये-मीना[6] चुने।
क्या अजब इसके सबब हमको मिले हजका सवाब[7]॥
ईदके दिन मैकदेमें है कोई ऐसा 'रियाज़' !
एक चुल्लू देके जो ले तीस रोज़ोंका सवाब॥

---

[1]रात्रिको; [2]सुरापान; [3]रोज़ा रखनेवालेका; [4]शराबका घड़ा; [5]काबेके मार्गमें; [6]सुरापात्रके टुकड़े; [7]पुण्य।

आबाद करें बादाकश अल्लाहका घर आज।
दिन जुम्मेका है बन्द हैं मैख़ानेके दर आज॥
मैख़ाना हमारा कोई मसजिद तो नहीं है।
तसबीह[1] लिये कौन बुज़ुर्ग आये इधर आज?

जब पी लगाके मुँह दमेइफ़्तार[2] रिन्दने।
बोतलके मुँहकी आई फ़रिश्तोंको बू पसन्द॥

दिनमें चर्चे ख़ुल्दके[3] शबमें मए-कौसरके ख़्वाब[4]।
हम हरममें[5] आ रहे मैख़ाना वीराँ देखकर॥

जायें हरममें तौबा करें होके पाक-साफ़।
लत-पत हैं पहले तो सरे-ज़मजम[6] नहायें हम॥

मेरा यही ख़याल है, गो मैंने पी नहीं।
कोई हसीं पिलाये तो यह शय बुरी नहीं॥

किसीसे हाय साक़ीका यह कहना--
"लहू मेरा पिये जो बेपिये जाय"॥

जिन्हें लोग कहते हैं दुज़्देमै[7] वह ख़ुदा परस्त 'रियाज़' हैं।
यह सुना है कल कि जनाब ही पसेख़ुम[8] थे महवे-नमाज़में॥

बड़े मौक़ेसे थी हर चन्द वोह जन्नतके बाहर थी।
हरमसे हटके रस्तेमें मिली मयकी दुकाँ मुझको॥

---

[1]सुमरन, माला; [2]रोज़ा खोलते समय; [3]जन्नतके; [4]स्वर्गस्थ सुरानदीका स्वप्न; [5]मस्जिदमें; [6]काबेके पवित्र कुएंपर; [7]शराबका चोर; [8]शराबके घड़ेकी ओटमें।

यह साक़ीने साग़रमें क्या चीज़ देदी?
कि तौबा हुई पानी-पानी हमारी॥

यह क्या मज़ाक़ फ़रिश्तोंको आज सूझा है?
हुजूमे-हश्रमें ले आये हैं पिलाके मुझे!!

नुस्ख़ा बियाज़ेसाक़िये-कौसरसे[1] मिल गया।
घर बैठे हम तो अब मये-कौसर बनायेंगे॥

सदसाला दौरे-चर्ख़ था साग़रका एक दौर।
निकले जो मैकदेसे तो दुनिया बदल गई॥

ख़ुदाके हाथ है बिकना न बिकना मयका ऐ साक़ी!
बराबर मसजिदे-जामाके हमने अब दुकाँ रखदी॥
बिना है एक ही दोनोंकी काबा हो कि बुतख़ाना।
उठाकर ख़िश्तेख़ुम[2] हमने यहाँ रख दी वहाँ रख दी॥

बारे-इसियाँके[3] लिए यारब! फ़रिश्ते भेज दे।
हम लदे आये हैं अपने शीश-ओ-साग़रसे आप॥
कातिबे-ऐमाल[4] यह है आपके हाथोंका खेल।
बोझ उतरवा लीजिये महशरमें मेरे सरसे आप॥

नीची दाढ़ीने आबरू रख ली।
क़र्ज़ पी आये इक दुकानसे आज॥

टपकादे बूंद भर कोई मुँहमें 'रियाज़' के।
दम मैकदेमें तोड़ रहा है पड़ा हुआ॥

---

[1]जन्नतमें शराब पिलानेवालेकी डायरीसे; [2]शराब-पात्ररूपी ईंट; [3]पापोंका बोझ ले चलनेके; [4]भाग्य-रेख-लेखक।

होगा जिन्हें तौबाका भरोसा मेरे मालिक !
वोह और ही होंगे यह गुनहगार न होगा ॥

ख़ुम दोशपर,[1] बग़लमें सुराही, बरोज़े-हश्र।
उठना मज़ारसे वोह किसी मै-गुसारका[2] ॥

मक़सूद है कोई न पिये वोह हरीस हूँ।
वाइज़ हुआ मैं, रिन्दे-क़दह-ख़्वार क्या हुआ ?

[मैं ऐसा हरीस (लालची-ईर्ष्यालु) हूँ कि मेरी यह इच्छा है कि मेरे सिवा कोई न पिये। यदि मेरे भी ऐसे अनुदार विचार हैं तो फिर मैं रिन्द क्या हुआ वाइज़ हो गया। क्योंकि इस तरहके ओछे विचार तो इन्हीं लोगोंके होते हैं]

हमें पीने-पिलानेका मज़ा जबतक नहीं आता।
कि बज़्मे-मैंमें कोई पारसा जबतक नहीं आता ॥

आफ़ताबे-हश्र कब चमका 'रियाज़' !
दाग़े-मै दामनसे जब मैं धो चुका ॥

पीकर भी झलक नूरकी मुँहपर नहीं आती।
हम रिन्दोंमें जो साहबे-ईमाँ नहीं होते ॥

[केवल रिन्द (ईश्वरमें लीन) होनेसे ही चेहरेपर तेज नहीं झलक सकता, उसके लिए हृदयका स्वच्छ होना भी आवश्यक है]

अछूते जाम हैं मिन्नतके कुछ अलग रखिये।
किसे पिलायें कोई पारसा नहीं मिलता ॥

---

[1]कन्धेपर; [2]मद्यपका।

'रियाज़'! तौबा करो दिन ख़िज़ाँके आये हैं।
तुम आये पीनेको जाती हुई बहारमें क्या॥

दिल लाख पाक-साफ़ है दामनको क्या करूँ।
जा-जाके मैकदेमें यह धब्बा लगा दिया।

[जीवनमें एक बार भी धब्बा लगा कि फिर छुड़ायेसे नहीं छूटता, इसीलिए काजरकी कोठरीमें जानेको पूर्वज मना कर गये है]

क्या तुझसे मेरे मस्तने माँगा मेरे अल्लाह!
हर मौजें-शराब उठके बनी हाथ दुआका॥

'रियाज़' ख़ाके-दरे मैकदा था जीते जी।
फ़नाके बाद उसे ख़ुल्द-आशियाँ[1] देखा॥

जबतक मिलेगी क़र्ज़ पिये जायेंगे ज़रूर।
हम जानते हैं मुफ़्त है सौदा उधारका॥

[ऋणंकृत्वा सुरापिवेत वालोंपर कितना मीठा व्यंग है]

ख़ुमसे न हो वोह सैर, मैं चुल्लूमें मस्त हूँ।
वह ज़र्फ़ शेख़का है, यह मुझ ख़ाकसारका॥

[संतोषी और लालचीकी तुलना क्या ख़ूब की है]

मुझको है लबे-जामे-शिकस्ता भी महे-ईद[2]।
साक़ी! यह हिलाले-रमज़ाँ हो नहीं सकता॥

---

[1]जन्नतनशीं; [2]ईदका चाँद।

मिलती है दरे-साक़ीए-कौसरसे यह ख़िदमत।
इस तरह कोई पीरे-मुग़ाँ हो नहीं सकता ॥

हरमवालो ! 'रियाज़' आकर हरममें पड़ रहें क्योंकर।
गुज़र उनका कहीं बेजामो-मीना हो नहीं सकता ॥

जवानीमें पीकर नशा हुआ तो फिर जवानी क्या ?

भरे साग़रमें है भरपूर रंग उनकी जवानीका।
ग़ज़ब है बे पिये नशेमें मेरा चूर हो जाना ॥

बुरी क्या थी फ़ाक़ामस्ती, बड़े लुत्फ़से गुज़रती।
लिये कुछ जो मैकी तल्ख़ी ग़मे-रोज़गार होता ॥
मेरे हल्क़से उतरकर मये साफ़ अश्क बनती।
अभी मैं गुनाह करता, अभी अश्कबार होता ॥
तेरे आगे सर उठाता कोई पारसा न साक़ी !
जो 'रियाज़' पारसा भी कहीं बादाख़्वार होता ॥

हम रिन्द समझते हैं उसे अंजुमने-वाज़।
जिस बज़ममें ज़िक्रे-मै-ओ-मीना नहीं होता ॥

कोई मस्ते-मैकदा आगया, मए-बे-ख़ुदी वोह पिला गया।
न सदाये-नाक़ए-दैर उठी न हरमसे शोरे-अज़ाँ उठा ॥
तुझे मै-फ़रोश ख़बर भी है, कि मुक़ाम कौन है क्या है शय ?
यह रहे-हरममें दुकानेमै, तू यहाँसे अपनी दुकाँ उठा ॥*

---

*बाद दिखावत खोल इत तुपक, तीर, तरवार।
सुरमाँ, मीसीके खड़े जहाँ बिसावनहार ॥

—वियोगी हरि

जहाँ हम ख़िश्तेख़ुम रखदें बिनाये काबा पड़ती है।
जहाँ साग़र पटक दें चश्मये-ज़म-ज़म निकलते हैं॥

जिस दिनसे हराम हो गई है।
मै-ख़ुल्दे मुक़ाम हो गई है॥
मर गया हूँ पै तअ़ल्लुक़ है जो मयख़ानेसे।
मेरे हिस्सेकी छलक जाती है पैमानेसे॥
हरम-ओ-दैरमें होती है परस्तिश किसकी?
मय-परस्तो यह कोई नाम है मैख़ानेके॥

उर्दूकी परम्पराके अनुसार 'रियाज़'ने भी शेख़ और वाइज़, ज़ाहिद और नासहकी पगड़ी उछालनेमें कोई कमी नहीं की है। कहीं-कहीं तो मुँह चिढ़ाते-से नज़र आते हैं—

क्या तड़ाकेकी सदा थी सरे-नासेहकी[1] क़सम।
किसी मैकशने सुबू कोई उछाला होगा॥
मए-कौसरमें यह बू-बास कहाँ थी ज़ाहिद!
कुछ नहीं, यह किसी मैकशका पसीना होगा॥

कैसे ये बादाख़्वार हैं सुन-सुनके पी गये।
वाइज़को कुछ मज़ा न किसीने चखा दिया॥

पी-पीके उसने सजदे किये हैं तमाम रात।
अल्लाहरे शग़ल ज़ाहिदे-शब-ज़िन्दादारका॥

इस शेख़े कुहन सालकी, अल्लाहरे बुज़ुर्गी।
जन्नतमें भी जाकर यह जवाँ हो नहीं सकता॥

---

[1]उपदेशकके सिरकी।

हलकी शराब पी जो किसी नाज़नींके साथ।
वाइज़ मैं इस गुनहसे गराँबार क्या हुआ?

किया जो मैक़दे जानेसे मना वाइज़ने।
तो रोज़ उठके यही काम सुबह-ओ-शाम किया॥

संजीदगीसे महफ़िले-साक़ीमें बात की।
नासेह-सा बेवकूफ़ भी आक़िल निकल गया॥

हमतो ख़ुदापरस्त भी थे, बुतपरस्त भी।
हमको 'रियाज़'! शेख़ो-बिरहमनने क्या कहा?

आया जुनूँमें देने वोह नश्तर मुझे 'रियाज़'!
नासहको देखिये कि मेरा चारागर बना॥

महफ़िले-वाज़में वाइज़ न मेरे सर होता।
एवज़े शीशा अगर हाथमें पत्थर होता॥

लगाके धोकेसे मुँह शेख़ फिर न छोड़ सका।
पुकारता ही रहा मैं "अरे शराब-शराब"॥

अम्मामा[1]-ओ-अबा[2]-ओ-क़बा[3] सब हैं रहने-मय।
अब दे कोई उधार तो किस एतबारपर?

दामने-तरने दिया काम कुछ ऐ गर्मिये-हश्र!
ज़ाहिदे-ख़ुश्क भी बैठे हैं गुनहगारके पास॥

मसजिदमें आज हम भी गये थे पिये नमाज़।
देखा सलाम फेरके तो शेख़जी नहीं॥

---

[1]पगड़ी; [2-3]चोग़ा।

पहले मयसे भिगोले रीश[1] सफ़ेद।
देख ऐ शेख़! फिर ख़िज़ाबका रंग॥

देखकर शोख़हसीनोंको बता ऐ नासेह!
गुद-गुदी दिलमें कभी तेरे उठी है कि नहीं?

फ़रिश्तोंमें थी शेख़ साहबकी गिनती।
यह रिन्दोंकी सुहबतमें इन्साँ हुए हैं॥

करते हैं वज्द अब तो सुन-सुनके काबेवाले।
मैंने वोह रूह फूंकी नाक़ूसे-बिरहमनमें[2]॥

शेख़ यह कहता गया पीता गया—
"है बहुत ही बदमज़ा, अच्छी नहीं"।

वाइज़ा! हम गुनह नहीं करते।
हम गुनहगार नाज़ करते हैं॥

जी न माना हज़रते नासहको आते देखकर।
कुछ युंही थोड़ी-सी पीली दिललगीके वास्ते॥

क्यों पड़े हो गोशये-मसजिदमें उठो ज़ाहिदो!
फूटी आँखोंसे ज़रा देखो घटा छाई हुई॥

जिस कामको तू मना करेगा हमें नासह!
हम छोड़के सौ काम वही काम करेंगे॥

आज तो पी दिखाके वाइज़को।
मैं कभी इस क़दर न था गुस्ताख़॥

वोह आ रहा है असा[3] टेकता हुआ वाइज़।
बहा दे इतनी कि साक़ी! कहीं न थाह मिले॥

---

[1]दाढ़ी; [2]पुजारीके शंखमें; [3]लकड़ी।

यह सुनके निस्फ़ शबको[1] दरे-मैकदा[2] खुला।
माँगी है इक बुज़ुर्गे तहज्जुद गुज़ारने[3]॥

ऐ शेख़ तू चुराके पिये जब कभी पिये।
तेरी तरह किसीकी न नीयत ख़राब हो॥

शबको मैख़ानेमें क्यों पहुँचे थे ऐ हज़रते शेख़!
कहिये अच्छी तो कटी क़िबलये हाजातकी रात?

अपने सर मेरे गुनहका बार रहने दीजिये।
शेख़की अच्छी है यह दस्तार रहने दीजिये॥

जनाबे शेख़ने जब पी तो मुँह बनाके कहा—
"मज़ा भी तल्ख़ है, कुछ बू भी ख़ुशगवार नहीं"

उठवाओ मेज़से मै-ओ-साग़र 'रियाज़' जल्द।
आते हैं इक बुज़ुर्ग पुराने ख़यालके॥

ज़लज़ला-सा आगया आया जो मैं।
हज़रते वाइज़[4] गिरे, मिम्बर[5] गिरा॥

पाक-ओ-साफ़ इतनी है जिसने पी फ़रिश्ता हो गया।
ज़ाहिदो यह हूरके दामनमें है छानी हुई॥

ताक़े-हरममें शेख़! गुलाबी है फूल-सी।
इस कामका मिलेगा तुझे फल, उठा तो ला॥

---

[1]आधी रातको; [2]मधुशाला-दर; [3]आधीरातको नमाज़ पढ़नेवालेने; [4]उपदेशक; [5]वह सीढ़ियाँ जिसपर खड़े होकर मसजिदमें उपदेश दिया जाता है।

तोड़े टकराके सुबू हमने भी उसके सरसे।
चुप है वाइज़ कि यही हासिले-तक़रीर भी था।

कौसरका हौज़ हश्रमें सरपै लिये फिरूँ।
चिल्लायें शेख़ "यह भी तुम्हारा सुबू हुआ"॥

क़र्ज़ लाया है कोई भेस बदलकर शायद।
मै-फ़रोशोंका है ज़ाहिदसे तक़ाज़ा कैसा?

'मैख़ानये रियाज़' के साथ-साथ आइये लगे हाथ उनके माशूक़को भी दबे पाँव देख लें—

लें वोह दामनमें क्या गुलाबके फूल।
बारे-दामन[1] जिन्हें गुलाबका रंग॥
रंगका उसके पूछना क्या है?
जिसका साया भी दे गुलाबका रंग॥

नाज़ुक कलाइयोंमें हिनाबस्ता मुट्ठियाँ[2]।
शाख़ोंपै जैसे मुँह बन्धी कलियाँ गुलाबकी॥
रखे-पुरनूरमें जगह थी कहाँ?
रखनेवालेको देखिये तिलके॥
तेरा यह रंग-रूप, यह जोबन शबाबका।
जैसे चमन बहारमें फूला-फला हुआ॥
थी दिलमें गुदगुदी कि यह पूछूँ दमे-विसाल।
"यह तू हँसा कि फूल खिला तेरे हारका?"

उफ़ रे उभार, उफ़ रे जमाना उठानका।
कल बामपर थे आज है क़स्द आसमानका॥

---

[1]दामनका बोझ; [2]मेंहदी लगी मुट्ठियाँ।

क्या क़यामत है शबेवस्ल ख़मोशी उसकी।
जिसकी तसवीरको भी नाज़ है गोयाईका॥
शाख़ेगुल तनती है, क्या बाग़में ऐ जोशेबहार!
इसमें अन्दाज़ कहाँ यारकी अँगड़ाईका॥

वोह तसवीर आजतक महफ़ूज़ है चश्मेतसव्वुरमें।
तेरे बचपनसे जब अठखेलियाँ करता शबाब आया॥
हुए हंगामाहाए-हश्र कितने गोशये-दिलमें।
वोह मेरे सामने कुछ इस अदासे बेनक़ाब आया॥
वोह आये सैरे-दरियाके लिए तो बिछ गई मौजें।
क़दमसे उनकी अपनी आँख मलते हर हुबाब[1] आया॥

उसके आग़ाज़े-जवानीका[2] कहूँ क्या आलम।
कुछ उसे नशा-सा था, नशेमें वोह चूर न था॥

अरे साहब इसतरह घूरकर न देखिये, कुछ उसकी हया-शर्मका भी पास कीजिये—

नशेसे झुकी पड़ती थीं यूँ ही तेरी आँखें।
छेड़ोंसे मेरी और बढ़ा बोझ हयाका॥
मै ख़ाबमें हूँ और खुली है मेरी आँखें।
अब दिलमें उतर आये जो पुतला हो हयाका॥
दिल छीनती हैं और झुकी जाती है आँखें।
शोख़ीमें भी जाता नहीं अन्दाज़ हयाका॥

कह उठे—"चुप हो क्यों विसालके बाद?"
ख़ुद ही शरमाये इस सवालके बाद॥

---

[1]बुलबुला; [2]यौवनके प्रारंभका।

बने हैं शर्मके पुतले शबेवस्ल।
हया आँखोंमें है नीची नज़र है॥
हश्रमें शरमाके उसने हाथ मुँहपर रख दिया।
बात दिलकी होंटपर बे-अख़्तियार आनेको थी॥

और इस हयाके साथ यह नज़ाकत भी मुलाहिज़ा फ़र्माइये—

मैं तो समझा पंखड़ी है फूलकी।
किस क़दर हलका तेरा ख़ंजर पड़ा॥
ऐसी ज़िद है तो उन्हें कौन मनाये या रब!
वोह यह मचले हैं कि कोई मुझे क्यों याद आया॥

वोह सिन ही क्या है समझ हो जो ऐसी बातोंकी।
वोह पूछते हैं कि—"रोज़े-विसाल क्या होगा?"

हुज़ूरे वाला! अब यहाँसे खिसक चलिये। देखिये शर्मो-हयाके परदेमें शोखियाँ शुरू हो गई हैं। अब ठहरना मुनासिब नहीं—

यहाँ भी है वही इतराके चलना।
क़यामत है कि उनकी रह गुज़र है॥
वक़्त ही ऐसा था रुख़सत हो गई उनकी हया।
बात ही ऐसी थी खुल-खेले वोह शरमानेके बाद॥

हँगामे-नज़अ[1] गिरया[2] यहाँ बेकसीका था॥
तुम हँस पड़े, यह कौन-सा मौक़ा हँसीका था?

जो गूँज उलझी बालीकी झुँझलाके बोले—
"लगे प्यारको आग! अभी कान जाता!!"

---

[1]मृत्युके समय; [2]रोने-धोनेका शोर।

बचपन यह है तो कौन बचेगा शबाबतक ?
सदक़े तेरे उमंग अभी इम्तहाँकी है ॥

ख़ुदा जाने क्यों उनके दिलमें यह आई ?
जफ़ाओंकी ठहरी करम करते-करते ॥

उड़ाये फिरती है उनकी जवानी।
क़दम पड़ता नहीं उनका ज़मींपर ॥

हम दिलमें ख़ुश कि सब्ज़ये-तुरबत[1] हरा हुआ।
वोह इस अदासे रोये कि पलकें भी नम नहीं ॥

कुछ और ही होती हैं बिगड़नेकी अदाएँ।
बननेमें-सँवरनेमें यह आलम नहीं होता ॥

और यह साहब गुनगुनानेकी आवाज़ कहाँसे आ रही है, आवाज़ तो जानी-पहचानी मालूम हो रही है। अरे भई यह तो हज़रते 'रियाज़' हैं, मालूम होता है अपने माशूक़से कुछ गिला-शिकवा कर रहे हैं—

निकले थे मुँह छुपाये हुए घरसे ग़ैरके।
तसवीर बन गये जो मेरा सामना हुआ ॥

ग़ैरके घरसे झिझकते हुए तुम निकले थे।
रुकते देखा तुम्हें फिर छुपके निकलते देखा ॥
कभी कुछ रात गये या कभी कुछ रात रहे।
हमने इन परदानशीनोंको निकलते देखा ॥

छुपके रातोंको कहीं आप न आये न गये।
बे-सबब नाम हुआ आपका रोशन कैसा ?

---

[1]समाधिकी घास।

है अभी मेरे बुढ़ापेमें जवानी कैसी?
है अभी उनकी जवानीमें लड़कपन कैसा?

यह भी अहसाँ? सुबह होते आये तुरबतपर मेरी।
कुछ गुले-पज़मुर्दा लेकर ग़ैरके बिस्तरसे आप॥

पारसाईका यक़ीं ग़ैरको दिलवाते हो।
और भूलेसे जो आजाय तबस्सुम मुझको!

गये थे आप उठाने जनाज़ा दुश्मनका।
कहाँ गई थी बड़े धूमसे सवारी रात?

हज़रते 'रियाज़' अपने हबीबसे यह किस अन्दाज़की गुफ़्तगू कर रहे हैं। मालूम होता है हबीबसे नहीं किसी बाज़ारी औरतसे ज़बान लड़ाई जा रही है।

तब क्या आप 'रियाज़' को बेदाग़ और उसके हबीबको पाकदामन समझे बैठे थे। तौबा कीजिये साहब, जैसी गन्दी देवी वैसे ऊत पुजारी। वोह ख़ुद भी भौंरे हैं और उनकी चहेती भी तितलियाँ हैं। यहाँसे खिसकिये तो उनके हस्बहाल कुछ शेर सुनाऊँ--

ऐ 'रियाज़'! आँख लड़ाते हुए जी डरता है।
ज़ख़्म पहुँचे हैं हसीनोंकी नज़रसे क्या-क्या॥

बाज़ारमें भी चलते हैं कोठोंको देखते।
सौदा ख़रीदते हैं तो ऊँची दूकानका॥

लूटी है बहुत हमने हसीनोंकी जवानी।
पीरीमें भी अबतक है जवानीकी वही बात॥

सताते हैं हम भी हसीनोंको क्या-क्या।
सताती है हमको जवानी हमारी॥

हमको मिल जायें तो आ जाये मज़ा।
अच्छे माशूक़ और सस्ते दामके॥
जितने हैं माशूक़ मिल जायें हमें।
हैं यह सब काफ़िर हमारे कामके॥

कहते हैं "जान पड़ गई आफ़तमें वक़्तेवस्ल।
मलदलके रख दिया मुझे, अच्छा यह प्यार है"॥

तुम एक रह गये हो हमारी निगाहमें।
सब नाज़नीं हमारी नज़रसे उतर गये॥

किसने देखा हमें कूचेमें हसीनोंके 'रियाज़'।
मुफ़्त बदनाम हुए हम कहीं आये-न-गये॥

कहना किसीका सुबहे शबे-वस्ल नाज़से--
"हसरत तुम्हारी, जान हमारी निकल गई॥"

देखते ही किसी काफ़िरको बिगड़ जाती है।
मैं जो चाहूँ भी तो रहती नहीं नीयत अच्छी॥

किसीपर दमे-हश्र क्या आँख डालूँ ?
हसीं सब मेरे देखे-भाले हुए हैं॥

'रियाज़' उर्दू-शायरीकी परम्पराके अनुसार अपने माशूक़का सम्मान और इज्ज़त नहीं करते, बल्कि बेअदबीपर उतर आते हैं--

चूम लेते हैं मुँह कभी हम भी।
जब हसीं कहके कुछ मुकरते हैं॥

कहना किसीका हाय वोह झुँझलाके नाज़से
"कम्बख़्त हाथ छोड़, कोई देखता न हो॥"

हमने भी इन हसीनोंको छेड़ा है किस क़दर ?
ऐसा भी कोई है जो हमें कोसता न हो ॥

मैंने लिया जो हश्रमें दामन बढ़ाके हाथ।
बोले वोह "आबरू है मेरी अब ख़ुदाके हाथ ॥"
बढ़ने लगे थे दस्ते-अदब बनके दस्ते-शौक़।
ज़ालिमने आज थाम लिये मुसकराके हाथ ॥

हाथ गुस्ताख़ हैं उठ जायें न यह दामनपर।
बचके निकलें मेरी मरक़दसे गुज़रनेवाले ॥
दौड़कर गोदमें उठा लाऊँ।
धरमें छमसे जो कोई आजाये ॥
पायें तो ऐ हसीनों ! तुमको रुलाके छोड़ें।
हैं यह 'रियाज़' ऐसे इनको तरस न आये ॥

डर गये, चीख़ उठे, बात थी क्या, कहिये तो ?
क्या शबेवस्ल किसीका कोई अरमाँ निकला ॥

दीवाना मैंने हश्रमें ख़ुदको बना लिया।
जो मिल गया हसीन गलेसे लगा लिया ॥

कोई मुँह चूम लेगा इस 'नहीं' पर।
शिकन रह जायगी यूँ ही जबींपर ॥

चूमकर मुँह गालियाँ खाते हैं हम।
इस सजामें फिर मजा पाते हैं हम ॥

अरे ओ हश्रमें इतरानेवाले यूँ न चल तनकर।
यहाँ भी लूटनेवाले तेरे जोबनके बैठे हैं ॥

ख़ुदा करे कहीं मौक़ेसे मुझको मिल जायें।
यही हसीं जो मुझे पारसा समझते हैं॥

जबतक वोह मेरे हाथोंसे मजबूर न होंगे।
वादेका उन्हें हश्रमें इक़रार न होगा॥

खुलके लूटी हुस्नकी दौलत 'रियाज़'!
आज तो डाका सरे-महशर पड़ा॥
कहते हैं "ख़ूब कही, हम न सतायें तुमको,
तुम जो पा जाओ सताओ हमें कैसा-कैसा?"

छुपता नहीं छुपायेसे आलम उभारका।
आँचलकी तहसे देखो नमूदार क्या हुआ?

बता दें आ गया क्या तुमको इस उठती जवानीमें।
बता दें कानमें चुपकेसे क्या तुमको नहीं आया?

हम ग़रीबोंका अँधेरेमें निकल जायेगा काम।
आयें तो वह शमये-तुरबतको बुझानेके लिए॥

लेके उट्ठे सुबहको दर्दे-कमर।
शामसे बैठे थे जो सर थामके॥
छेड़ना काफ़िर बुतोंका है सवाब।
जब मिलें उनको सताना चाहिए॥
गुद-गुदाता हो जिन्हें जिनका शबाब।
ऐसे माशूक़ोंको छेड़ा चाहिए॥

निगहसे बढ़के है गुस्ताख़ दस्ते-शौक़ मेरे।
न कोसियेगा ज़रा हाथ उठा-उठाके मुझे॥
निकाल दूंगा शबेवस्ल बल नज़ाकतके।
डरा लिया है बहुत त्योरियाँ चढ़ाके मुझे॥

इतनी बेअदबीके बाद भी 'रियाज़' को सब्र नहीं होता, वे कुछ और आगे बढ़ते हैं। अब तक उर्दू शायरीके जितने भी अनगिनत आशिक़ हुए हैं, वोह अपने माशूकको ख़ुदा या ख़ुदासे बढ़कर समझते रहे हैं—

दावरके[1] सामने बुते-क़ाफ़िरको क्या कहूँ ?
दोनोंकी शक्ल एक है किसको ख़ुदा कहूँ ?
मारो भी तुम जिलाओ भी तुम, तुमको क्या कहूँ ?
तुमको ख़ुदा कहूँ या ख़ुदाको ख़ुदा कहूँ ॥

—अज्ञात

और उनकी एक जुम्बिशपर जान-न्योछावर करनेको प्रस्तुत रहे हैं। जीवन भर उनको प्रसन्न करने और मनानेमें व्यस्त रहे, परन्तु सफलता शायद ही किसीको प्राप्त हुई हो। लेकिन 'रियाज़' दूसरे ही ख़मीरसे बने हैं। उनके समक्ष माशूक रूठनेकी हिम्मत तो तब करे, जब 'रियाज़' मनानेके आदी हों। वे तो बात-बेबात स्वयं ही रूठे रहते हैं—

छेड़ कैसी ? बात करते रूठ जाते हैं 'रियाज़'।
एक हसीं हर वक़्त हो उनको मनानेके लिए ॥

इन हसीनोंने कहा क्या कि ख़फ़ा हो बैठे।
बात क्या थी कि 'रियाज़' आप बुरा मान गये ॥

रूठनेका सबब और क्या होता ? सृष्टिके आदिसे प्रेयसियाँ, प्रेमियोंको सताती, तरसाती आ रही हैं। उन्हींका बदला 'रियाज़' गिन-गिनकर ले रहे हैं।

"अमाँ दफ़ान भी करो इस बयानको। इस फ़ाहिशातके अलावा कुछ पाकीज़ा भी है 'रियाज़'के यहाँ ?"

---

[1]ख़ुदाके।

"है क्यों नहीं, मगर वही आटेमें नमककी तरह।"

"वोह भी क्या कम है, ज़रा सुनें तो सही क्या फ़र्माया है 'रियाज़' साहबने ?"

फ़र्माया है—

मुफ़लिसोंकी ज़िन्दगीका ज़िक्र क्या ?
मुफ़लिसीकी मौत भी अच्छी नहीं ॥

"वाह, क्या बात है ! मुफ़लिसीकी वह डरावनी तसवीर खींची है कि दाद देनेको शब्द नहीं। मालूम होता है कोई दीन-दुखियोंको देखकर अंगारोंपर लोट रहा है।"

अरे साहब, यह शेर सुनिये, मालूम होता है 'रियाज़' विश्व-वेदनाको सीनेसे लगाये घूमते हैं। जिसका दिल दीन-दुखियोंके लिए ओत-प्रोत न हो—क्या खाकर ऐसा शेर कहेगा ?

मेरे सिवा नज़र आये न कोई दोज़ख़में।
किसीका जुर्म हो मालिक ! मुझे सज़ा देना ॥

"आप क्या फ़र्मा रहे हैं ? रियाज़-जैसा रंगीन मिज़ाज ऐसा दर्दीला कलाम भला कैसे कह सकता है ?"

और सुनिये—

असर बढ़ जाय यारब ! इस क़दर सोज़े-मुहब्बतका।
जहन्नुममें हर अंगारेको समझूँ फूल जन्नतका ॥

उनका पाकीज़ा इश्क़ देखिये—

ताअ़तका इन बुतोंने सलीक़ा सिखा दिया।
ख़ुद क्या मिले कि मुझको ख़ुदासे मिला दिया ॥

जिनमें चर्चा न कुछ तुम्हारा हो।
ऐसे अहबाब, ऐसी सुहबत क्या[1]?

कुछ नीतिपूर्ण—

जिनके दिलमें है दर्द दुनियाका।
वही दुनियामें ज़िंदा रहते हैं॥
जो मिटाते हैं ख़ुदको जीते जी।
वही मरकर भी ज़िंदा रहते हैं॥

मौतसे बदतर बुढ़ापा आयेगा।
जानसे अच्छी जवानी जायगी॥

क्या सुरमा भरी आँखोंसे आँसू नहीं गिरते?
क्या मेंहदी लगे हाथोंसे मातम नहीं होता?

जब अभिलाषाएँ त्यक्त कर दी तो—

हमें ख़ुदाके सिवा कुछ नज़र नहीं आता।
निकल गये हैं बहुत दूर जुस्तजूसे हम॥

हुए पस्त ऐसे उनकी ख़ाक भी उड़ते नहीं देखी।
रहे रहनेको कितने इस ज़मींपर आसमाँ होकर॥

गुल-ओ-बुलबुलको लक्ष करके—

हाय क्या झटपट क़फ़समें बालोपर पैदा किये।
जब सुना हमने कि जाती है बहार आई हुई॥

---

[1]हसरत मोहानीने भी क्या ख़ूब कहा है—

शब वही शब है, दिन वही दिन है।
जो तेरी यादमें गुज़र जाये॥

नशेमनमें गुज़रे कई मौसमे-गुल।
क़फ़समें जो टूटे थे वोह पर न निकले॥
चमनमें हम आये जो छुटकर क़फ़ससे।
महीनों नशेमनसे बाहर न निकले॥

उजाड़ते हुए सौ बार आशियाँ देखा।
चमनमें रहके तुझे ख़ूब बाग़बाँ देखा॥
सुये-चमन जो चले लूटने बहारका लुत्फ़।
तो हमने दो क़दम आगे तुझे ख़िज़ां देखा॥
यह फूल लेके अनादिल चले चमनसे कहाँ।
ज़रूर मेरी लहदका कहीं निशाँ देखा॥

गोशेसे नशेमनके आहोंका असर देखा।
सैयादका घर जलते बे-बर्क़ो-शरर देखा॥
यूँ हश्रमें सैरें की फिरदौसो-जहन्नुमकी।
कुछ देर इधर देखा कुछ देर उधर देखा॥

ख़ुश किया यूँ बाग़में लाकर मुझे सैयादने।
शाख़के नीचे क़फ़स है आशियाँ बालाये-सर॥
कोई सौ बार उड़े, सौ बार बैठे।
क़फ़ससे यूँ हम आये आशियाँ तक॥
मुँह बँधी कलियोंके जोबनका यह कहता है उभार—
"अपने सीनेसे हमें कोई लगाले बुलबुल॥"
क़फ़स दस्ते-सैयादमें हम क़फ़समें।
यह काम आई है ख़ुश बयानी हमारी॥*

---

*इसी मज़मूनको असग़र गोण्डवीने क्या ख़ूब बान्धा है—

नग़मये-पुरदर्द छेड़ा हमने इस अन्दाज़से।
ख़ुद-ब-ख़ुद पड़ने लगी हमपर नज़र सैयादकी॥

हमने अपने आशियाँके वास्ते।
जो चुभे दिलमें वही तिनके लिये॥
साया भी शाख़े-गुलका न हमको हुआ नसीब।
ऐसे कई बहारके मौसम गुज़र गये॥
वाये-क़िस्मत जब क़फ़सका दर खुला।
उड़गई ताक़त परो-परवाज़की॥

अन्य फुटकर कलाम—

ज़ुल्फ़ोंमें आप बैठके मोती पिरोइये।
आँसू न पूँछिये किसी आशुफ़्ता हालके॥

जो खिला फूल, बना ज़ख्म मेरे दिलका 'रियाज़'!
जो कली रह गई खिलनेसे बना दिल मेरा॥

बच जाय जवानीमें जो दुनियाकी हवासे।
होता है फ़रिश्ता कोई इन्साँ नहीं होता॥

यह मेरे दोशसे[1] होते नहीं जुदा दमे-नज़अ[2]।
गड़ेंगे मेरे फ़रिश्ते मेरे मज़ारमें क्या॥

उम्रभर कातिबे-ऐमाल फ़रिश्ते ही रहे।
पाके सुहबत भी न आया इन्हें इन्साँ होना॥

लिये नाक़ूस[3] कोई दैरवाला[4] आज आया है।
अगर सच है तो काबेमें मज़ा वक़्ते-अज़ाँ होगा॥
रहमकर मालिक कि है दो-दो फ़रिश्ते भी लदे।
और फिर इसियाँका[5] भी बारे-गराँ बालाये-सर॥

---

[1]कन्धेसे; [2]मृत्युके समय भी; [3]शंख; [4]पुजारी; [5]पापका।

हाँ वही फिर काबा बन जायेगा ऐ शेख़े-हरम !
बुतकदेका पहले नक़्शा खींच, फिर नक़्शा बिगाड़ ।।
हमें ठुकराते जायें जो वहाँ जायें।
पहुँच जायें युँही हम आस्ताँतक ।।
'रियाज़'! आनेमें है उनके अभी देर।
चलो हो आयें मगैं-नागहाँ तक ।।

आँखोंमें अश्क आये तो हँसनेका लुत्फ़ क्या ?
इतना न गुदगुदाओ कि हम रो दिया करें ।।

मैं जो पहुँचा तो लिये उठके बगोलोंने क़दम।
नज्दमें धूम मची "क़ैसका उस्ताद आया" ।।
कलीम ! जाके जहाँ होश अपना खो आये।
वहाँ तो रोज़ हम आँखें लड़ाने जाते हैं ।।*
कभी आजाती है काबेमें हमें दैरकी याद।
बैठे-बैठे कभी नाक़ूस बजा देते हैं।।
लगादो ज़रा हाथ अपनी गलीमें।
जनाज़ा लिये दिलका हम जा रहे हैं।।
बाहम शबे-विसाल उठाये हैं क्या मज़े।
वोह भी यह कह रहे हैं—"इलाही सहर न हो" ।।
वोह जुर्म ढूंढ़-ढूंढ़ कर करता हूँ रात-दिन।
लिक्खें तो कातिबाने-अमल पर अताब हो।।

---

*इसी मज़मूनसे लड़ता हुआ बिस्मिल शाहजहाँपुरीका शेर भी ख़ूब है—

नहीं मालूम मूसा तूरसे क्यों बेक़रार आये ?
मेरी मंज़िलमें ऐसे मरहले तो बे-शुमार आये ।।

शुक्र-बेदाद तो हो, शिकवये-बेदाद न हो।
मेरे लबपर हो तबस्सुम कभी फ़रियाद न हो॥
हो वफ़ा जिसमें वोह माशूक़ कहाँसे लाऊँ?
है यह मुश्किल कि हसीं हो, सितमईजाद न हो॥

रखदूं हरममें दैरसे लाकर अगर उसे।
नाक़ूस भी ख़ुदाको पुकारे अज़ाँके साथ॥*

बज़्मे-महशरमें न रखती उसकी रहमत इम्तयाज़।
लुत्फ़ होता रिन्द-ओ-ज़ाहिद सब बराबर बैठते॥

कलीम आये तो खुलके जलवा दिखाया।
हम आये तो परदेसे बाहर न निकले॥

जीमें आता है अभी जाके ख़ुद उससे पूछूँ—
"बात क़ासिदकी तेरे मुँहकी कही है कि नहीं॥"

जो फिर रहा है ख़िज़्रका साया बना हुआ?
भटका हुआ यह मेरा कोई नामाबर न हो॥

क़ुरबान अपने कसरते-इसयाँके बार-बार।
महशरमें सबसे पहले हमारी पुकार है॥
मज़े लूटो कलीम! अब बन पड़ी है।
बड़ी ऊँची जगह क़िसमत लड़ी है॥

---

*बिरहमन नालयेनाक़ूस मसजिदतक जो पहुँचादे।
बुरा क्या है मुअज़्ज़न भी अगर बेदार हो जाये॥
—हफ़ीज़ जालंधरी

बड़ी कोई नट-खट है या रब! क़ज़ा भी।
चुने बाँके-तिरछे जवाँ कैसे-कैसे ॥
सैरको निकलें वोह अपनी रहगुज़रसे बे-हिजाब।
और रक्खी हो हमारी लाश कफ़नाई हुई॥

जब चले सूयेलहद मुड़के न देखा घरको।
ऐसे रूठे कि किसीसे भी मनाये न गये॥

जब चली आसमाँसे कोई बला।
सीधी मेरे मकानपर आई॥

चली जाती है उनके घर मेरी नींद।
जाके फिर रात भर नहीं आती॥

उतरनेवाले अभीतक न बामसे उतरे।
तड़पनेवाले तड़पकर फ़लकको छू आये॥

जब चला मैं दो क़दम तो जौफ़से।
खाके अपने सायेको ठोकर गिरा॥
दिल गिरा अन्धे कुएँमें इश्क़के।
साथ अपने मुझको भी लेकर गिरा॥

आगे तो रक़ीबोंको उठा लेते थे सख़ी।
यह जोफ़ है उठता नहीं अब नाज़ किसीका॥

होके बेताब बदल लेते थे अक्सर करवट।
अब यह है जोफ़ कि क़ाबूसे है बाहर करवट॥

नज़अमें यारसे पैमाने-वफ़ा करते हैं।
इस दग़ाबाज़से हम आज दग़ा करते हैं॥

जाना था कि आना था जवानीका इलाही!
सैलाबकी थी मौज या झोंका था हवाका?

राह चलते हुई है दौलते-दीदार नसीब!
इसमें अहसान नहीं आपके दरबानोंका॥
बुत ख़ुदा हों कि न हों, है मगर इतनी तौक़ीर।
बुतकदा आज भी काबा है मुसलमानोंका॥

मुझको दरबाँने निकाला इस तरह।
उनके दरपर रह गया बिस्तर पड़ा॥*

उनकी गलीमें रात मैं इस वज़असे गया।
घबराके पासबान गिरे पासबानपर॥

गालियाँ भी नहीं तक़दीरमें उनके मुँहकी।
उनके दरबाँ कभी दो-चार सुना देते हैं॥

ज़रूर क़स्द किया उसने बामे-लैलाका।
बुलन्द आज बहुत क़ैसका ग़ुबार गया॥

दामनमें फूल लेके चले थे उदूके घर।
हसरत पुकार उठी कि "हमारे मज़ारपर"॥

जवाँ होने न पाये थे कि दिल आया हसीनोंपर।
अजल यह कहती आई—"क्या करोगे तुम जवाँ होकर?"

---

*दरपै रहनेको कहा और कहके कैसा फिर गया।
जितने अरसेमें मेरा लिपटा हुआ बिस्तर खुला॥
—ग़ालिब

घटती नहीं तुरबतमें भी फ़ुरक़तकी अज़ीयत।
यह दर्द वोह है मरके भी जो कम नहीं होता॥

किस लुत्फ़से खुली हुई आँखें हैं बादे-मर्ग।
हम मिट गये मज़ा न मिटा इन्तज़ारका॥

मुँहको आया है कलेजा सौ बार।
हाय आलम शबे-तनहाईका॥
यह कोहकनके भी काटे तो कट नहीं सकती।
पहाड़ हो गई फ़ुरक़तकी हमको भारी रात॥

कमज़ोर हुए अश्कोंसे घरके दरो-दीवार।
रोनेके लिए लेंगे किरायेका मकाँ और॥

यह टूट-टूटके तारे नहीं गिरे शबे-हिज्र।
फ़लकने साथ मेरे की है अश्कबारी रात॥

यही दिन थे सौ-सौ तरह तुम सँवरते।
जवानी तो आई सँवरना न आया॥
सुनाकर वोह कहते हैं किस भोलेपनसे—
"हमें वादा करके मुकरना न आया॥"

हश्रके रोज़ भी क्या ख़ूने-तमन्ना होगा।
सामने आयेंगे या आज भी परदा होगा॥
शर्मे-इसयाँसे नहीं उठती हैं पलकें ऊपर।
हम गुनहगारोंसे क्या हश्रमें परदा होगा॥

यह आधी रातको उनका पयाम आया है।
"हम आज आ नहीं सकते, अब इन्तज़ार न हो।।"

तरीक़े-इश्क़के रहरौ कभी-कभी अब भी।
जनाबे ख़िज़्रको रस्ता बताने जाते हैं।।

अब क्या मिलेगा आँसुओंमें दिल निकल गया।
वह क़ाफ़िला भी तो कई मंज़िल निकल गया।।

लूटे मज़े हयाके उठाये अदाके लुत्फ़।
पहरोंसे आज मुझको तसव्वुर किसीका है।।

इश्क़में ख़ूब दिन गुज़रते हैं।
रोज़ जीते हैं, रोज़ मरते हैं।।

असरे-इज़्तराबे-क़ैस न पूछ।
परदा उठ-उठ गया है महमिलका।।

२० अप्रैल १९५२]

जलील मानिकपुरी

[१८६४–१९४६ ई०]

जलीलहसन 'जलील' १८६४ ई० में मानिकपुर (अवध) में उत्पन्न हुए। १०-११ वर्षकी उम्रमें समूचा क़ुरान कंठस्थ कर लिया। शिक्षाका ज़माना बहुधा लखनऊमें व्यतीत हुआ। वहाँ आपने अरबी-फ़ारसीकी उच्च शिक्षा प्राप्त की। सुख़नगोईका शौक़ विद्यार्थी अवस्थासे ही था। २० वर्षकी उम्रमें अमीर मीनाईके शिष्य हुए, और उस्तादके जीवन-कालमें सदैव उनके साथ रहे। आपकी भक्ति और योग्यतासे उस्ताद इतने प्रभावित हुए कि अपनी उस्तादीकी गद्दी आपको ही सुपुर्द कर गये।

अमीर मीनाई रामपुरमें रहकर जब 'अमीरुललुग़ात' जैसे वृहत्कोषका निर्माण कर रहे थे, और उसके लिए एक विस्तृत कार्यालय खोला गया था, तब 'जलील'पर ही उसके संपादनका भार डाला गया था। बनारस, भोपाल आदिकी यात्राओंमें भी आप उस्तादके क़दम-ब-क़दम साथ रहे। १९०० ई० में जब हज़रत अमीर मीनाई हैदराबाद स्थायी रूपसे रहनेको चले गये तो भी आप उनके साथ ही रहे। वहाँ दो उर्दू-पत्रोंके संपादनका कार्य आपके सुपुर्द हुआ। मिर्ज़ा दाग़की मृत्युके बाद १९०८ ई० में तत्कालीन नवाब हैदराबादने अपना कविता-गुरु आपको स्वीकृत किया और मिर्ज़ा दाग़के रिक्त स्थानपर प्रतिष्ठित किया। 'जलीलुलक़द्र' ख़िताबसे विभूषित किया। फिर वर्त्तमान नवाबने जब शासनकी बागडोर सँभाली तो उन्होंने भी उस्तादीका गौरव आपको ही प्रदान किया, और आपके जीते जी

आपसे ही मशवरये-सुख़न लेते रहे। पहले आपको "नवाब फ़साहत जंग बहादुर" खिताब अता किया गया। दुबारा "इमामुल मुल्क" की पदवीसे विभूषित किया। नवाब साहबके अतिरिक्त युवराज, शहज़ादे भी आप ही से इस्लाह लेते थे। पहला दीवान 'जाने सुख़न' १९१० में प्रकाशित हुआ। दूसरा दीवान 'सरताजे सुख़न' १९१६ में छपा। तीसरा दीवान मुद्रणकी प्रतीक्षामें है। इनके अतिरिक्त बीसों महत्वपूर्ण पुस्तकोके आप रचयिता हैं। ६ जनवरी १९४६ ई० में आपने हैदराबादमें समाधि पाई।

आपके खुद पसन्दीदा अशआरमेसे चन्द शेर निगार जनवरी १९४१ से यहाँ साभार दिये जा रहे हैं—

मेरी वहशत भी तमाशा हो गई।
जो उधर गुज़रा, खड़ा देखा किया॥

आज ही आ जो तुझको आना है।
कल ख़ुदा जाने मैं हुआ-न-हुआ॥

मज़ा लेंगे हम देखकर तेरी आँखे।
उन्हें ख़ूब तू नामाबर! देख लेना॥

यह रंग गुलाबकी कलीका।
नक़्शा है किसीकी कमसिनीका॥
मुंह फेरके यूँ चली जवानी।
याद आ गया रूठना किसीका॥

ऐ 'जलील'! आँसू बहाये तुमने क्यों?
उनको हँसनेका बहाना मिल गया॥

जाते हो, ख़ुदा हाफ़िज़, हाँ इतनी गुज़ारिश है।
जब याद हम आजायें, मिलनेकी दुआ करना॥

थी इश्क़ो-आशिक़ीके लिए शर्ते-ज़िंदगी।
मरनेके वास्ते मुझे जीना ज़रूर था॥
वोह बेख़ुदीकी आड़में लिपटे 'जलील' से।
क्योंकर कहूँ कि होश न था, था, ज़रूर था॥

दिन जो दुश्मनके फिरे मेरे भी फिरने चाहिएँ।
क्या ज़माना एक ही करवट बदलकर रह गया॥

हम भूले हुए राह हैं ऐ काबा नशीनों!
जाते थे कहीं और, निकल आये कहीं और॥

यह जो सर नीचे किये बैठे हैं।
जान कितनोंकी लिये बैठे हैं॥

इक शमअ़ है मज़ार पै वोह भी बुझी हुई!
क्या देखकर बुलाऊँ नसीमे-सहरको[1] मैं॥

आपने तसवीर भेजी मैंने देखी ग़ौरसे।
हर अदा अच्छी, ख़मोशीकी अदा अच्छी नहीं॥

हमारी बेख़ुदीका हाल वोह पूछें तो ऐ क़ासिद!
यह कहना होश इतना है कि तुमको याद करते हैं॥
'जलील' अच्छा नहीं आबाद करना घर मुहब्बतका।
यह उनका काम है जो ज़िंदगी बरबाद करते हैं।

मज़े बेताबियोंके आ रहे हैं।
वोह हमको, हम उन्हें समझा रहे हैं॥

आते-आते आयगा उनको ख़याल।
जाते-जाते बेख़याली जायगी॥

---

[1]प्रातःकालीन वायुको।

देखते हैं ग़ौरसे मेरी शबीह[1]।
शायद इसमें जान डाली जायगी॥
ऐ तमन्ना! तुझको रो लूं शामे-वस्ल।
आज तू दिलसे निकाली जायगी॥
क़ब्रमें भी होगा रोशन दाग़े-दिल।
चान्दपर क्या ख़ाक डाली जायगी॥

मेरी हर बातको उलटा वोह समझ लेते हैं।
अबकी पूछा तो यह कह दूंगा कि हाल अच्छा है॥

नक़ाब कहती है—"मैं परदये-क़यामत हूँ।
अगर यक़ीन न हो देख लो उठाके मुझे॥"
मैं डर रहा हूँ तुम्हारी नशीली आँखोंसे।
कि लूट लें न किसी रोज़ कुछ पिलाके मुझे॥

थकके बैठूं तो यह कहता है जुनूँ—
"दो क़दम कूचये—रुसवाई[2] है॥"

भला तौबाका मयख़ानेमें क्या ज़िक्र?
जो है भी तो कहीं टूटी पड़ी है॥

हाय! क्या हसरतकदा[3] था दिल हमारा ऐ 'जलील'!
हो गया दो रोज़में आबाद भी बरबाद भी॥

आँखोंमें आके कौन इलाही निकल गया?
किसकी तलाशमें मेरे अश्के-रवाँ[4] चले?

---

[1]तस्वीर; [2]बदनाम होनेका स्थान, प्रेयसीका कूचा; [3]अभिलाषाओंसे भरा हुआ; [4]बहते हुए आँसू।

इज़हारे-हालपै मुझे क़ुदरत नहीं रही।
उनको यह वहम है कि मुहब्बत नहीं रही॥

आज आँसू तुमने पूछे भी तो क्या?
यह तो अपना उम्र भरका काम है॥

कह दो यह कोहकनसे कि "मरना नहीं कमाल,
मर-मरके हिज्रेयारमें जीना कमाल है॥"
इस महवियतपै[1] आपकी क़ुर्बान मैं 'जलील'!
इतना नहीं ख़याल कि किसका ख़याल है॥

किसने कह दी उनसे मेरी दास्ताँ?
चौंक-चौंक उठते हैं ख़्वाबे-नाज़से॥
दर्दे-दिल पहले तो वोह सुनते न थे।
अब यह कहते हैं—"ज़रा आवाज़से"॥

ज़िन्दगी क्या जो बसर हो चैनसे।
दिलमें थोड़ी-सी तमन्ना चाहिए॥

बनी है जानपै, जानेकी तुमने ख़ूब कही।
मेरा यह हाल, फिर आनेकी तुमने ख़ूब कही॥
मुझे ज़माना बुरा कह रहा है, कहने दो।
ग़रज़ है तुमसे, ज़मानेकी तुमने ख़ूब कही॥

उनसे इज़हारे-मुहब्बत जो कोई करता है।
दूरसे उसको दिखा देते हैं तुरबत[2] मेरी॥

यह कौन ज़ेरे-ज़मीं उसको गुदगुदाता है?
कि मुसकराती हुई हर कली निकलती है॥

---

[1]तन्मयतापै; [2]क़ब्र।

दिलचस्प हो गई तेरे चलनेसे रहगुज़र[1]।
उठ-उठके गर्देराह लिपटती है राहसे॥

कुछ इस अदासे यारने पूछा मेरा मिज़ाज।
कहना पड़ा कि शुक्र है परिवर्दगारका॥

या ख़ुदा दर्दे-मुहब्बतमें असर है कि नहीं।
जिसपै मरता हूँ उसे मेरी ख़बर है कि नहीं।
आपसे आँख मिलाऊँ यह मेरी ताक़त है?
देखता यह हूँ कि अगली-सी नज़र है कि नहीं॥

मस्त करदे मुझे साक़ी! मगर इस शर्तके साथ।
होश इतना रहे बाक़ी कि तुझे याद करूँ॥

उन शोख़ हसीनोंपै जो आती है जवानी।
तलवार बना देती है एक-एक अदाको॥

दैरो-काबेकी ज़ियारत तो फ़क़त हीला है।
जुस्तजू तेरी लिये फिरती है घर-घर मुझको॥

यहाँ उड़ गई ख़ाक अहले-वफ़ाकी।
वहाँ इम्तहाने-वफ़ा हो रहा है॥

मुझे तमाम ज़मानेकी आरज़ू क्यों हो?
बहुत है मेरे लिए एक आरज़ू तेरी॥

चमनके फूल भी तेरे ही ख़ोशाचीं निकले।
किसीपै रंग है तेरा किसीपै बू तेरी॥

---

[1]मार्ग।

ग़रज़के आइना है साक़िया ! सब बज़्मे-आलममें।
जहाँ शीशा हुआ ख़ाली जुदा पैमाना होता है॥

हुस्न देखा जो बुतोंका तो ख़ुदा याद आया।
राह काबेकी मिली है मुझे बुतख़ानेसे॥

हम-तुम मिले न थे तो जुदाईका था मलाल।
अब यह मलाल है कि तमन्ना निकल गई॥

मैं न समझा था कि मय इतना गराँ क़ीमत है।
पारसाई हुई सदक़े तो मिला जाम मुझे॥

शमाको तुम उठा दो ख़िलवतसे।
यह हमेशाकी जलनेवाली है॥

हवास आये हुए फिर खो दिये लैलाने मजनूंके।
यह कहना ताज़याना[1] था "मेरा दीवाना आता है॥"

कुछ अख़्तियार किसीका नहीं तबीयतपर।
यह जिस पै आती है बेअख़्तियार आती है॥

बयाबाँसे निकलना अब तेरे मजनूँका मुश्किल है।
यह काँटा भी उलझकर रह गया सेहराके[2] दामनसे॥

इस इत्तफ़ाक़को फ़ज़्लेख़ुदा समझ वाइज़!
कि हिजबेमय[3] तेरे लबपर थी मुझको होश न था॥
दुकाने-मयपै पहुँचकर खुली हक़ीक़ते-हाल।
हयात बेच रहा था वोह मय-फ़रोश न था॥

---

[1]हण्टर; [2]जंगलके; [3]शराबकी बुराई।

मुनहसिर मौसमे-गुलपै नहीं सौदा मेरा।
आगया ज़िक्र तेरा और मैं दीवाना हुआ॥

हक़ीक़तमें पता देता है दरपरदा मुहब्बतका।
'जलील'! उनका तुम्हारे नामपर ख़ामोश हो जाना॥

मिलती-जुलती है क़यामतसे शबाहत[1] लेकिन
इक ज़रा रंग है गहरा शबे-तनहाईका[2]॥

पाये-साक़ीपै तौबा लोट गई।
हाथमें इस अदासे जाम लिया॥

ऐ चर्ख़! कितने ख़ाकसे पैदा हुए हसीन?
तू एक आफ़ताबको चमकाके रह गया॥

किसीका हुस्न अगर बेनक़ाब हो जाता।
निज़ामे-आलमे-हस्ती ख़राब हो जाता॥

कौन बेकस ग़रीक़े-बहर[3] हुआ?
सर पटकती है मौजें साहिलपर[4]॥

हाय! वोह दर्द-आश्ना था किस क़दर?
जिसने डाली है बिनाये-दर्दे-दिल॥

अगर यह सच है तो मरनेपै नाज़ है मुझको—
"तर आँसुओंसे रही उनकी आस्तीं बरसों॥"

क़ासिद-पयामे-शौक़को देना न बहुत तूल।
कहना फ़क़त यह उनसे कि "आँखें तरस गईं"॥

---

[1]उपमा; [2]विरह-रात्रिका; [3]नदीमें डूबा; [4]किनारेपर।

गुज़रीं जो इस तरफ़से हसीनोंकी टुकड़ियाँ।
कुछ रो गई तो कुछ मेरे रोनेपै हँस गई॥

आके दो दिनको फ़स्ले-गुल साक़ी!
मुब्तला कर गई गुनाहोंमें॥
ख़िज़्रको ढूंढ़ने मैं निकला था।
मिलगये मयकदेकी राहोंमें॥

न इशारा, न कनाया, न तबस्सुम, न कलाम।
पास बैठे है मगर दूर नज़र आते है॥

उस गिरफ़्तारको पूछो न तड़प; जिसके लिए।
दर क़फ़सका हो खुला ताक़ते-परवाज़ न हो॥

क्या! कहूँ मर-मरके जीनेका मज़ा।
ऐ ख़िज़र! यह ज़िन्दगानी और है॥

ग़ज़ब होता तेरी सूरत जो बेपरदा कहीं होती।
कि तुझपर जो निगह पड़ती निगाहे-त्रापिसीं होती॥
सजूदे-आस्ताने-यारसे सैरी नहीं होती।
किये जाते जबींसाई अगर बाक़ी जबीं होती॥

नज़र पड़ती है तुमपर सबकी मुझको रश्क आता है।
चलो ख़िलवतमें चल बैठें निकलकर बज़्मे-महशरसे॥

हवाये-ख़ुल्द कहाँ मयकदा कहाँ साक़ी!
यह आहेसर्द किसी मस्तने भरी होगी॥

तुमने आकर मिज़ाज पूछ लिया।
अब तबीयत कहाँ सुलझती है॥

अजब हौसला हमने गुंचेका देखा।
तबस्सुमपै सारी जवानी लुटा दी॥

दे रहे हैं मय वोह अपने हाथसे।
अब यह शय इंकारके क़ाबिल नहीं॥
रवाँ है उम्र और इन्सान ग़ाफ़िल।
मुसाफ़िर है कि सोता जा रहा है॥

बिजलीकी ताक-झाँकसे तंग आ गई है जान।
ऐसा न हो कि फूंक दूं ख़ुद आशियाँको मैं॥

ऊपर हमने आपके पसन्दीदा अशआरमेंसे चन्द शेर उद्धृत किये हैं। अब हम अपनी डायरीसे चुनकर चन्द अशआर और दे रहे हैं—

किधर चले मेरे अश्के-रवाँ नहीं मालूम।
भटक रहा है कहाँ कारवाँ, नहीं मालूम॥
उठा दिया तो है लंगर हवाके झोंकोंमें।
किधर सफ़ीना है, साहिल कहाँ, नहीं मालूम॥
तरानाकश भी हज़ारों हैं, नालाकश भी हज़ार।
मुझीसे क्यों है चमन बदगुमाँ, नहीं मालूम*॥

ज़माना है कि गुज़रा जा रहा है।
यह दरिया है कि बहता जा रहा है॥
ज़मानेपै हँसे कोई कि रोये।
जो होना है, वोह होता जा रहा है॥

---

*यह स्वर्गस्थ होनेसे पूर्व ग़ज़ल कही थी, यही उनका अंतिम कलाम है।

परियाँ हैं सब यह ग़ुंच-ओ-गुल ऐ नसीमे-सुबह!
कुछ उठ चुकी हैं, कुछ हैं अभी ख़्वाबे-नाज़में॥
क़ासिद चला यहाँसे जो लेकर पयामे-शौक़।
कुछ कहते-कहते मैं कई मंज़िल निकल गया॥

बहार फूलोंकी नापायदार कितनी है।
अभी तो आई, अभी उड़ गई, हँसीकी तरह॥

नाज़ुक गुलोंपै रंगे-मसर्रत भी बार है।
आई हँसी कि चाक गरेबान हो गये॥

कहाँ फिर लज़्ज़तें यह जुस्तजूए-नामुकम्मलकी।
ग़नीमत है निशाने-जादए-मंज़िल नहीं मिलता॥

क्या पूछता है तू मेरी बरबादियोंका हाल।
थोड़ी-सी ख़ाक लेके हवामें उड़ाके देख॥

लगी थी उनके क़दमोंसे क़यामत।
मैं समझा साथ साया जा रहा है॥

निगाहे-लुत्फ़ नहीं उनकी ख़ैर है वरना।
कुछ और हाल हमारा ख़राब हो जाता॥

अब क्या करूँ तलाश किसी कारवाँको मैं।
गुम हो गया हूँ पाके तेरे आस्ताँको मैं॥
तेरे ख़यालमें आये जो उनसे कह देना।
मेरी समझमें तो कुछ नामाबर! नहीं आता॥

ख़ुदा मालूम क़ासिद क्या सुनाये, दिल धड़कता है।
यह कहता है कि पैग़ामे-ज़बानी लेके आया हूँ॥

मरनेपै भी न बन्द हुई चश्मे-मुन्तज़िर।
अब इन्तज़ारकी कोई मुद्दत नहीं रही॥

तुम देखलो ख़ुद हाथ मेरे सीनेपै रखकर।
हाले-दिले-बेताब बयाँ हो नहीं सकता॥

जुदा होनेपै दोनोंका यही मामूल ठहरा है।
वोह हमको भूल जाते हैं, हम उनको याद करते हैं॥

नहीं मालूम किसकी जुस्तजू थी मैं न कुछ समझा।
तुम्हारी याद आई रातको और बार-बार आई॥

झूठे वादे भी नहीं करते आप।
कोई जीनेका सहारा ही नहीं॥

साथ चलने दो मुझे भी रहरवाने-कूये-दोस्त।
कारवाँमें क्या ग़ुबारे-कारवाँ होता नहीं?

हसरतोंका सिलसिला कब ख़त्म होता है 'जलील'!
खिल गये जब गुल तो पैदा और कलियाँ हो गई॥

शाम होते ही कभी जान-सी आ जाती थी।
अब वही शब है कि मर-मरके जिये जाते हैं॥

लाया गुले-मुराद न झोंका नसीमका।
दामन में हर बहारमें फैलाके रह गया॥

यारतक पहुँचा दिया बेताबिये-दिलने मेरे।
इक तड़पमें मंज़िलोंका फ़ासला जाता रहा।

हर वक़्त हैं मौतकी दुआएँ।
अल्लाह रे लुत्फ़ ज़िंदगीका॥

माहो-अंजुमपर नज़र पड़ने लगी।
आपको देखे ज़माना हो गया॥

तुम जो याद आये तो सारी कायनात।
एक भूली-सी कहानी हो गई॥

वादेका नाम लबपै न आये पयाम्बर!
कहना फ़क़त यही कि बहुत दिन गुज़र गये॥

२८ अप्रेल १९५२ ई०]

दिल शाहजहानपुरी

[१८७८ ई० —]

हकीम ज़मीरहसन ख़ाँ 'दिल' शाहजहाँपुरके रहनेवाले है। आपके पिता-का नाम हकीम अहमद हुसेन ख़ाँ था। अरबी-फ़ारसीकी उच्च शिक्षाके साथ ही आपने हकीमीका भी अध्ययन किया। यह पेशा आपका कई पुश्तोंसे चला आ रहा है। १५-१६ वर्षकी उम्रमें शायरीका शौक लग गया, किन्तु कामिल उस्ताद न मिलनेके कारण अधिक प्रगति न कर सके और किसीसे इस्लाह लिये बग़ैर ही शेर कहते रहे, किन्तु उस्तादकी खोजमें बराबर रहे। आख़िर पत्र-व्यवहार द्वारा 'अमीर मीनाई' के शिष्य बनकर उनसे ग़ज़लोंका संशोधन पत्र-व्यवहार द्वारा लेते रहे। फिर रामपुर जाकर उस्तादके दर्शनोंका भी सौभाग्य प्राप्त किया। यूँ आप लखनवी स्कूलके स्नातक हैं, और कहीं-कहीं आपके दीवानमें लखनवी रंगकी झलक मिल जाती है, परन्तु आप प्रारंभसे ही देहलवी रंगके अनुयायी रहे, और उसी रंगमें शेर कहते रहे हैं। आपका पहला दीवान 'नग़मये दिल' छप चुका है। दूसरा दीवान मुद्रणकी प्रतीक्षामें है। 'एतबार उलमुल्क' की उपाधिसे आप विभूषित हैं। 'जलील'की मृत्युके बाद अपने उस्तादके आप पट्ट शिष्य निर्वाचित हुए हैं।

असरे-इश्क़से[1] हूँ सूरते-शमए-ख़ामोश[2]।
यह मुरक्क़ा[3] है मेरी हसरते-गोयाईका[4]॥

---

[1]प्रेम-प्रभावसे; [2]शान्त दीपककी तरह; [3]स्थिति; [4]बोलनेकी अभिलाषाका।

बार-हा डूबके उभरा मेरे दिलका नश्तर।
राज़ फिर भी न खुला इश्क़की गहराईका॥

जब दिलमें दर्दे-इश्क़ उठा हम उछल पड़े।
समझे कि यह करम[1] है किसी दिल-नवाज़का[2]॥

नारसाईका[3] सबब क्या है, यही जौक़ेतलब[4]।
बढ़ गये हम इस क़दर आगे, कि रहबर[5] रह गया॥

यह गोया वाक़याते-बज़्मे-हस्तीका[6] ख़ुलासा है।
तेरा यूँ दफ़अतन[7] ख़ामोश ऐ शमए-सहर[8] होना॥

उधर घबराके ग़मख़्वारोंकी मायूसाना[9] सरगोशी[10]।
उधर बीमारका कुछ कहके सबसे बेख़बर होना॥

जौक़े-जाँबाज़ीमें[11] यह अहसासतक[12] बाक़ी नहीं।
दिलमें पैकां रह गया या दिलको पैकां[13] ले चला॥

आग़ाज़े-तमन्नासे अंजामे-मुहब्बततक।
गुज़री है जो कुछ हमपर तुमने भी सुना होगा॥

क्या सुनायें सरगुज़िश्ते-ज़िन्दगीए-पुरअलम[14]।
आशियाँ अब तो क़फ़स है इससे पहले दाम[15] था॥

---

[1]महर्बानी; [2]सहृदयका; [3]उनतक पहुँच नहीं होनेका; [4]अभिलाषाओंकी इच्छा; [5]मार्ग-दर्शक; [6]ज़िंदगीकी महफ़िलके वाक़यातका; [7]अकस्मात; [8]प्रातःकालीन दीपक; [9]निराशाभरी; [10]कानाफूंसी; [11]मृत्यु-आलिंगन करनेकी धुनमें; [12]चेतना, संज्ञा; [13]तीरका अंश; [14]व्यथासे ओत-प्रोत जीवनकी कहानी; [15]जाल।

दर हक़ीक़त मुजतरिब[1] दिलके लिए वह मौत थी।
इस्तलाहे-आममें[2] तसकीन[3] जिसका नाम था॥

दफ़अतन हम भूल जाते हैं, जो कुछ आता है याद।
हम किसीके सामने ना जाने क्या कहनेको हैं॥

न वोह आरामे-जाँ आया, न मौत आई शबेवादा।
इसी धुनमें हज़ारों बार हम उठ-उठके बैठे हैं॥

नतीजेतक खिचे क्या-क्या उमीदो-यासके[4] नक़्शे।
तलातुममें[5] थी किश्ती, सामने नज़रोंके साहिल[6] था॥
किनारे तक तो पहुँचे गो किसी सूरतसे भी पहुँचे।
तलातुम बहरेग़मके[7] डूबनेवालेको साहिल था॥

रहनुमाकी[8] क्या जरूरत इश्क़ कामिल चाहिए।
दिल जहाँ तड़पे समझ लेना यही है कूए-दोस्त[9]॥

उसे क़लक़ है मेरा हालेज़ार सुन-सुनकर।
यह वक़्त था कोई तदबीर चारा-जू[10] करते॥
निगाहे-शौक़ रही हम ज़बाने-दिल, लेकिन—
किसी तरह न बना शरहेआरज़ू करते॥

राहेतलबमें ठोकरें खानेके बाद।
कहता है इश्क़ तर्के-तमन्ना न कीजिए॥

महवे-जमाल बेख़ुदी मख़मूर हो गये।
यानी क़रीब होके बहुत दूर हो गये॥

---

[1]बेचैन; [2]आम बोल-चालमें; [3]सुख-चैन। [4]आशा-निराशाके; [5]तूफ़ानमें; [6]किनारा; [7]ग़म रूपी दरियाके; [8]पथ-प्रदर्शककी; [9]प्रेयसीका कूचा; [10]चिकित्सक।

किसीकी याद थी आँखोंसे अश्क ढलते थे।
उसी ख़यालमें हम करवटें बदलते थे॥

लरज उठता हूँ अबतक जब वोह शिकवे[1] याद आते हैं।
असर था किस क़यामतका तेरी चश्मे-पशेमाँमें[2]॥

संगेदरे-हबीबको[3] हिस[4] न सही क़बूलकी[5]।
फ़र्क़ न आये ऐ जबीं! हौसलये-नमाज़में॥

नाकामियोंके बाद भी छूटा न हाथसे।
क्या जाने किस ख़यालसे दामाने-आरज़॥

सरे-तूर एक बर्क़े-हुस्न लहराती नज़र आई।
ज़रा शोख़ीसे झटका था किसीने अपने दामाँको॥

कहिये तो कह दूँ अर्शेबरींको[6] मुक़ामे-दोस्त।
हिम्मत मगर कुछ और है अपने ख़यालकी॥

है-है यह बेकसिये-मुहब्बत कि ख़ाके-दिल।
अपनी नज़रके सामने बरबाद हो गई॥

नज़रमें हिम्मते-जलवा अगर नहीं, न सही।
कभी-कभी तेरी आवाज़ ही सुना करते॥
बहार जाम-ब-कफ़ झूमती हुई आई।
शकिस्ते-अहद न करते तो और क्या करते॥

क़ुदरतकी चमन आराईका गो एक असर है दोनों पर।
गुंचे हैं कि हँसते रहते हैं, शबनम है कि पैहम रोती है॥

---

[1]शिकायतें; [2]शर्मसार आँखमें; [3]प्रेयसीके दरवाज़ेके पत्थरको; [4]अनुभव करनेकी शक्ति; [5]प्रार्थना स्वीकार करनेकी; [6]ईश्वरीय स्थानको।

नज़रोंसे निहाँ क्यों रहते हो, जब जान लिया पहिचान लिया।
मनशाए-हिजाब आख़िर क्या है, तुमको तो ख़ुदा भी मान लिया॥

पहले रुदादेदिले-नाकामपर[1] हो इक नज़र।
फिर जहाँसे चाहिए चाके-गरेबाँ[2] देखिये॥

मेरा हाल था जहाँतक वह किया अदा ज़बाँसे।
जो कहेंगे अश्केरंगीं वोह अलग है दास्ताँसे॥
नहीं इम्तयाज़[3] नासेह, तेरी पिन्देबरमहलका[4]।
यह मुक़ामे-बेख़ुदी है मुझे छोड़ दे यहाँसे॥

मेरी ख़ामोशिये मजबूरपै भी एक नज़र।
ज़बाँसे जो न अदा हो वोह माजरा हूँ मैं॥
इस इज़्तराबपै क़ुरबान इक जहाने--सकूं।
कोई सम्भाल रहा है तड़प रहा हूँ मैं॥

हज़रते 'दिल'! कुछ तो कहिये वाक़याते-ज़िंदगी।
हँस दिये हंगामे-गिरिया आप यह क्या राज़ है॥
वोह कौन-सा मुक़ाम था ऐ ज़ब्ते-राज़े-इश्क़!
हम जिन हदोंमें चाके-गरेबाँ न कर सके॥

--निगार जनवरी १९४१ ई०

हुस्ने ख़ुदबींको हुआ और सिवा नाज़े-हिजाब।
शौक़ जब हदसे बढ़ा चश्मे-तमाशाईका॥

यह भीगी रात यह ठण्डा समाँ यह कैफ़े बहार।
यह कोई वक़्त है पहलूसे उठके जानेका?

---

[1]असफल हृदयकी कहानीपर; [2]फटा हुआ गरेबान; [3]-[4]समय-असमय उपदेश देनेका तुझे शऊर नहीं।

वहम बातिल था मगर वोह मंज़रे ऐशो-निशात।
पहलुए-आशिक़में हंगामे-सहर कोई न था।

बहला रहे हैं अपनी तबीयत ख़िज़ां नसीब।
दामनपै खींच-खींचके नक़्शा बहारका॥

हाय वो दिल कि जिसने बेसमझे।
तेरे वादेका एतबार किया॥
वक़्ते-रुख़सत तसल्लियाँ देकर
और भी तुमने बेक़रार किया॥
तेरे मुश्ताक़ और मनज़रे-हश्र।
किस क़यामतका इन्तज़ार किया॥

याद है, हाँ याद है तर्ज़े-निगाहे-मस्तेयार।
एक ताज़ा पंखड़ीसे पारा-पारा दिल हुआ॥
चलते-चलते किस नज़रसे उसने देखा क्या कहूँ?
दिलके अफ़सानेमें इक टुकड़ा नया शामिल हुआ॥

उसकी हिम्मत, अब अगर पामाल कर डाले कोई।
ख़ाक हो जाना मुहब्बतमें हमारा काम था॥

हुज़ूरेयार शिकवोंका तो क्या ज़िक्र?
गराँ है मुद्दआए-दिल ज़बाँपर॥

उफ़रे जूनूंका जोश कि तलवोंके आबले।
दीवाना वार टूट पड़े नौके-ख़ारपर॥
तू ही निगाहे-शौक़कर इज़हारे-आरज़ू!
जो दिलमें है वोह आ नहीं सकता ज़बानपर॥

छेड़ती है अबस हवाये-चमन।
अब कहाँ हममें हिम्मते-परवाज़॥

वोह बाँकपन, वोह शोख़ अदाएँ कि अलअमाँ।
नावक बरस रहे हैं, कहाँ बचके जाये दिल॥

किस क़दर दिलचस्प होगा मंजरे-नाजो-नियाज[1]।
तीर बरसायेगा कोई फूल बरसायेंगे हम॥
अदाये-हुस्ने-दिलकश हूँ, नियाजे-इश्क़े कामिल हूँ।
कहीं मैं निकहते-गुल[2] हूँ, कहीं शोरे अनादिल[3] हूँ॥
एक ही नूरसे हों ज़ाहिर-ओ-बातिन रोशन।
तेरा अन्दाज़ निगाहोंमें रहे तू दिलमें॥
हम उट्ठे हैं तो उट्ठे हैं, ग़ुबारेराहकी सूरत।
जो बैठे हैं तो महवे-शोखिये-रफ़्तार बैठे हैं॥
अब तड़पनेमें तकल्लुफ़ है, न तड़पानेमें।
इश्क़ने दर्द भरा है मेरे अफ़सानेमें॥

—छानबीन

बेड़ियाँ जब कट चुकीं क्या जाने क्या आया ख़याल।
हमने आहे-सर्द खींची सूये-ज़िंदाँ[4] देखकर॥
मेरी तमन्ना वोह दायरा है, न जिसका अव्वल न जिसका आख़िर।
कि जिन हदोंसे गुज़र चुका था उन्हीं हदोंमें फिर आ रहा हूँ॥
इसी सिलसिलेमें ग़ुज़र गये कई दौर मंज़िले इश्क़के।
कभी रहनुमाकी ख़बर नहीं, कभी रहनुमाकी तलाश है॥
रोज आ-आकर तसल्ली दिलको दे जाता है कौन?
कुछ समझमें ही नहीं आता कि समझाता है कौन॥
सीनये मजरूहसे[5] ऐ चारागर[6]! पैकाँ[7] न खींच।
ना-शनासे-राज़[8] यह टुकड़ा तो मेरे दिलका है॥

—निगार सितम्बर १९५१ ई०

१ मई १९५२]

---

[1]परस्पर प्रेम का दृश्य; [2]फूलकी सुवास; [3]बुलबुलोंका शोर; [4]बन्दी-गृहकी तरफ; [5]घायल हृदयसे; [6]चिकित्सक; [7]तीर; [8]भेदसे अनभिज्ञ।

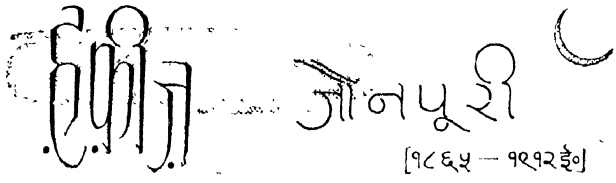

[१८६५ — १९१२ ई०]

हाफ़िज़ मुहम्मदअली 'हफ़ीज़' जौनपुरके रहनेवाले थे। आपको स्कूली जीवनमें ही शायरीका चस्का लग गया था। १८८३ ई० में आप व्यवसायके लिए पटना चले गये, उन दिनों वहाँ मुशायरोंकी धूम रहती थी। आपकी भी प्रवृत्ति जाग उठी और मुशायरोंमें शिरकत फ़रमाने लगे। १८८९ ई० में आप बाक़ायदा 'वसीम' अज़ीमाबादीके शिष्य हो गये और कुछ अरसेके बाद 'वसीम' साहबकी अनुमतिसे अमीरमीनाईकी शिष्य मण्डलीमें सम्मिलित हो गये। मृत्यु सन् मालूम न हो सका। १९११ ई० तक आप जीवित थे।

कलीम ग़शमें घड़ी-दो-घड़ी रहे होंगे।
यहाँ तो जाके न फिर होश उम्र भर आया॥
किया है दस्ते-तसल्लीने काम मरहमका।
धरा जो हाथ, मिटा दर्द ज़ख़्म भर आया॥

काम छोटोंसे निकलता है बड़ा।
यह सबक़ भी आँखके तिलसे मिला॥

इसियाँके[1] दाग़ मिट गये दिल पाक हो गया।
टपके जो अश्क नामये-ऐमाल[2] धो गया॥

---

[1]पापोंके; [2]भाग्यलेखा।

दुश्मन न था शबाब तो नादान दोस्त था।
बदनाम कर गया मुझे, बदनाम हो गया॥
मसरूफ़[1] कब हुए है वोह फ़िक्रे-इलाजमें।
जब दाग़े दिल कलेजेका नासूर हो गया॥

दमे-रुख़सत तो मिल लेते गले आप।
तड़पता छोड़कर मुझको चले आप॥

दिल साफ़ न हो तो क्या सफ़ाई।
इस मेलसे ख़ूब थी लड़ाई॥
हैं किसीके ख़यालसे बातें।
यूँ पसंद आ गई है तनहाई॥

आदमीसे जो मोहब्बतमे न हो थोड़ा है।
इतनी-सी जानपै हिम्मत है यह परवानेकी॥
शमअ सर धुनती है, रोती है खड़ी बालींपर।
ज़िंदगीसे कहीं मौत अच्छी है परवानेकी।

जो आबरू रही तरदामनोंकी हश्रमें शेख!
तो पानी-पानी तेरी पाकदामनी होगी॥

अदा परियोंकी, जोबन हूरका, शोख़ी ग़ज़ालोंकी[2]।
ग़रज़ माँगेकी हर इक चीज़ है इन हुस्नवालोंकी॥

मज़ा है जोशे-जवानीमें पारसाईका।
वोह नाख़ुदा है जो कश्ती बचाये तूफ़ाँसे।

—ख़ुमख़ानये-जावेद भाग २

---

[1]दत्तचित्त, व्यस्त; [2]हरिनोंकी।

यह कहकर जिस्मका पुश्तारा फेंका रूहने आख़िर—
"मेरे सर मुफ़्तकी आठों पहर बेगार कैसी[1] है?"

तू कहे मुझसे बिगड़कर—"तुझे हम क्या जानें?"
मैं कहूँ तुझसे लिपटकर—"तुझे हम जानते है।"

हम भूले हुए राह है, ऐ काबानशीनों!
जाते थे कहीं और निकल आये कहीं और॥
ईमा है कि लोटा ही करें, ख़ाकपै उश्शाक़[2]!
मंशा है कि हमवार[3] हो कूचेकी ज़मीं और॥
जाते हैं मिटाते हुए वोह नक़्शे-क़दमको।
कहदे कोई उनसे कि है इक ख़ाकनशीं और॥

बहुत रह चुके हज़रतेग़म यहाँ।
करम[4] करते और कोई घर देखते॥
महे-नौका[5] नज़्ज़ारा तेरे होते।
बहुत चूकी, बहुत चूकी, नज़र आज॥

उनकी नज़रोंमें जँची कुछ भी न यूसुफ़की शबीह।
मुँह बनाकर यह कहा—"हाँ ख़तो-ख़ाल अच्छा है"॥
दर्देदिल सुनके मेरा समझे फ़साना है कोई।
बोले—"रुकिये न, कहे जाइये, हाल अच्छा है"॥

हँसी है उनको हर सूरतसे दिल क़ाबूमें कर लेना।
बिगड़कर, मुसकराकर, गर्म होकर, महरबाँ होकर॥

---

[1]इस मशक़्क़तसे उसे ख़ाक न होगा हासिल।
रूह क्यों जिस्मकी बेगार लिये फिरती है?
—तसलीम

[2]आशिक़; [3]बराबर; [4]दया; [5]चन्द्रमाका।

आशोबे-जहाँ, आफ़ते-जाँ, फ़ितनये-दौराँ।
देखे वोह तुझे जिसने क़यामत नहीं देखी॥

क्या तमाशा है जो करते हैं वोह वादा वस्लका।
दिल यह कह देता है चुपकेसे—"रहे जब याद भी"॥

आहो-फ़ुग़ाँसे बनगई बुलबुलकी जानपर।
और गुल वोह हैं कि जूं कभी रेंगी न कानपर॥
इन्कारका गुमाँ है न इक़रारका यक़ीं।
यह बात ख़त्म हो गई, उनकी ज़बानपर॥

क़यामतका मुझे डर क्या, जो कल आती है, आज आये।
तुम्हारे साथकी खेली है, मेरी देखी भाली है॥

एक दिल उसमें लाख ज़ख़्मे-फ़िराक़।
टूटा-फूटा मकान है गोया॥
दिलमें कैसे वोह बेतकल्लुफ़ हैं।
उनका अपना मकान है गोया॥

मुख़्तसर हाले-ज़िन्दगी यह है।
लाख सौदा था और इक सर था॥
उनकी रुख़सतका तो दिन याद नहीं।
यह समझिये कि रोजे-महशर था॥
ख़ाक बनती मेरे-तेरे दिलमें।
एक शीशा था, एक पत्थर था॥

दीदये-मुन्तज़िरमें[1] ख़्वाब नहीं।
कोरे दो जाम हैं, शराब नहीं॥

---

[1]प्रतीक्षित नेत्रोंमें ।

गर्मीका ज़माना हो कि जाड़ोंका ज़माना।
हमने कभी छोटी शबे-फ़ुरक़त नहीं देखी॥
नासह मेरा जी होश है, दीवाना नहीं है।
बात इतनी है उसने तेरी सूरत नहीं देखी॥
यह कहके चाँदनीमें किया उनको बेनक़ाब—
"छुपता नहीं है हक़ कभी बातिलके सामने॥"

बहार आनेमें सब लेते हैं रस्ता बाग़ो-सहराका।
जो कुछ भी होश रखता है, सुये-मैख़ाना आता है॥
यह वस्फ़ेख़ास मए-ख़ुशगवारमें देखा।
ख़ुशीमें यार भी है, ग़ममें ग़ममुसार भी है॥

उठ गया क़ैस जो सहरासे तो आई आवाज़—
"अपने घरको तो न वीराना बनाया होता॥"

कह दो यह कोहकनसे कि मरना नहीं कमाल।
मर-मरके हिज्रे-यारमें जीना कमाल है॥

आपके दमसे यह शीराज़ा बँधा है वरना।
मैं कहीं, होश कहीं, और कहीं दिल होता॥

मैं अपने होशमें ऐ फ़ित्नागर नहीं, न सही।
तेरी ख़बर तो है, अपनी ख़बर नहीं, न सही॥

नामये-यार फिर मैं देखूँगा।
देखलूँ पहले नामाबर तुझको॥

उन मरीज़ोंमें मेरे ईसाने रक्खा है मुझे।
जिनके हक़में दर्द अच्छा है, दवा अच्छी नहीं॥

सरज़मीने-कूएजानाँ हाय क्या दिलचस्प है।
बेक़रारी बैठने देती तो दमभर बैठते॥

कौन है बज़्मके क़ाबिल बोह समझ जाते है।
सब निकाले गये, परवाने निकाले न गये॥

क्या ख़बर थी इश्क़के बाज़ारमें।
दिल-सी शै भी देखी-भाली जायगी॥
देखते हैं ग़ौरसे मेरी शबीह।
शायद इसमें जान डाली जायगी॥

ऐ होश! तुझको आनेसे मैं रोकता नहीं।
साक़ीको तेरे आनेकी लेकिन ख़बर न हो॥

गुल हो कि ग़ुंचे सब यह मुसाफ़िर चमनमें हैं।
कोई है दूर कोई है मंज़िलके सामने॥

हाज़िर न हो हुज़ूरमें किसकी है यह मजाल।
आप आइये तो, आपमें हम आये जाते है॥

न ख़ुशी अच्छी है ऐ दिल! न मलाल अच्छा है।
यार जिस हालमें रक्खे वही हाल अच्छा है॥

दिलको रियासे पाक रख, काम दिखावेका न कर।
जीमें अगर ख़ुदा नहीं, मुँहसे ख़ुदा-ख़ुदा न कर॥

'हफ़ीज़' जौनपुरी भी अपने उस्ताद-भाइयोंकी तरह 'दाग़'की रीस करनेवाले थे। उन्होंने लखनवी रंगको तर्क करके, मीर, आतिश, जलाल, दाग़, जैसे ख्यातिप्राप्त उस्तादोंके रंगका अनुसरण किया है और किसी हदतक सफल भी हुए हैं, चुनांचे फ़रमाते हैं—

शेर हर रंगमें कहना है तेरा काम 'हफ़ीज़'।
आज हम मान गये, मान गये, मान गये॥
छोड़िये तर्ज़े-कुहन अब ऐ 'हफ़ीज़'!
शायरीका है मज़ा ईजादमें॥

'मीर'के अन्दाज़पर किसने ग़ज़ल लिक्खी 'हफ़ीज़'!
मुझको ज़ेबा है अगर इस बातका दावा करूँ॥

आपके यहाँ आतिशकी फ़क़ीराना शानकी झलक भी मिलती है—

अजब नहीं है कि हों छोटी ताअ़तें मक़बूल।
कनीज़ें होती हैं शाहोंको ख़ुर्द साल पसन्द॥
किसीमें है यह सिफ़त? जाऊँ किसके दरपर मैं।
करीम तेरे सिवा है कोई सवाल पसन्द॥
'हफ़ीज़'! जाहो हशमसे किसीके क्या मतलब?
फ़क़ीर मस्त हूँ, अपना है मुझको माल पसन्द॥

ऐ क़नाअ़त तेरी मुट्ठीमें है उनकी आबरू।
शर्मसे बहरे दुआ जो हाथ उठ सकते नहीं॥
चार दिनके निशान हैं दोनों॥
जहादे नफ़्सकी[1] सर हो[2] मुहिम[3] तो क्या कहना?
जहे नसीब मिले मर्तबा जो ग़ाज़ीका।
रहके दुनियामें कोई काम न उक़्बाका[4] किया।
यूँ सफ़रमें है कि कुछ ज़ादे-सफ़र[5] पास नहीं॥

देखिये तो हर इक जगह है वोह।
ढूँढ़िये तो कहीं नहीं मिलता॥

इबादत हुई, कुछ न ताअ़त हुई।
फ़क़त अब करमका सहारा रहा॥

---

[1]इन्द्रिय-दमनका युद्ध; [2]विजय हो; [3]लड़ाई; [4]परलोकका; [5]मार्ग-व्यय।

अनलहक़ जो मंसूरने कह दिया।
उधर ही का तो यह इशारा रहा॥
दुनियाका कारख़ाना है इक तिलस्मे-इबरत।
दौलत जहाँ गड़ी थी मुर्दे वहाँ गड़े हैं॥

कहीं-कहीं जलालका रंग झलकता है—

कोसकर क्या जिता गये अहमाँ।
यह दुआ सबको दी नहीं जाती॥
काश इक दिन वोह भूलकर आता।
याद जिसकी कभी नहीं जाती॥

और 'दाग़' की रवानी, तीख़ापन, शोख़ी और शरारत तो उनके कलामकी ख़सूसियत है—

"मेरा दिल आ गया है इक हसींपर।"
यह सुनना था कि वोह बोले "हमींपर"॥

यह फ़िक़रे, यह चालें, यह बातें, यह घातें।
तुझे ओ दग़ाबाज! हम जानते हैं॥

मिली है हिम्मतेआली वोह बादानोशोंको।
मिले बहिश्त तो दे दें यह मयफ़रोशोंको॥

या तो बिगड़े हुए तेवर मेरे पहचान गये।
या वोह कुछ बात हो ऐसी थी कि झट मान गये॥

कभी था वस्लका इक़रार हमसे।
करें तो आप आँखें चार हमसे॥

तेरा रास्ता शामसे तकते-तकते।
मेरी आस टूटी सहर होते-होते॥

लगाओ दिल किसीसे हज़रते नासह तो खुल जाये।
मुहब्बत इसको कहते हैं, मुहब्बत ऐसी होती है॥

यह आज आते ही जानेकी तुमने ख़ूब कही।
हँसे न थे कि रुलानेकी तुमने ख़ूब कही॥

दिलके आनेको यह लिख रखिये शिनासत।
पहले चेहरेकी बहाली देखिये॥

अभीसे सोच-समझ लो, नहीं तो हश्रके दिन।
मेरे सवालका तुमसे जवाब हो कि न हो॥

तुम अपना शबाब, अपनी सूरतको देखो।
मेरी आरज़ू, मुद्दआ कुछ न पूछो॥

ख़ैर मुझमें वफ़ा नहीं, न सही।
यह तो फ़रमाइये कि है किसमें?

ज़बाने-ग़ैरमें की गुफ़्तगू हमीं चूके।
वोह कह उठे—"यह शरीफ़ोंकी बोल-चाल नहीं॥"

शेख़ बरसातमें जाकर लबे-जू पीते हैं।
क़िब्ला—रू बैठते हैं, करके वज़ू पीते हैं॥

मेरे शबाबकी तौबापै जा न ऐ वाइज़!
नशेकी बात नहीं एतबारके क़ाबिल॥

अभी जीना पड़ा कुछ दिन हमें और।
टला फिर वादये बातिल—किसीका॥

मीरका रंग—

क़फ़स क्या नशेमनसे कुछ दूर था।
मगर रह गये बालो-पर देखकर॥

बैठे-बैठे रास्ता क़ासिदका दिनभर देखना।
तारे गिनना शामसे या जानिबे-दर देखना॥

जिस रोज़ रुका नामा-ओ-पैग़ाम तुम्हारा।
मर जायगा ले-लेके कोई नाम तुम्हारा॥

हम कबके मर चुके थे जुदाईमें ऐ अजल!
जीना पड़ा कुछ और तेरे इन्तज़ारमें॥

बावजूद इसके उस्तादकी बोली भी बोलते रहे हैं—

अल्लाहरे उनके फूलों-से गालोंकी ताज़गी।
धूप आईनेकी देखके कुम्हलाये जाते हैं॥
शोख़ चश्मोंको वही ख़ाक हुए पर भी है ज़िद।
घास आहू मेरे तुरबतकी चरे जाते है॥
फ़स्ले-गुल आते ही पर लग गये वहशतको मेरी।
तख़्तपर ले उड़ी परियाँ तेरे दीवानेको॥
कहाँ किसके मातममें यह रात गुज़री।
कलाईके गजरे जो मुरझा रहे हैं॥

चन्द तुलनात्मक—

आतिश— सफ़र है शर्त मुसाफ़िर नवाज़ बहुतेरे।
हज़ार-हा-शजरे सायादार राहमें हैं॥
हफ़ीज़— साया बहुत मिलेगा दरख़्तोंका राहमें।
घरसे निकलके धूपमें कुछ दूर जलके चल॥
जलाल— पीनेसे काम रखते हैं, रिन्दे-सियाह मस्त।
कम्बल ही तान लेंगे जो अब्रे-करम नहीं॥
हफ़ीज़— फ़क़ीरेमस्त किसी फ़स्लके नहीं पाबन्द।
पियेंगे तानके कम्बल सहाब हो कि न हो॥

दाग़— बात करनी तक न आती थी तुम्हें।
यह हमारे सामनेकी बात है॥
हफ़ीज़— मेरे सामने आज बातें बनाना॥
ज़बाँको थी लुकनत यह है बात कलकी॥

दाग़— अपनी तसवीर पै नाज़ां हो तुम्हारा क्या है?
आँख नरगिसकी, दहन ग़ुंचेका, हैरत मेरी॥
हफ़ीज़— अदा परियोंकी, सूरत हूरकी, आँखें ग़ज़ालोंकी।
ग़रज़ माँगेकी हर इक चीज़ है इन हुस्नवालोंकी॥

—शेरउलहिन्द पहला भाग

१२ अप्रैल १९५३]

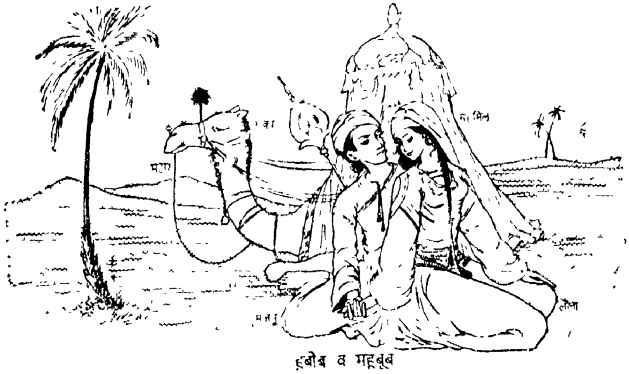

हबीब व महबूब

सरशार लखनवी

[१८४०—१९०३ ई०]

पण्डित रतननाथ दर 'सरशार' काश्मीरी ब्राह्मण थे, और १८४० ई० के लगभग लखनऊमें पैदा हुए थे। अभी आप पूरे चार वर्षके भी न हो पाये थे कि आपके पिता पं० बैजनाथ दरका साया आपके सरसे उठ गया। रिवाजके अनुसार अरबी-फ़ारसीकी तालीम पाई। बादमें अंग्रेज़ी शिक्षा भी प्राप्त की। प्रथम खेरी स्कूलमें शिक्षक नियत हुए।

उन्हीं दिनों लखनऊसे 'अवधपंच' हास्यरसका पत्र प्रकाशित होने लगा था। 'सरशार' बचपनसे ही शोख़ और चंचल थे। अपनी तबियतके अनुकूल पत्रका प्रकाशन देख आपका दिल भी लिखनेको मचल पड़ा। फिर क्या था, एक-से-एक निराले मज़मून क़लमसे निकलने लगे। चन्द माहमें ही आपकी ख्याति इतनी फैली कि मुंशी नवलकिशोरने १८७८ ई० में हास्यरसका 'अवध' पत्र प्रकाशित किया तो उसके संपादनपदपर आपको ही प्रतिष्ठित किया गया।

प्रतिद्वन्द्वी पत्रके प्रकाशित होनेपर 'अवधपंच'का धैर्य छूट गया और उसने 'अवध' पर छींटा-कशी शुरू कर दी। सरशार कब दबनेवाले थे, वोह दन्दान-शिकन जवाबी हमले किये कि कुछ न पूछिये। पढ़नेवाले लहालोट हो गये।

उन्हीं दिनों आपने अपनी अमर कृति 'फ़सानये-आज़ाद' धारावाही

रूपसे 'अवध' में प्रारंभ कर दी। 'फ़सानये-आज़ाद' से पूर्व उर्दूमें परियों, जिनों आदिकी कहानियाँ प्रचलित थीं। स्वप्नमें भी ऐसे कथा-साहित्यका किसीको आभास न था। एक दो अंक निकलते ही धूम मच गई और समस्त उर्दू-संसार वाह-वाह कर उठा। और लोगोंकी उत्सुकता यहाँतक बढ़ी कि यह क्रम कई वर्षतक 'अवध' में 'सरशार' को चलाना पड़ा। फिर भी लोगोंकी यही इच्छा रही कि 'फ़सानये-आज़ाद' का सिलसिला बराबर जारी रहे। बादमें यह वृहदाकार उपन्यास बड़े साइज़के ५ भागोंमें पुस्तकाकार भी प्रकाशित किया गया।

'फ़सानये-आज़ाद' उर्दू गद्यकी अमूल्य निधि है। 'सरशार'से पहले इस तरहकी रंगीन गुलाबी उर्दू लिखना कब किसीको नसीब हुआ? तत्कालीन रीति-रिवाज, वेष-भूषा, बोल-चाल, रहन-सहन, खान-पान, हुस्नो-इश्क़, वस्लो-हिज्रका ऐसा दिलकश और हू-ब-हू चित्रण किया है कि मिसाल नहीं मिलती। उस समयके विलासी, अकर्मण्य और अक़्लसे ख़ारिज नवाबों-रईसोंकी पतनोन्मुख दशाके, मुसाहबोंकी ख़ुशामद-परस्तीके, बेग-मातके तौर-तरीक़ोंके, आवारा और शोहदोंके लुचपनके, बिगड़े दिलोंकी तीतर-बटेर-पतंगबाज़ीके मुंह बोलते ऐसे रेखाचित्र खींचे हैं कि दाद देनेको उपयुक्त शब्द नहीं मिल पा रहे हैं।

लफ़्ज़ोंकी तराश, मुहाविरोंकी सफ़ाई, उदाहरणों-उपमाओंकी छटा, थिरकते शब्द, फ़ड़कती हुई भाषा, बयानकी शोख़ी, अछूते मज़ामीन, हाज़िर जवाबीके कमाल, सब पढ़नेसे ही संबंध रखते हैं।

गद्यके साथ-साथ आपको शायरीका भी शौक़ था, और आप अमीर मीनाईके शिष्य थे, किन्तु जो कमाल आपको गद्य लिखनेमें था, वह शायरीमें हासिल नहीं हुआ। कभी-कभी मनबहलावको शायरी भी कर लिया करते थे। आप गद्य-लेखकके नाते ही प्रसिद्ध भी हैं। यहाँ अमीर मीनाईके शिष्योंके प्रसंगमें आपका उल्लेख आवश्यक हुआ, इसीसे बतौर नमूना चन्द अशआर 'ख़ुमख़ानये-जावेद'से दिये जा रहे हैं।

जीवनके अंतिम दिनोंमें आप लखनऊ छोड़कर हैदराबाद दकन चले गये थे। जहाँपर महाराजा किशनप्रसाद 'शाद' प्रधान मन्त्री हैदरावादने आपकी ख़ूब आव-भगत की और सम्मानपूर्वक अपने यहाँ रखा। लेकिन सुरापानकी अधिकताके कारण आप अस्वस्थ होते चले गये और ५५-५६ वर्षकी आयुमें ही १६०३ ई० में स्वर्गवासी हो गये। आपके निधनपर किसीने यह तारीख़ कही थी—

'सरशार' फ़ज़ीह-ओ-नुक्तापरवर न रहा।
सरमाय-ए-नाज़ अहले जौहर न रहा॥
एजाज़े क़लमके जिसके सब क़ायल थे।
वोह नस्त्रका उर्दूकी पयम्बर न रहा॥

चन्द शेर

सियाहबख़्त[1] सियह-रोज़गार हम भी हैं।
जवाबे-ज़ुल्फ़े-परेशानेयार हम भी हैं॥

क्या क़हर है कि मुफ़्तमें बुलबुल तो क़ैद हो।
गुलचीं जो फूल तोड़े, उसे कुछ सज़ा न हो॥
उस बुलबुले-असीरकी हालतपै रोइये।
जो फ़स्ले-गुलमें बन्दे-क़फ़ससे रिहा न हो॥

बुतोंके दरपै सबकी जिबहसाई[2] होती जाती है।
इन्हींके क़ब्ज़ेमें अब तो ख़ुदाई होती जाती है॥
सुना है आज गर दरबाँने तो कल वोह भी सुन लेंगे।
मेरी बातोंकी अब उनतक रसाई होती जाती है॥
शिकायतपर कुदूरतकी[3] दिखाते हैं वोह आईना।
इशारा है कि अब दिलमें सफ़ाई होती जाती है॥

---

[1]अभागे (काले कुदिनवाले); [2]गर्दनें झुकतीं; [3]द्वेष-भावकी।

दिल लोट गया सुनते ही गुफ़्तार किसीकी।
सुनता ही नहीं अब वोह मेरा यार किसीकी॥

ऐ शेख़ ! तुझे ख़ुदाकी सौगन्द।
रिन्दोंकी गर्दमें बान्धले बन्द॥
ले मुँहसे लगाले जामेबादा।
इक बून्द ही पी, न पी ज़ियादा॥

१६ अप्रेल १९५३]

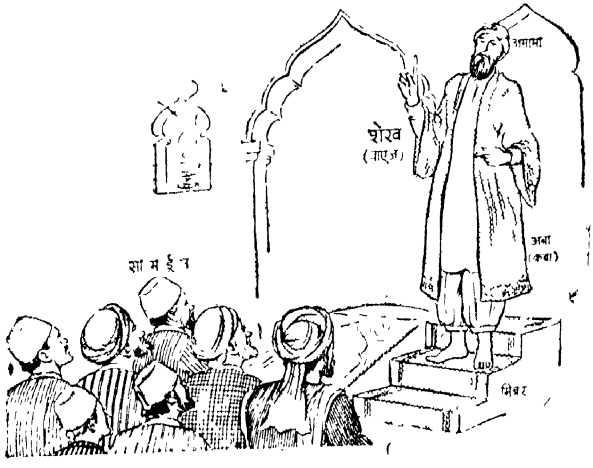

पं० जगमोहन नाथ रैना 'शौक'

[१८६३ ई० ....]

पण्डित जगमोहननाथ रैना साहब 'शौक़' काश्मीरी ब्राह्मण हैं। आप इन्दौरमें जुलाई १८६३ में उत्पन्न हुए और १८९० ई० से १९२० ई० तक उत्तरी भारतमें डिप्टी कलेक्टर रहे। १९२० के बाद पेन्शन ली और आजकल अपने सुपुत्र चन्द्रमोहन रैना तहसीलदारके साथ शाहजहाँपुरमें रहते हैं।

आपको शायरीका शौक १८८४ ई० में हुआ, और तत्कालीन लखनवी रंगके ख्यातिप्राप्त उस्ताद 'अमीर मीनाई' से मशवरये-सुख़न लेते रहे। लेकिन वोह कलाम आपका नष्ट हो गया। १९०१ से १९१५ तक आप कार्याधिक्यके कारण इस ओर ध्यान ही न दे सके। १९१६ से इस ओर पुनः प्रवृत्ति हुई। आपका 'पयामे शौक़' ग़ज़लोंका संकलन हमारे समक्ष है। इसमें १९१६ से १९४० तक कही गई २६९ ग़ज़लें दी गई हैं।

आपका कलाम लखनवी रंगके कंघी, चोटी, अँगिया-मिस्सीसे अछूता है फिर भी अमीर मीनाईके स्कूलकी छाप यत्र-तत्र नज़र आती है। आपकी भाषा सरल और प्रवाहयुक्त है। इश्क़िया कलामके साथ तसव्वुफ़की चाशनी भी ख़ूब है। डिप्टी कलेक्टरीकी पेन्शन लेते हुए और तहसीलदारके पिता होते हुए भी १९३० के असहयोग आन्दोलनके समय आपका देशभक्त हृदय यह कलाम कहनेसे बाज़ न आया—

जाँगुज़ीं कबसे है दिलमें जज़्बये-हुब्बेवतन।
दोस्तो रोज़े-अज़लसे मैं वफ़ादारोंमें हूँ॥
बादये-हुब्बेवतन मुझको पिलादे साक़िया!
बिन पिये मुद्दत हुई मैं तेरे मयख़्वारोंमें हूँ॥

यद्यपि आपका १९१६ से १९४० तक कहा हुआ यह कलाम हमें शायरी के नयेदौरमें देना चाहिए था, किन्तु शौक़ साहब अमीर मीनाईके शिष्य हैं और कलाम भी उसी युगका है, अतः इसी खण्डमें देना उपयुक्त समझा गया।

पड़े हैं मस्तमतवाले न कहते हैं न सुनते हैं।
नई बस्ती नया आलम है यह शहरे-ख़मोशाँका[1]॥

ख़ुदाईका है दावा इन बुतोंको देखिये क्या हो?
इधर भी एक सजदा आओ बहरे-इम्तहाँ कर लें॥

कुजा बुतख़ाना-ओ-काबा, कुजा ख़ुम ख़ान-ओ-साक़ी?
कहाँसे 'शौक़' शौक़ेदीद लाया है कहाँ मुझको?
रफ़्ता-रफ़्ता ता-दरेजानाँ बैठते-उठते यूँ पहुँचे।
ठोकरें खाते गिरते-पड़ते सुबह-से-ता-शाम चले॥

ख़ूं शुदा दिलको जलाते हैं, जलानेवाले।
आग पानीमें लगाते हैं, लगानेवाले॥

किस क़दर दिलचस्प थी रूदादे-'शौक़'।
सारे आलममें कहावत हो गई॥

दैरको[2] आओ चलें इक ठिकाना है वही।
मिल ही जायेगा वहीं कोई तो रहबर[3] अपना॥

---

[1]क़ब्रिस्तानका; [2]मन्दिरको; [3]पथप्रदर्शक।

शोलये-शमअने[1] उठ-उठके जलाया आख़िर।
'शौक़' यह हश्र हुआ बज़्ममें परवानेका॥

बुतकदा छोड़ते तो छोड़ दिया।
अब ठिकाना नज़र नहीं आता॥
हम ढूँढने गये तो सनमख़ाना मिल गया।
तुझको तलाशसे भी न वाइज़! ख़ुदा मिला॥

कैसा बुतख़ाना, कहाँका दैर, कैसी ख़ानक़ाह[2]।
जिस जगह सजदा किया हमने वोह काबा हो गया॥

ज़रा जो भरके उसको देख लेता मैं दमे-आख़िर।
नज़र आता क़फ़ससे काश मुझको आशियाँ अपना॥

बनाया सजदागाहे-हुस्न हमने दैरो-काबेको।
वही जलवा है दोनों जा, इधर आ देखनेवाले॥

किसीका जलवागहेनाज़[3] जब नज़र आया।
सरे-नियाज़ वहींपर झुका दिया हमने॥

रह-रहके पूछते हैं यही बाग़बाँसे हम।
ले जायें चार तिनके कहाँ आशियाँसे हम॥

जाते काबेमें बुतपरस्तीको।
यह भी इक फ़र्ज़ था, अदा करते॥

बुतकदा छोड़नेवाले तो न थे।
ख़ैर मिलती है तो जन्नत ही सही॥

---

[1]दीपककी लौने; [2]दरगाह; [3]सौन्दर्य्य स्थल।

न पूछो हम सफ़ीरानेचमन! मैं कौन हूँ क्या हूँ।
ग़रज़ जो कुछ हूँ इक साज़े-शिकस्ताकी सदा मैं हूँ॥

सब पूछते हैं, शहरे-ख़मोशाँमें कौन हो?
हैराँ हैं क्या बतायें मुसाफ़िर कहाँके हैं॥

मुल्के-अदमको क़ाफ़िले जाते हैं रात दिन।
ज़ाहिर मगर किसीके निशाने-क़दम नहीं॥
रस्ता तो उधरका पूछ लेते।
ऐ मुल्के-अदमके जानेवालो॥
इसीको इन्तहाये-इश्क़ क्या ऐ 'शौक़'! कहते हैं।
कि मुझको ख़ुद नहीं मालूम क्या है आरज़ू मेरी॥

अपनी ही ख़बर नहीं है हमको।
बेकार किसीकी जुस्तजू है॥
इलाजे दर्देजिगर चारासाज़ रहने दे।
मज़ा इसीमें है सोज़ो-गुदाज़ रहने दे॥

पता किससे पूछें कि मंज़िल कहाँ है।
कहाँतक मुसाफ़िर भटकता रहेगा॥

कुछ बताते ही नहीं शहरे ख़ामोशाँवाले।
क्यों पसन्द उनको यह उजड़ा अदम आबाद आया॥

अब उसकी जुस्तजू क्या है न जाने वोह कहाँ पहुँचा?
निशाने-कारवाँ मंज़िल-ब-मंज़िल देखनेवाले॥

आँखों-आँखोंमें वह क्या कुछ कह गये।
लबपै आते ही गिला जाता रहा॥

इक 'नहीं' ने बात सारी काट दी।
लुत्फ़े-अर्ज़े-मुद्दआ जाता रहा॥

जामे-दिल बादये-उल्फ़तसे भरा रहता है।
वाह क्या ज़र्फ़ है टूटे हुए पैमानेका॥

नातवानी तुझे अब कोई कहाँतक रोये।
ज़ोफ़से नालये-बेताब भी लरज़ाँ निकला॥

अज़लसे पहले गर हुस्ने-अज़ल मिलता तो मैं कहता।
ज़रा-सी वहशते-दिल और दीवानेमें रख देना॥

दिलसे पूछो क्या हुआ था, और क्यों ख़ामोश था।
आँख महवेदीद थी इतना मुझे भी होश था॥

दिखाके जलवये-बातिलकी इक झलक ऐ हुस्न!
ख़ुदाके बन्देको नाहक़ गुनाहगार किया॥

न जाने क्या समझकर मैं दरे-मस्जिदतक आया था।
यह किस धोकेमें मैंने भी जबीं आकर यहाँ रख दी॥

हर शयमें तेरा नक़्शा हर गुलमें तेरा जलवा।
इन आँखोंके खुलते ही क्या-क्या नज़र आता है॥

रहा जब मुद्दतों दैरो-हरममें।
समझमें आई बहकाया गया हूँ॥

आये थे रोते हुए हम आलमे-ईजादमें।
वाक़िफ़े-राज़े-निहाँ थे सिर्फ़ गोयाई न थी॥

नसीमे-सुबहको शिकवा है मेरे नालोंसे।
ख़मोश गुंचोंको क्यों गुदगुदा दिया मैंने॥

दिल अगर हो मुतमइन तो फिर कोई मुश्किल नहीं।
दूर हो जाती है उलझन ख़ुद सुलझ जानेके बाद।
इज़्तराबे-दिलकी हालत, हमनशीं मुझसे न पूछ।
इक नया अफ़साना छिड़ जाता है अफ़सानेके बाद॥

दिनको तारे दिखा दिये तूने।
ऐ शबे-इन्तज़ार क्या कहना॥

१८ जुलाई १९५२]

प्रूफ़ देखते-देखते विदित हुआ कि आपका स्वर्गवास हो चुका है। खेद है कि पत्र लिखने पर भी आपकी मृत्यु-तारीख़ हमें आपके सुपुत्रसे मालूम न हो सकी।

[१८७८—१९५१ई०]

सैयद अहमद 'नातिक़' मुहम्मद अब्दुल बशीर 'वास्ती' बिलगरामीके पुत्र थे। आपके पूर्वज बग़दादसे भारत आये थे। नातिक़ १८७८ ई० में लखनऊमें जन्मे और वहीं शिक्षा प्राप्त की। यूनानी हिकमतका पेशा करते थे। खेद है कि पूर्वी पाकिस्तानके चटगाँवमें १९५१ ई० में आपकी मृत्यु हो गई। आप ग़ज़लके माने हुए उस्ताद थे।

आपके स्वयं के पसन्दीदा अशआर निगार जनवरी १९४१ में छपे थे, उनमें से चन्द यहाँ साभार दिये जा रहे है—

अपना-अपना हाल कह लेने दो 'नातिक़' सबको तुम।
जानता है वह कि किसके दिलमें कितना दर्द है॥

जो न सँभला इब्तदाये-इश्क़में।
फिर वह आख़िरतक सँभल सकता नहीं॥

कह रहा है शोरेदरियासे समन्दरका सकूत—
"जिसका जितना ज़र्फ़ है उतना ही वोह ख़ामोश है॥"

वोह बेनक़ाब कहीं बेनक़ाब होता है।
कि आफ़ताब ख़ुद अपना जवाब होता है॥

मजाल किसकी जो दे साथ उसकी मंज़िलतक।
कहीं वही न हो, सूरत बदलके रहबरकी॥

ऐ शमा ! तुझपै रात यह भारी है जिस तरह।
मैंने तमाम उम्र गुज़ारी है इस तरह॥

छुपकर हवाके झोंकोंमें आती हैं बिजलियाँ।
'नातिक़' ! चमन यह रहनेके क़ाबिल नहीं रहा॥

सर आँखोंपर ग़मे दुनिया-ओ-उक़बा।
मगर अब दिलमें गुंजाइश कहाँ है॥

दिल शिकन साबित हुआ हर आसरा मेरे लिए।
कोई दुनियामें नहीं मेरे सिवा मेरे लिए॥
शाहराहे आमसे रुसवाइये-मंज़िल न कर॥
कुछ नई राहें निकाल ऐ रहनुमा, मेरे लिए॥

दैरो-हरममें बहस थी यह दिल कहाँ रहे?
आख़िरको तय हुआ कि यह बेख़ानुमाँ रहे॥

सौ तीर ज़मानेके एक तीरे-नज़र तेरा।
अब क्या कोई समझेगा दिल किसका निशाना है॥

यह असर आया कहाँसे इक शकिस्ता साज़में।
तेरी ही आवाज़ है मज़लूमकी आवाज़में॥

तबस्सुम उनके लबपर एक दिन वक़्ते-अताब आया।
उसी दिनसे हमारी ज़िंदगीमें इनक़लाब आया॥
चलो देखें तो 'नातिक़' अपनी हदसे बढ़ न आया हो?
उठा है शोर काबेमें कि इक ख़ाना ख़राब आया॥

'नातिक़'से चलो पूछ लें इसरारे-मुहब्बत।
फ़ी-जुमला ग़नीमत है कि दीवाना नहीं है॥

कभी दामाने-दिलपर दाग़े-मायूसी नहीं आया।
इधर वादा किया उसने, उधर दिलको यकीं आया॥
मुहब्बत आश्ना दिल मजहबो-मिल्लतको क्या जाने ?
हुई रोशन जहाँ भी शमअ परवाना वहीं आया॥

मजेपै क़िस्सा आया था कि नज़मे-ज़िन्दगी बिगड़ा।
कहाँपर ख़त्म कर दी बेवफ़ाने दास्ताँ मेरी॥

दिलमें है सरमायये कोनैन राहतके सिवा।
दोनों आलम है मेरे क़बज़ेमें क़िस्मतके सिवा॥

आवाजे-दिलकश उसकी दिलमें खपी है ऐसी।
धीमे सुरोंका नग़मा हर साँसको सदा है॥

जब्त करना चाहिए जो जब्त हो सकता नहीं।
आँखमें आँसू भरे बैठा हूँ रो सकता नहीं॥

जोशेगिरिया और अँधेरी रात है।
क्या घटा है क्या भरी बरसात है॥

देखकर उनको, नज़रमें यह असर होता है।
जिस तरफ़ देखिये इक हुस्न नज़र आता है॥

जवाबे साफ़ सुनकर पागया सब कुछ फ़क़ीर उनका।
सदा देनेसे मतलब था फ़क़त आवाज़ सुन लेना॥

उनके तेवर भी न बिगड़े बात भी अपनी बनी।
हाल हम कहते रहे वह दास्तां समझा किये॥

गिरता है कोई आगमें क्या कीजिये ? मगर—
शबनमको आफ़ताबकी क़ुरबत पसन्द है॥

आप अपने ही पैरोंसे हुआ हो जो पायमाल।
मैं राहमें वोह नक़्शे-क़दम हूँ मिटा हुआ॥

ख़ुशो-नाख़ुश मुझे जन्नतमें बसर करना है।
इक ज़रा रंग तबीयतका बदलना होगा॥

इक सुनहरी सतर थी जिसकी शुआए-बर्क़तूर।
आज वोह ख़त साहबे-मेराजके नाम आ गया॥

शायद क़ुबूल होनेका वक़्त आ गया क़रीब।
ताक़त जवाब देने लगी हर सवालमें॥

ग़ुरबतकी बेकसीपर कर लूंगा सब्र यारब!
वापिस मगर न करना इस हालसे वतनमें॥

ग़र्क़ कर देती है किश्ती, नाख़ुदाकी बेख़ुदी।
छोड़ दे वह मयकदा साक़ी जहाँ मदहोश है॥

सफ़रमें सईए कामिल हो तो निकले राह मंज़िलकी।
कि दरियाकी रवानीसे बिना पड़ती है साहिलकी॥

बढ़ी न क़तरेकी वुसअ़त हुबाबसे आगे।
मगर दिखा तो गया इक झलक समन्दरकी॥

गदाये-मयकदा था अब हूँ मैं शेख़े-हरम 'नातिक़'।
कहीं ऐसा न हो पहचान ले कोई यहाँ मुझको॥

१६ फरवरी १९५२]

अज़ीज़ लखनवी

[१८८२ – १९३५ ई०]

मिर्ज़ा मुहम्मदहादी 'अज़ीज़'का जन्म लखनऊमें १८८२ ई०में हुआ। आपके पूर्वज शीराज़के रहनेवाले थे। वे वहाँसे आकर पहले कश्मीरमें रहे, फिर स्थायी रूपसे लखनऊमें बस गये। आपके वंशमें कई पीढ़ियोंसे योग्यतम विद्वान् होते आये हैं। आपके पिता अल्लामा मिर्ज़ा मुहम्मदअली आपको सात वर्षका छोड़कर जन्नतनशीन हो गये थे। ५ वर्षकी आयुमें आपका विद्यारम्भ हुआ और अरबी-फ़ारसीकी पूर्ण योग्यता प्राप्त की।

अज़ीज़ सादगी-पसन्द, बेतकल्लुफ़ और मिलनसार थे। विनयी, सहृदय और हास्यप्रिय थे। आपकी शायरीके सम्बन्धमें हज़रत साक़िब लखनवी फ़र्माते हैं—"अज़ीज़की तबियत निहायत पुरदर्द वाक़अ हुई है। हर शेरसे हसरतका इज़हार होता है। कमाल यह है कि आपने मीरो-ग़ालिबकी तक़लीद (अनुसरण) करते हुए अपने ख़ास रंगको हाथसे नहीं जाने दिया है। ज़बानकी सफ़ाई, मज़ामीनकी रफ़अत (उड़ान) और बयानकी सलासत (प्रवाह) मायनी आफ़रीनी और नुक्तारसी (सार-गर्भितता)से दस्तोगरेबाँ है।"[१]

अज़ीज़के बहुत-से शिष्योंमेंसे कुछ ख्यातिप्राप्त शायर ये हैं—'असर' लखनवी, 'जोश' मलीहाबादी, 'आशुफ़्ता' लखनवी, 'जिगर' बरेलवी,

---

[१]गुलकदा : दीबाचा पृ० १९।

'रशीद' लखनवी, जगमोहनलाल 'रवाँ', 'शेफ़्ता' लखनवी, 'कैफ़ी' लखनवी।

'अज़ीज़' हज़रत 'सफ़ी' लखनवीके शिष्य थे, परन्तु गुरू-शिष्यमें किसी बातको लेकर नाचाक़ी हो गई थी। आपकी कविताओंका दीवान 'गुलकदा' १९३६में प्रकाशित द्वितीय संस्करण हमारे समक्ष है। इसमें आपकी १९०५से १९१८ तककी ग़ज़लोंका संकलन १४४ पृष्ठोंमें किया गया है। उनमेंसे १२१ अशआर चुनकर पेश किये जा रहे हैं। २ अगस्त १९३५ को आपका निधन होगया।

अपने मरकज़की[1] तरफ़ माइलेपरवाज़[2] था हुस्न[3]।
भूलता ही नहीं आलम[4] तेरी अँगड़ाईका॥

जो यहाँ महवेमासिवा[5] न हुआ।
दूर उससे कभी ख़ुदा न हुआ॥
अहदमें[6] तेरे ज़ुल्म क्या न हुआ।
ख़ैर गुज़री कि तू ख़ुदा न हुआ॥
यूँ-ही घुट-घुटके मिट गया आख़िर।
उक़दयेदिल[7] किसीको वा[8] न हुआ॥
न मिली दादे जब्तेइश्क़ 'अज़ीज़'!
वोह कभी सब्रआज़मा न हुआ॥

ख़याल तक भी उधर ऐ ख़ुदा नहीं जाता।
मरीज़ेग़मका तसव्वुर[9] किया नहीं जाता॥
बयानेहुरमतेसहबा[10] सही, मगर ऐ शेख़!
तेरी ज़बानसे उसका मज़ा नहीं जाता॥

---

[1]केन्द्रकी, लक्षकी; [2]उड़नेमें दत्तचित्त; [3]रूप; [4]तौर-तरीक़ा, अन्दाज़; [5]अहमन्य; [6]ज़मानेमें, अधिकारके दिनोंमें; [7]दिलका भेद; [8]प्रकट; [9]ध्यान; [10]अंगूरी शराबकी प्रशंसा।

हर इक क़दम तेरे कूचेमें एक आलम है।
कहाँतक अब मैं चलूँगा ? चला नहीं जाता ॥
हुजूमेशौक़का[1] बस मुख़्तसिर यह क़िस्सा है।
कि जो मैं चाहता हूँ, वह कहा नहीं जाता ॥
ज़बाँ बयान करे मुद्दआ-ए-दिल[2] क्योंकर ?
किसीका हाल किसीसे कहा नहीं जाता ॥
वोह सरज़मीन जहाँपर मज़ार है मेरा।
उधरसे अब कोई दर्दआश्ना नहीं जाता ॥

कुछ इन्तहा[3] भी है ? लो, बन्द हो गई आँखें।
निगहने काम दिया जबतक इन्तज़ार किया ॥
सितम है लाशपर उस बेवफ़ाका यह कहना—
"कि आनेका भी किसीके न इन्तज़ार किया ॥"
किसीने नज़अकी[4] इस तरह गुत्थियाँ सुलझाई।
सिरहाने बैठके हर साँसका शुमार किया ॥
कुछ इसमें मसलहतेज़ौक़ेज़िन्दगी[5] भी थी।
'अज़ीज़' वादेका उसके जो एतबार किया ॥

दिलको जहाँ सकून[6] हुआ जिस्म सर्द था।
वोह मुद्दतेहयात[7] थी जब तक कि दर्द था ॥
हर आह खींचती है तनाबें फ़लककी अब।
वोह दिन गये कि हौसलए-ज़ब्तेदर्द था ॥
मुड़-मुड़के देखता था मैं वहशतमें बार-बार।
कोई तो मेरे साथ बयाबाँ-नवर्द[8] था ॥

---

[1]अभिलाषाओंकी भीड़का; [2]हृदयाभिलाषा; [3]हद, सीमा, अन्त; [4]मृत्युकी अन्तिम घड़ियोंकी; [5]जीते रहनेकी इच्छा; [6]सन्तोष; [7]ज़िन्दगीकी घड़ी; [8]वीरानेमें साथी।

गिला[1] किससे ? जब उसको इज़्तराबेदिल[2] पसन्द आया।
ख़ुदा ही को अज़लसे[3] शेवयेबिस्मिल[4] पसन्द आया ॥
रगेजाँने[5] वहीं की बढ़के हिम्मतकी क़दमबोसी[6]।
जहाँ हमको ख़यालेदूरियेमंज़िल[7] पसन्द आया ॥
ज़रा यह इन्तख़ाब[8] उसकी निगाहेनाज़का[9] देखो।
कि आँसू बन रहा था जो वह ख़ूनेदिल पसन्द आया ॥

आगे ख़ुदाको इल्म है क्या जाने क्या हुआ।
बस उनके मुँहसे याद है उठना नक़ाबका ॥
मिश्रतकशेअसर[10] न हुई शुक्र है दुआ।
बढ़ता वगर्ना शौक़ दिलेबेहिजाबका[11] ॥

ऐ सकूनेमौत[12] ! कोई जागनेकी हद भी थी ?
सुबहेहिज्र[13] आख़िर मेरी आँखोंमें ख़्वाब[14] आ ही गया ॥
है मुहब्बतकी नज़रमे क्या मज़ा ख़ुद देख लो।
चार आँखें जब हुई तुमको हिजाब[15] आ ही गया ॥

किया है किसने याद अल्लाहोअकबर ! अब असीरोंको[16] !
कि तोड़ा जा रहा है क़ुफ़्ल[17] ज़ंगआलूदा[18] ज़िन्दाँका[19] ॥

उनसे करता है दमेनज़अ[20] वसीअत यह 'अज़ीज़'—
"ख़ल्क़[21] रोयेगी मगर तुम न परीशाँ होना ॥"

---

[1]शिकायत; [2]तड़पता दिल; [3]अनादि कालसे, मनुष्य-सृष्टिके प्रारम्भसे; [4]अर्द्धमृतकपन; धायलपन; [5]जीवनकी उमंगोंने; [6]पाँव चूमे; [7]सुदूर मार्गपर चलनेका विचार; [8]चुनाव; [9]गर्वीले नेत्रोंका, माशूक़ाना नज़रका कमाल; [10]प्रभावक, असरवाली; [11]निर्लज्ज हृदयका; [12]मृत्युकी शान्ति; [13]विरहके प्रभातमें; [14]नींद; [15]हया, शर्म; [16]बन्दियोंको; [17]ताला; [18]ज़ंग लगा हुआ; [19]कारागृहका; [20]मृत्युके समय; [21]जनता।

विसालेदायमी[1] क्या है ? शबेफ़ुरक़तमें[2] मर जाना ।
क़ज़ा[3] क्या है ? दिलीजज़्बातका[4] हदसे गुज़र जाना[5] ।।
निसार[6] इस बचपनेके और इस नाज़ुक दिमाग़ीके ।
सियहबालोंसे अपने नींदमें ख़ुद आप डर जाना ।।
इन्हीं टूटी हुई क़ब्रोंमें है एक तुरबतेबेकस[7] ।
ज़रा मुँह फेर लेना जानेवाले जब उधर जाना ।।

झेंपते क्यों हो, जो सरे-ता-ब-क़दम[8] देखते हैं ।
यह कोई और नहीं है, तुम्हें हम देखते हैं ।।

उसकी शामेग़मपै सदक़े हो मेरी सुबहे-हयात ।
जिसके मातममें तेरी ज़ुल्फ़ें परीशाँ हो गईं ।।

वाइज़! तेरी ज़बानसे सुनता तो ज़िक्रेहूर[9] ।
इतना ख़याल है कि कोई बदगुमाँ न हो ।।

ख़ुदा दुश्मनको दिखलाये न यूँ बीमारकी हालत ।
मगर अब आ गये हो तुम तो दमभर देखते जाओ ।।

कहते हैं चारागरोंसे[10] दमेनज़अ[11]—
"है यह जागा हुआ सो लेने दो ।।"
ज़ब्तेगिरयाका[12] न दो हुक्म मुझे ।
दिलमें कुछ दाग़ है धो लेने दो ।।

ख़ुदा जाने दिलेनाकाम, क्या हो ?
हमारा देखिये अंजाम क्या हो ?

---

[1]स्थायी (अमर) मिलन; [2]विरह-रात्रिमें; [3]मृत्यु; [4]हृदयाभिलाषाओंका; [5]सीमा लाँघना; [6]न्योछावर; [7]असहायकी समाधि; [8]सरसेपाँवतक; [9]स्वर्गीय अप्सराओंका वर्णन; [10]चिकित्सकोंसे; [11]मृत्युके समय; [12]आँसू पीनेका ।

कहके बीमारसे यह बुझ गई शमअ़—
"रात होती है यूँ बसर देखो ।।"

दैरोकाबेमें[1] फ़र्क़ क्या है 'अज़ीज़' !
सिर्फ़ पाबन्दियाँ हैं मज़हबकी ।।

सारी ख़लक़त[2] हश्रमें[3] अपनी तमाशाई हुई ।
दादख़्वाहीको[4] गये थे उल्टी रुसवाई हुई ।।

वाँ नामाबरकी[5] ख़ाकका भी अब पता नहीं ।
बैठे हैं इन्तज़ारमें हम याँ जवाबको ।।

मुझे बे अख़्तियार आता है रोना ।
न पूछो ज़िन्दगी क्योंकर बसर की ।।

मेरे रोनेपै यह हँसी कैसी ?
ऐ सितमगर ! यह दिल्लगी कैसी ?

इक ख़ुदाई जान देनेके लिए तैयार है ।
क्या क़यामत है कमरसे बाँधना शमशीरका ।।

हम तो दिल ही पर समझते थे बुतोंका[6] अख़्तियार ।
नसबेकाबेमें[7] भी अबतक एक पत्थर रह गया ।।
दिलकी बेचैनी कोई देखे ज़रा इस बज़्ममें[8] ।
जब कोई आया तो मैं ज़ानू[9] बदलकर रह गया ।।
जा चुके अहबाब[10] रोकर उठ चुकी मातमकी सफ़[11] ।
आप कब आये कि जब ख़ाली मेरा घर रह गया ।।

---

[1]मन्दिर-मस्जिदमें; [2]जनता; [3]ईश्वरीय न्यायालयमें; [4]फ़रियाद करनेको; [5]सन्देशवाहककी; [6]माशूक़ोंका; [7]काबेकीनींवमें; [8]महफ़िलमें; [9]घुटने; [10]इष्ट-मित्र; [11]रुदन करनेवालोंकी पंक्ति ।

देख ली दुनिया चलो शहरेख़मोशाँ[1] अब 'अज़ीज़' !
क़ाबिलेदीद[2] इक यही दिलचस्प मंज़र[3] रह गया ।।

रब्तेदेरीनासे बाक़ी है ताल्लुक़ फिर भी ।
लाख कावेसे बनाये कोई बुनख़ाना जुदा ।।

कब पूछते हैं आके मिज़ाजेमरीज़ेइश्क़ ।
जब बदनसीब बातके क़ाबिल नहीं रहा ।।*

मेरा मातम फ़क़त था रौनक़े-ग़मख़ानये-हस्ती ।
रही आबाद दुनिया भी रहा जबतक कि ग़म मेरा ।।
'अज़ीज़' अब कौन-सा वक़्त आ गया ? क्या होनेवाला है ?
कि वोह ख़ुद पूछते हैं हाल आकर दम-ब-दम मेरा ।।

ख़ुदाका काम है यूँ तो मरीज़ोंको शफ़ा[4] देना ।
मुनासिब हो तो इकदिन हाथसे अपने दवा देना ।।
शिगाफ़[5] इक हो चला तुरबतमें[6] जाँ आने लगी मुझमें ।
ज़रा ऐ जानेवाले ! क़ब्रपर फिर मुसकरा देना ।।
मेरी मैयतपै किस दावेसे वोह कहते हुए आये—
"हटा देना ज़रा इन रोनेवालोंको हटा देना ।।"

पैदा वह बात कर कि तुझे रोएँ दूसरे ।
रोना ख़ुद अपने हालपै यह ज़ार-ज़ार क्या ?
रुक जाये बात-बातपर जिस नातवाँकी साँस ।
ऐसे मरीज़े-ग़मका भला एतबार क्या ।।

---

[1]मरघटकी ओर; [2]दर्शनीय; [3]दृश्य;

*कहते हैं जब रही न मुझे ताक़तेसुख़न ।
"जानूँ किसीके दिलकी मैं क्योंकर कहे बग़ैर ।।" —ग़ालिब

[4]आरोग्यता; [5]सूराख़; [6]क़ब्रमें ।

यह कहके लगाई है किसी शोख़ने ठोकर—
"देखूँ तो कोई क़ब्रसे क्योंकर न उठेगा ।।"

बढ़ गये कुछ और उनके हौसले ।
रोनेवालोंको हँसाना ही न था ।।
कल ज़माना ख़ुद मिटा देता जिन्हें ।
ऐसे नक़्शोंको मिटाना ही न था ।।
बेपिये वाइज़को मेरी रायमें ।
मसजिदेजामामें जाना ही न था ।।

नया-नया जो किसी शोख़का शबाब[1] आया ।
उठाके आईना देखा तो ख़ुद हिजाब[2] आया ।।
तमाम अंजुमनेवाज़[3] हो गई बरहम[4] ।
लिये हुए कोई यूँ सागरे-शराब आया ।।
मरीज़ेहिज्रकी[5] ऐसोंको क़द्र[6] क्या होगी ?
उठे हैं नींदसे जब सरपै आफ़ताब[7] आया ।।

ग़श खाते-खाते दर्दे-दिल उसको सुना दिया ।
फिर कुछ ख़बर नहीं कि जवाब उसने क्या दिया ।।
बेताब होके ज़ोफ़में भी आँख खोल दी ।
जब गोशयेनक़ाब किसीने हटा दिया ।।

वोह दिले-बेख़ुद ख़ुदा बख़्शे मुझे याद आ गया ।
जब कोई अँगड़ाइयाँ लेता हुआ सोकर उठा ।।
हँस रहा है देखकर यह कौन तुझको देरसे ।
सर उठा ऐ दिलसे बातें करनेवाले सर उठा ।।

---

[1]यौवन, रूप; [2]लाज; [3]उपदेश-सभाएँ; [4]रिक्त, जनशून्य; [5]विरह-रोगीकी; [6]चिन्ता; [7]सूर्य ।

क्या बताऊँ उसकी चश्मेनाज़का आलम 'अज़ीज़' !
मयकदेमें हुस्नके छलका हुआ पैमाना था ।।

जो मैं ज़िन्दा भी हो जाता तो फिर फ़ुरक़तमें[1] मर जाता ।
वोह आते थे तो उनको लाशपर आने दिया होता ।।
लहू रोती है चश्मेइबरत[2] इस बेदादे गुलचींपर ।
अभी फूलोंको अपने रंगपर आने दिया होता ।।

ख़ाक क्यों छान रहा है बतला ।
था भी दिल पास तेरे याद तो कर ।।
वोह तसल्ली ही सही ऐ सैयाद !
कुछ मुअय्यन मेरी मियाद तो कर ।।

ग़ाफ़िल फ़रेफ़्ता है चमनकी बहारपर ।
गुल हँस रहे हैं हस्तिये-बे-एतबारपर ।।
वायदा किया था "ख़्वाबमें सूरत दिखाएँगे" ।
सोया किया हमेशा इसी एतवारपर ।।
उठनेको तेरे दरसे उठा तो मगर न पूछ ।
जो कुछ गुज़र गई दिले-बेअख़्तियारपर ।।

यह अपना-अपना मुक़द्दर यह अपना-अपना नसीब ।
ज़मानेभरको हँसाये, हमें रुलाये बहार ।।
कलीसे फूल बना, फूलसे बनी मिट्टी ।
वोह इब्तदायेबहार[3] और यह इन्तहायेबहार[4] ।।

काश ! सुनते वोह पुर असर बातें ।
दिलसे जो की थीं उम्रभर बातें ।।

---

[1]विरहमें; [2]नसीहत लेनेवाली आँख; [3]बहारका प्रारम्भ; [4]बहारका अन्त ।

क़फ़समें[1] जी नहीं लगता है आह फिर भी मेरा।
यह जानता हूँ कि तिनका भी आशियाँमें[2] नहीं॥

भला ज़ब्तकी भी कोई इन्तहा है?
कहाँतक तबियतको अपनी सम्भालें?

मर गया बीमारे उल्फ़त उनसे इतना कहके बस—
"जाइए अब आपसे कोई गिला बाक़ी नहीं॥"

लो वह भी सर झुकाये हुए साथ-साथ हैं।
यूँ भी किसीकी लाश उठी है जमानेमें॥
वोह दिन गये 'अज़ीज़' कि हँसते थे रात-दिन।
मिलता है चैन दिलको अब आँसू बहानेमें॥

रूहको जिस्ममें ग़नीमत जान।
एतबार इसका क्या? रही न रही॥

यक़ीन है मुझे मुलाक़ात उससे हो जाये।
तेरी तलाशमें पहले जो आप खो जाये॥

करते 'अज़ीज़' नाज़िश[3] रहमतपर उसकी फिर क्यों?
ताज़ीर[4] भी वोह देता जब हम गुनाह करते॥

शरमाके उसने मुझको गलेसे लगा लिया।
मायूसिये-निगाह अजब काम कर गई॥

याद आ ही जाता है कभी नासेहका[5] क़ौल भी—
"सब कीजिये जहाँमें मुहब्बत न कीजिये॥"

कहती है रूह "आई हैं जितनी कि हिचकियाँ—
उतनी ही मैंने ठोकरें खाई हैं राहकी॥"

---

[1]पिंजरेमें; [2]घोंसलेमें; [3]गर्व; [4]दण्ड; [5]नसीहत देनेवालेका।

महशरमें[1] उनको देखके अल्लाहरी ख़ुशी।
तरदीद कर रहा हूँ ख़ुद अपने गवाहकी॥
उड़ती हुई यह ख़ाक, परेशान यह हवा।
तशरीह है 'अज़ीज़'के हालेतबाहकी॥

देखकर जानिबेबिस्मिल[2] वह किसीका कहना—
"ख़ुद-ब-ख़ुद उसके तड़पनेपै हँसी आती है॥"

लाख आबादियाँ निसार[3] इसपर।
अल्लाह-अल्लाह यह किसकी तुरबत[4] है?
जिस तरह चाहो दरसे[5] उठवा दो।
एक बेकसकी[6] क्या हक़ीक़त है॥

उनको सोते हुए देखा था दमे-सुबह कभी।
क्या बताऊँ जो इन आँखोंने समाँ देखा है॥

कोई इस बेकसीसे रोता है?
इश्क़के दिलमें दर्द होता है॥
जिसके मरनेकी हो ख़ुशी तुमको।
ऐसी मय्यतमें[7] कौन रोता है?

ताबूतको[8] अज़ीज़के आहिस्ता ले चलो।
टुकड़े सब उस शहीदे-मुहब्बतकी लाश है॥

मुहब्बतके जरीदेसे[9] हमारा नाम कट जाता।
तो इतनी सब्रकी क़ूवत भी रुख़सत हो गई होती॥

---

[1]ईश्वरीय न्यायालयमें; [2]घायलकी ओर; [3]न्योछावर; [4]समाधि; [5]दरवाज़ेसे; [6]असमर्थकी; [7]अर्थीपर; [8]अर्थीको; [9]प्रेमकार्यालयसे।

अभी तहतक हक़ीक़तकी नज़र पहुँची नहीं ज़ाहिद[1] !
नज़र बुनियादमें काबेकी इक बुतख़ाना आता है ॥
ख़ुदा जाने वोह क्यों शरमाके उठ जाते हैं महफ़िलसे ?
क़रीबे-शमअ़ जब परवानेपर परवाना आता है ॥

बालीं[2]पै मेरी कहके किसीने यह खोले बाल—
"देखें तो इम्तियाज़[3] उसे शामोसहरमें[4] है ॥"

मंज़रेजज़्बात[5] है ख़िलवतसरायेदैर[6] भी ।
काबेवालो ! फ़र्ज़ है तुमपर वहाँकी सैर भी ॥
ज़हनमें आया न फ़र्क़ेइम्तियाज़ी[7] आजतक ।
मुद्दतों देखा है हमने काबा भी और दैर भी ॥

हम उसी ज़िन्दगीपै मरते हैं ।
जो यहाँ चैनसे बसर न हुई ॥
दिलने दुनिया नई बना डाली ।
और हमें आजतक ख़बर न हुई ॥

दमेआख़िर लिखे थे जिसमें अपने तजरुबे तुमको ।
वोह ख़त्ते-शौक़ देखूँ किसके-किसके काम आता है ?

यह कहके बज़मेनाज़में इक जाम पी लिया ।
"कबतक रखें उमीद शराबेतहूरकी[8] ॥"
होता नहीं है कोई ज़मानेमें क्या जवाँ ।
अल्लाह कोई हद है तुम्हारे ग़रूरकी ॥

---

[1]भगतजी, परहेज़गार; [2]सिरहाने; [3]पहचान, होश; [4]सुबह-शाममें; [5]भावुक दृश्य; [6]एकान्त स्थानमें निर्मित मन्दिर; [7]मुख्य भेद, ख़ास फ़र्क़; [8]पवित्र शराबकी ।

हिफ़ाज़त करनेवाले ख़िरमनोंके[1] मुतमइन[2] बैठें।
तजल्लीबर्क़की[3] महदूद[4] मेरे आशियाँ[5] तक है॥

यह कहके ख़त्म शमअ़ने की मुद्दते-हयात—
"कबतक अकेला क़ब्रपर रोया करे कोई॥"

अँगड़ाई लेके किसने यह चटकाई उँगलियाँ?
दो हिचकियोंमें ख़त्म जो बीमार हो गया!

हूँ आलमे-हैरतमें जीता हूँ न मरता हूँ।
अब दिलकी यह हालत है हँसते हुए डरता हूँ॥

चुटकियाँ लेकर न पूछो दर्देदिल कुछ कम हुआ?
जब हटाया हाथ तुमने फिर वही आलम हुआ॥

मर गया था मैं नज़ाकत देखकर जिनकी 'अज़ीज़'।
हैफ़ उन्हीं हाथोंसे महफ़िलमें मेरा मातम हुआ॥

'अज़ीज़' इस क़दर हमने सजदे किये।
ख़ुदा उनको आख़िर बना ही दिया॥

इशरतकदेको[6] ख़ानयेवीराँ[7] बनाएँगे।
छोटा-सा अपने घरमें बयाबाँ बनाएँगे॥

माना दलीलेसौदा,[8] गर है फ़िज़ूल बकना।
दीवाना था अगर मैं नासेहको क्या हुआ था?

बैठे हैं बालींपै वोह शिकवोंके दफ़्तर हैं खुले।
ऐ अजल! फिर जा कि मरनेकी हमें फ़ुरसत नहीं॥

१३ दिसम्बर १९५०]

---

[1]खेतोंमें पड़ा हुआ अन्नका ढेर; [2]शान्तिसे, इत्मीनानसे; [3]बिजलीकी कौन्द; [4]सीमित; [5]घोंसला; [6]सुखनिवासको; [7]वीरान, उजाड़; [8]पागलपनकी पहचान।

असर लखनवी

[१८८५ ई०—]

ख़ानबहादुर मिर्ज़ा जाफ़र अलीख़ाँ 'असर' लखनऊके एक प्रतिष्ठित और शिक्षित वंशमें १२ जुलाई १८८५ ई० में उत्पन्न हुए। जिनकी गोदियोंमें आपका लालन-पालन हुआ, वे उर्दू ज़बानके मालिक थे। यही कारण है कि आप उर्दूके, विशेषकर लखनवी उर्दूके अधिकारी एवं प्रामाणिक विद्वान् समझे जाते हैं। ख्यातिप्राप्त शायर होनेके अतिरिक्त आप उच्चकोटिके आलोचक एवं गद्य-लेखक भी हैं। आपके अनेक महत्त्व-पूर्ण लेखों और आलोचनाओंका संकलन 'छानबीन' हमारी नज़रसे गुज़रा है। उसमें आपने देहलवी-लखनवी शब्दोंके ठीक रूप बताने और उनके वास्तविक अन्तरको समझानेका सफल प्रयत्न किया है। आप 'मीर'के बहुत बड़े भक्त हैं। उनके कलामको अपनी महत्त्वपूर्ण प्रस्तावनाके साथ 'मज़ामीर' शीर्षकसे दो भागोंमें प्रकाशित कराया है। आपका 'मीर' और 'ग़ालिब' पर एक महत्त्वपूर्ण और विस्तृत लेख जो 'आजकल' उर्दूमें कई अंकोंमें क्रमशः प्रकाशित हुआ था, उससे ही आपके गंभीर अध्ययन और विशाल सुरुचिका आभास मिल जाता है।

१९०६ ई० में आप बी० ए० हुए। १९०९ में डिप्टी कलेक्टर हुए और १९४० ई० में कलेक्टरी-पदसे पेंशन प्राप्त की, किंतु उसीके बाद इलाहाबादके एडीशनल कमिश्नरके पदपर अस्थाई तौरपर नियुक्त किये गये। चन्द साल काश्मीरमें गृह मन्त्री भी रहे। इतने उच्च राजकीय पदोंपर रहते हुए भी बातचीत या पत्र-व्यवहारमें उर्दू भाषाका ही प्रयोग करते रहे हैं।

बहुत ही आवश्यकता पड़नेपर अंग्रेज़ी भाषाका व्यवहार करते हैं। आप 'अज़ीज़'के शिष्य हैं, किन्तु कलाम उनसे जुदागाना रंगमें उनसे बेहतर कहते हैं।

भाषाकी सादगी

'असर'का अन्दाज़े-बयान सरल, स्वच्छ और प्रवाह-युक्त है। उनके दीवानको पढ़ते हुए ऐसा प्रतीत होने लगता है कि किसी ऐसे चश्मेके किनारे बैठे हुए हैं, जो कल-कल करता हुआ अविराम गतिसे बहता हुआ जा रहा है। उनके सीधे-सादे शब्दों और छोटी-छोटी बहरोंमें गागरमें सागर भरा होता है—

जैसे वह सुन रहे हैं, बैठे हुए मुक़ाबिल।
और दर्देदिल हम अपना उनको सुना रहे हैं॥
फिर हम कहाँ, कहाँ तुम, जी भरके देखने दो।
अल्लाह! कितनी मुद्दत तुमसे जुदा रहे हैं॥

यूँ उनकी याद है दिले-हैराँ लिये हुए।
जैसे नसीम[1] ग़ुंच-ओ-गुलके कनारमें[2]॥

ज़िन्दगी और ज़िंदगीकी यादगार।
परदा और परदेमें कुछ परछाइयाँ॥

जब कहा उसने—"मुद्दआ[3] कहिये"।
सोचते रह गये कि क्या कहिये॥

फिर तुम्हें फ़ुरसत न हो या मैं ही आपेमें न हूँ।
यह बताते जाओ मेरे हक़में क्या मंज़ूर है?

---

[1]प्रातःकालीन पवन; [2]फूलोंमें बसी हुई; [3]अभिप्राय।

अपनी बिसातभर तो हमने कमी नहीं की।
अब तुम बताओ क्योंकर रस्मे-वफ़ा निभाएँ?

दिल दुखाया है जिसने, शाद रहे।
और अब क्या दुआ करे कोई॥
करवटें क्यों बदल रहे है हुज़ूर?
अभी आग़ाज़ है कहानीका॥
मरनेका भी न सलीक़ा आया।
यह तो दुश्वार कोई काम न था॥
ख़ुद लिपटती रही दुनिया उससे।
जिसको दुनियासे कोई काम न था॥

रंगे-मीर

'असर' 'मीर'के प्रशंसक ही नहीं, उनके अनुयायी भी है। आपके कलाममें वही 'मीर'-जैसा सोज़ोगुदाज़ और अन्दाज़े-बयान है। 'मीर' और 'असर'के अशआ़र अगर ख़लत-मलत कर दिये जायें तो फिर उनको अलग-अलग करना आसान काम नही। बानगी देखिये—

नाम अलबत्ता सुनते आये है।
हम नहीं जानते ख़ुशी क्या है?

ज़रा देर दम लेने दे ऐ फ़लक!
मुसीबतका अहसास[1] कम हो गया॥
हर-इक रहगुज़रमें[2] हैं सरगोशियाँ[3]।
ख़ुदा जाने किसपर सितम हो गया?

आ! मेरे काटे अब नहीं कटतीं।
बेवफ़ा तेरे हिज्रकी घड़ियाँ॥

एड॰

[1]ज्ञान, अनुभूति; [2]मार्गमें; [3]कानाफूसी।

हमने रो-रोके रात काटी है।
आँसुओंपर यह रंग तब आया॥
साँस भी ले सँभलके ऐ नादाँ!
सख़्त मुश्किल है रिश्ता उलफ़तका॥
ख़ूगरे-दर्द[1] हो अगर इन्साँ।
रंजमें भी मज़ा है राहतका[2]॥

हम समझते थे कि उलफ़त खेल है।
यह ख़बर क्या थी लहू रुलवायगी॥

मौतमें ज़ीस्त[3] देखनेवालो!
देखलो ज़ीस्तमें फ़ना[4] हैं हम॥
मैं अगर उससे कहूँ भी तो बताओ क्या कहूँ?
जब उसे मालूम है जो कुछ कि मेरे दिलमें है॥
मेरा हँसना है ज़ख़्मकी सूरत।
जो मुझे देखता है रोता है॥
डब-डबा आईं ख़ुद-ब-ख़ुद आँखें।
बार-हा ऐसा इत्तफ़ाक़ हुआ॥
आँखमें अश्केनदामत[5] डब-डबाकर रह गये।
हम यूँ ही अक्सर दुआको हाथ उठाकर रह गये॥
घुट-घुटके मर न जाये तो बतलाओ क्या करे?
वह बदनसीब जिसका कोई आसरा न हो॥

सौन्दर्य-वर्णन

जमालयाती (सौन्दर्य-विषयक) कलाम उर्दूशायरीमें काफ़ी मिलता है। ख़ासकर पुराने लखनवी शायरोंके यहाँ तो जमालयाती रंगकी

---

[1]दुःखोंका अभ्यस्त; [2]सुख-चैनका; [3]ज़िन्दगी; [4]मृतक; [5]गुनह-गारीकी शर्मसे आये हुए आँसू।

भरमार है। मगर उनके यहाँ स्वाभाविक और दिलनशीं शेर आटेमें नमक जितने मिलते हैं। अधिकांश अस्वाभाविक और अश्लीलतासे ओत-प्रोत हैं। कंघी-चोटी, सुर्मा-मिस्सी, चोली-दामन, ज़ेवर-लिबास आदिका कुरुचिपूर्ण वर्णन और रान-काँख, बाल-ख़ाल (तिल) आदिका अश्लील और घिनौना चित्रण पाया जाता है। ऐसे ही शायरोंको लक्ष करके मौलाना 'हाली'ने कुछ इस तरहके उद्‌गार प्रकट किये थे कि संसारमें ऐसा कोई मूर्ख नहीं जो अपनी प्रियतमाके गुप्तांगोंका वर्णन किसीके सामने करे। मगर आश्चर्य है कि हमारे शायर दिन-रात इसी कार्यमें लीन हैं। उन्हें जग-हँसाईकी कोई चिन्ता नहीं।

'असर'ने भी इस नाज़ुक आर्टपर तूलिका चलाई है। मगर इस कौशलसे कि जो भी देखेगा, देखता रह जायगा और दिलमें कहेगा कि ऐसी बहन, बेटी, पत्नी, मुझे भी नसीब हो।

आपने एक उछालछक्को और चरबज़बान औरतके नक़्श न उभारकर एक ऐसी पवित्र, लजीली और कोमलांगीको चित्रित किया है कि हर व्यक्तिको ऐसी पुत्री, बहन और पत्नीपर अभिमान होगा। उसके क़दमोंसे जन्नत लगी चलेगी—

अब मैं समझा मुराद जन्नतसे।
आप जिस राहसे गुज़र जायें॥

प्रेयसीकी चालको पुराने शायरोंने क़यामतबरपा कहा है। यानी उसकी चालसे प्रलयंकारी तूफ़ान उठ खड़े होते हैं। गोया प्रेयसी न हुई चुड़ैल या जिन हुई कि जिधरसे भी गुज़र जाये हड़बोंग मच जाये।

उसी क़यामतबरपा चालको 'असर'ने उक्त शेरमें इतने पवित्र और मोहक ढंगसे व्यक्त किया है कि दाद देनेको उपयुक्त शब्द नहीं मिल पा रहे हैं। सचमुच प्रेयसीकी 'राहगुज़र' ही जन्नत है। पवित्र आत्मायें जहाँसे भी निकल जायें, वही मार्ग स्वर्ग बन जाता है।

प्रियतमा लाजके मारे पसीने-पसीने हुई जा रही है। इस नारी सुलभ लज्जाका देखिये क्या हू-ब-हू चित्र खींचा है—

फूल डूबा हुआ गुलाबमें था।
उफ़! वोह चेहरा हिज़ाब आलूदा[1]!!

किशोरावस्था जब जवानीकी सरहदोंको छूने लगती है तो कुछ इस तरहका आलम होता है—

गुलोंकी गोदमें जैसे नसीम[2] आकर मचल जाये।
उसी अन्दाज़से उन पुरग़ुमार आँखोंमें ख़्वाब[3] आया॥

नींदभरे नयनोंमें क्या भरा होता है, यह कोई कैसे बताये? यह तो देखने और समझनेसे सम्बन्ध रखता है—

उस घड़ी देखो उनका आलम।
नींदसे हों जब भारी आँखें॥

मोमिनका एक शेर है—

मेरे तग़ईरे रंगको मत देख।
तुझको अपनी नज़र न हो जाये[4]॥

---

[1]शर्मसे भीगा हुआ; [2]प्रातःकालीन वायु; [3]मदभरे नयनोंमें स्वप्न; [4]मेरी यह दयनीय स्थिति तेरे सौन्दर्यके कारण हुई है। न मैं तुझे देखता न बीमार पड़ता। अतः मेरे उस तगईरे रंग (अवस्था परिवर्तन) को न देख। अन्यथा स्वयं तुझे अपनी नज़र लग जायगी। क्योंकि अभीतक तो तू अपने सौन्दर्य-प्रभावसे अपरिचित है। मुझे देखनेसे तुझे अपनी करिश्मा साज़ियोंका पता लग जायगा और स्वयं तुझे अपनी नज़र लग जायगी।

इसी भावको देखिये 'असर' कितने दिलकश और सीधे-सादे शब्दोंमें व्यक्त करते हैं—

देखो न आँख भरके किसीकी तरफ़ कभी।
तुमको ख़बर नहीं जो तुम्हारी नज़रमें है॥

प्रेयसीकी चादरेंगुलकी कितनी अछूती उपमा दी है?

झिलमिलाते हुए तारे क्या हैं?
मलजगे फूल तेरे बिस्तरके॥

चन्द जमालयाती शेर और मुलाहिज़ा हों—

दमेख़्वाब है दस्तेनाज़ुक[1] जबींपर[2]।
किरन चाँदकी गोदमें सो रही है॥

वोह तेरा शबाब कि अलहज़र, वोह तेरा ख़िराम[3] कि अलअमाँ॥
न यह रंग झलके बहारमें न यह कैफ़ टपके शराबसे॥

बसा फूलोंकी नकहतमें[4], लिये मस्ती शराबोंकी।
महकता, लहलहाता, एक काफ़िरका शबाब आया॥

चाल वोह दिलकश जैसे आये—
ठण्डी हवामें नींदका झोंका॥

उस वक़्त कोई देखे वोह नींदसे जब उठ्ठें।
हर नग़मे-सहर आँखें मलता नज़र आता है॥

मस्त आँखोंमें घनी पलकोंका साया यूँ था।
कि हो मयख़ानेपै घनघोर घटा छाई हुई॥

जैसे नग़मेमें नया फ़न कोई ईजाद करे।
उफ़! वोह आवाज़, जो थी नींदमें भरीई हुई॥

उन लबोंपर झलक तबस्सुमकी[5]।
जैसे निकहतमें[6] जान पड़ जाये॥

---

[1]कोमल हाथ; [2]मस्तकपर; [3]चाल; [4]सुबासमें; [5]मुसकानकी; [6]सुगन्धमें।

ख़ुमख़ानय-निशात[1] हैं वोह सुर्ख़ अँखड़ियाँ।
अँगड़ाइयोंमें इत्र खिचा है ख़ुमारका॥
पुरकैफ़ किस क़दर है सितमगरकी गुफ़्तगू?
साग़र छलक रहा है मयेख़ुशगवारका॥
फूल सजदेमें गिरे शाखें झुकीं।
देखके गुलशनमें तुझको बेनक़ाब॥
वोह लचक ऐसी कहाँसे लायगी।
शाख़ेगुल क़दसे तेरे शरमायेगी॥
ख़न्दयेगुलपर[2] बहुत सुबहेचमनको नाज़ है
हाँ, ज़रा फिर मुसकराकर मुझसे परदा कीजिये॥
इधर आ कलेजेमें तुझको छुपा लूँ।
ख़ुद अपनी अदाओंसे शरमानेवाले॥

इश्क़का हमला

इश्क़का पहला वार बहुत दिलचस्प और मासूमाना होता है। यह हज़रत इस अन्दाज़ और सलीक़ेसे हमला करते हैं कि ऐसे वार खाते रहनेको दिल बेक़रार हो उठता है। यहाँतक कि किसीके समझानेसे भी बाज़ नहीं आता। मगर जहाँ दिलपर एक बार इश्क़का क़ब्ज़ा हुआ कि फिर ता-उम्र टलनेका हज़रत नाम नहीं लेते।

हज़रते-दाग़ जहाँ बैठ गये, बैठ गये।

इश्क़की इसी मासूमाना कैफ़ियतको 'असर' यूँ बयान करते हैं—

सहमी हुई थी सुबहकी पहली किरनकी तरह।
उनकी तरफ़ निगाह जो पहले-पहल गई॥

---

[1]ऐश्वर्य-मधुशाला; [2]फूलकी मुसकानपर।

जैसा कि हमने ऊपर अभी कहा है कि इश्क़के यह दिलचस्प और भासूमाना वार खाते रहनेको दिल बेक़रार हो उठता है, और समझानेसे भी बाज़ नहीं आता। बाज़ न आनेकी वजह एवं मजबूरी 'असर' यूँ बयान करते हैं--

इश्क़से लोग मनअ़ करते हैं।
जैसे कुछ अख़्तियार है अपना॥

अदब लाख था, फिर भी उसकी तरफ़।
नज़र मेरी अक्सर बहकती रही॥

इश्क़ जब दिलमें दाग़ बनकर बैठ जाता है तो जिस्मको तो धीरे-धीरे जलाता ही है, उसके अलावा और भी करिश्मा-साज़ियाँ करता-रहता है। कभी रोना, कभी हँसना, कभी आहो-फ़ुग़ाँ करना, कभी दीवानावार जंगलोंमें घूमना, यह अलामतें भी मरीज़े-इश्क़में पाई जाती हैं। मगर कब रोना चाहिए और कब आँसू पी जाना चाहिए, यह नया मरीज़े-इश्क़ नहीं जान पाता। यह तजुर्बा तो देरीना मरीज़को ही नसीब होता है--

जो इश्क़के फ़नके माहिर हैं, उनसे पूछो, तुम क्या जानो ?
कब अश्क बहाना मुश्किल है, और कब पी जाना मुश्किल है॥

इश्क़का मर्तबा

असरके यहाँ इश्क़का मर्त्तबा बहुत बुलन्द और पाकीज़ा है। उनका तजुर्बा है कि--

इन्सानको बेइश्क़ सलीक़ा नहीं आता।
जीना तो बड़ी चीज़ है, मरना नहीं आता॥

दिलमें है दर्द, दर्दमें इक लज़्ज़ते-ख़लिश।
आज़ारे-इश्क़ने मुझे इन्सां बना दिया॥

और जब इश्क़की बदौलत इन्सानियत-जैसी बेशबहा निधि नसीब हो गई तो उससे किसीकी दिलाज़ारी नामुमकिन। जिसका रोम-रोम प्रेममें भीगा हुआ हो, उसे हर वस्तुमें अपने प्यारेका जलवा नज़र आता है--

न जाने बात यह क्या है? तुम्हें जिस दिनसे देखा है।
मेरी नज़रोंमें दुनिया भर हसीं मालूम होती है॥

और जिसे हर वस्तुमें अपने प्यारेका जलवा नज़र आयेगा, वह विनष्ट करनेके बजाय हर वस्तुको प्यार करेगा। यहाँतक कि वह फूलकी पत्तीको भी सदमा नहीं पहुँचाना चाहेगा--

पाकबाज़ाने-मुहब्बत हैं यहाँतक मुहतात[1]।
गुलपै भी दीदये शबनमसे[2] नज़र करते हैं॥

अक्सर लोगोंका ख़ाम-ख़याल है कि इश्क़ इन्सानको ज़लीलो-ख़्वार कर देता है। इश्क़ तो इन्सानको इन्सानका मर्तबा बख़्शता है। ज़लीलोख़्वार तो बुलहविसी (भौंरा-जैसी लोलुप कामुकता) करती है, जो इश्क़का छद्म-वेष बनाये घूमती है। गोमुखी व्याघ्रसे भयभीत वास्तविक गायसे भी डरने लगें तो इसमें गायका क्या दोष? इश्क़ अगर बेग़रज़ और बेआरज़ू हो तो उसके मर्त्तबेका क्या कहना?

इश्क़ है इक निशाते-बेपायाँ[3]।
शर्त यह है कि आरज़ू न रहे॥

---

[1]अहतियात रखनेवाले, सावधानी बरतनेवाले; [2]अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे (भाव यह है कि जैसे ओसके पड़नेसे फूलका अनिष्ट नहीं होता, अतः हम फूलोंकी तरफ़ भी इस सावधानीसे देखते हैं कि उनका कहीं अनिष्ट न हो जाय! किसीका भी दिल न दुःखे, इस तरहका हम सदैव प्रयत्न करते हैं); [3]स्थायी सुख।

सीमाओंका बन्धन और तू-मैंका भेद प्रेम-मार्गके कण्टक हैं। प्रेमी इनको दूर किये बग़ैर अपने चरम लक्षतक नहीं पहुँच सकता। इसी भावको रंगे-तग़ज़्ज़ुलमें देखिये 'असर' किस ख़ूबीसे व्यक्त करते हैं--

उठा दे क़ैद सुबू-ओ-शराब-ओ-साग़रकी।
बुलन्द और ज़रा कर मज़ाक़े-रिन्दाना॥

विरहपर शेर सुनिये--

हर साँस एक ताज़ा जराहतका है पयाम[1]।
नश्तर बनी हुई है, रगेजाँ तेरे बग़ैर॥

फिर न आये जो वादा करके गये।
आजका दिन है और वोह दिन है॥

कुछ रोज़ यह भी रंग रहा इन्तज़ारका।
आँख उठ गई जिधर बस उधर देखते रहे॥

उक्त तीनों शेरोंमें कितनी वेदना और कितनी व्यथा भरी हुई है, यह भुक्तभोगी ही महसूस कर सकता है। जिस स्त्रीका पति या पुत्र परदेशमें रोज़ी कमाने चला जाय और जानेके बाद न पतियाँ भेजे, न कोई सँदेसा, और न फिर कभी लौटे, उस नारीके दिलसे कोई पूछे कि उसने किस तरह एड़ियाँ रगड़-रगड़कर उम्र काटी है। वह किस बेक़रारीसे गाँवके रास्तेपर पलक-पाँवड़े बिछाये बैठी रही है, और रात-बिरातको जब भी दरवाज़ा खट-खटानेका वहम हुआ है, लपक-लपककर द्वार खोला है।

जिन सौभाग्यशीलोंको यह प्रतिक्षाजन्य कष्ट उठानेका कभी अवसर नहीं मिला, वे श्री बनारसीदासजी चतुर्वेदीद्वारा लिखित और भारतीय ज्ञानपीठद्वारा प्रकाशित 'रेखाचित्र'में 'लल्लू कब लौटेगो' और

---

[1]सन्देश।

"बाइस वर्ष बाद" पढ़कर इस विरह-वेदनाका किंचित आभास पा सकते है।[1]

उस कुँआरी लड़कीकी मनोव्यथाका अनुमान लगाइये जो अपने प्रियतमकी प्रतीक्षामें बूढ़ी हो गई। घरवालोके लाख सर पटकनेपर भी न किसी दूसरेसे शादी की, न किसी ग़ैरको आँख भरकर देखा। उम्रभर उसीकी माला जपती रही। उम्रभरकी तपस्याके फलस्वरूप वोह वापिस आया भी तो हायरे भाग्य वह अपने साथ किसी और स्त्रीको ले आया[2] और उसकी तरफ़ आँख उठाकर भी न देखा। सूखी खेतीपर बादल आये भी मगर बेसूद, एक बूँद गेरे बग़ैर उमड़-घुमड़कर किनारा काट गये।

---

[1]इस विरह-वेदनाकी टीस और बेचैनी इन दोहोंमें देखिये कैसी बिलख रही है--

सोना लेने पिऊ गये सूना कर गये देस।
सोना मिला न पिऊ फिरे रूपा हो गये केस।

--अज्ञात

मेरा हाथ देख बिरहमना ! मेरे पीऊ मुझसे मिलेंगे कब ?
तेरे मुँहसे निकले ख़ुदा करे, "इसी सालमें, इसी माहमें" ॥

--अज्ञात

[2]इस तरहकी घटनायें अक्सर होती रहती हैं। आज़ाद हिन्द फ़ौजके एक ख्यातिप्राप्त कर्नल साहबकी मँगेतर उनकी प्रतीक्षा करती रही। उसके भाग्यसे वे लड़ाईसे और फाँसीके तख़्तेसे बचे और ख्यातिके उच्च शिखरपर पहुँचे तो उन्होंने शादी उस प्रतीक्षकासे करनेके बजाय एक परित्यक्तासे कर ली। इसी तरह पंजाबके एक प्रसिद्ध क्रांतिकारी जब १० वर्ष बाद जेलसे मुक्त हुए तो उन्होंने वियोगिनीके आँसू पूछनेके बजाय दूसरी शादी करके उसे उम्रभर जलने-सिसकनेके लिए मजबूर कर दिया।

तमाम उम्र 'असर' ! जिसकी राह देखी थी।
इधरसे आज वोह गुज़रे तो मिस्ले-बेगाना॥

हबीबका रुत्बा

तुम्हीं हो रौनक़े-गुलशन, तुम्हीं हो रंगे-बहार।
मगर किसीको तुम्हारा गुमाँ नहीं होता॥

उक्त शेर रंगेतसव्वुफ़में कहा गया है। यानी इस शेरमें 'असर'का महबूब ख़ुदा नज़र आता है, और उनका यह कामिल यक़ीन है कि सारी दुनियामें ख़ुदाका जलवा है। इस यक़ीनको एक और शेरमें आप यूँ उजागर करते हैं--

ज़िंदगी वक़्फ़ा है तेरे हिज्रका।
मर्ग तेरे वस्लका पैग़ाम है॥

ख़ुदाकी पहचान

ख़ुदाकी तलाशमें लोग वनों-पर्वतोंकी ख़ाक छानते है। मन्दिरों-मसजिदोंमें भटकते हैं। मगर ख़ुदा नहीं मिलता। अगर किसीको मिलता भी है तो वह उसे पहचानता नहीं और इस तरह उसके दर्शनेच्छु दुनियामें भटकते हुए अपनी ज़िन्दगी बरबाद कर रहे है। ऐसे ही भटके हुए लोगोंके लिए देखिये 'असर' ख़ुदाकी कितनी आसान पहचान बताते हैं--

हम उसीको ख़ुदा समझते हैं।
जो मुसीबतमें याद आ जाये॥

ख़बरदार, उक्त शेरके 'याद'को 'काम' न बना लीजिये। वरना शेरकी लताफ़त तो जाती ही रहेगी, आप भी ऐसे बदज़ौक़ और ख़ुदग़रज़ तसव्वुर कर लिये जायेंगे, जो हर जगह और हर शख़्समे अपने 'काम' निकालनेकी फ़िक्रमें लगे रहते हैं।

मैंने यह शेर अपने परमस्नेही मित्र सुमत साहबको लिखकर भेजा तो उन्होंने अपने यहाँ दिये गये एक 'डिनर'पर एक मुहज़्ज़िब उर्दू-अदीबको उक्त शेर सुनाया तो वे सुनते ही बोले "याद आ जाये" क्या, "काम आ जाये" कहिए साहब ! सुमत साहब सुनकर चुप हो गये। उनकी नज़रोंमें डिनरका सारा मज़ा किर-किरा हो गया और वे उस व्यक्तिके बारेमें सोचते रहे कि यह भी कैसा बदज़ौक़ है, जो 'याद' जैसी लतीफ़ चीज़से ज़्यादा 'काम'को अहमियत देता है।

मज़हबी दूकानें

बहकके नशेमें मसजिदको समझा मैख़ाना।
ग़ज़ब हुआ था मेरा सर ही झुक गया होता॥
मसजिदों और ख़ानक़ाहोंका तमाशा देखकर।
मैं फिरा दिलकी तरफ़ शुक्रे-ख़ुदा करता हुआ[1]॥

ज़ाहिद

उर्दू-शायरोंने ज़ाहिदो-नासेहकी पगड़ी उछालनेमें कोई कोर-कसर नहीं रखी है। कोई उनकी पगड़ी गिरवी रखवाता है, कोई उनके मुँड़े हुए सरपर चपत जड़नेसे बाज़ नहीं आता। कोई उनसे शराबसे भीगे हुए कपड़े धुलवाना चाहता है तो कोई उनके मुँहपर शराबके कुल्ले करनेसे नहीं हिचकता। गोया शेख़ो-ज़ाहिद होलीके भड़ुए है कि हर शख़्स उन्हें बनाना ज़रूरी समझता है। 'असर' भी परम्पराके अनुसार उन्हें छेड़ते हैं। मगर इस सलीक़ेसे कि न तो उनकी दिलाज़ारी हो और न अदबका दामन हाथसे छूटने पाये।

---

[1]इसी मज़मूनपर 'असग़र' गोण्डवीने क्या बलाका शेर कहा है—

दैरो-हरम भी कूच-ए-जानाँमें आये थे।
पर शुक्र है कि बढ़ गये दामन बचाके हम॥

जाहिदको[1] एतबार है फ़िरदौसो-हूरका।
दुनिया-ए-रंगोबूका तमाशा किये बग़ैर॥
हविस[2] बहिश्तकी[3] और इश्तयाक़[3] हूरोंका।
जनाबे जाहिदे-अस्मतपनाह[4] क्या कहना॥

हुस्ने-बयान

'असर'का यह हुस्ने-बयान और जिद्दत देखिये कि रूठी हुई प्रियतमासे ही उसके मनानेका उपाय पूछ रहे हैं—

इक बात भला पूछें "किस तरह मनाओगे ?
जैसे कोई रूठा हो और तुमको मनाना है॥"

मालूम नहीं 'असर' साहबकी प्रियतमाने उन्हें मनानेका उपाय बताया या नहीं और बताया तो वे उसे अमलमें लाकर कायमाब हुए या नहीं। मगर मैंने इसे ऐसा कारगर पाया कि इसकी करिश्मा-साज़ियोंके क्या कहने ?

मैंने इसका तजुर्बा एक वयोवृद्ध आदरणीय साहित्यिक तपस्वीपर किया। बात यह थी कि उनकी पुस्तक ज्ञानपीठसे प्रकाशित होनी थी। समूची पुस्तकके प्रूफ़ उनके पास क़रीब दो वर्षसे पड़े हुए थे। व्यस्तताके कारण न स्वयं प्रूफ़ देखते थे और न प्रकाशकको वापिस ही भेजते थे। रजिस्टर्ड पत्रोंका उत्तरतक न देते थे। प्रेसके तक़ाज़ोंसे नाकमें दम था। एक रोज़ बैठे-बिठाये उक्त शेर ज़हनमें आया तो तजुर्बा कर ही डाला। उनको निम्न पत्र लिखा गया—

---

[1]तृष्णा; [2]स्वर्गकी; जन्नतकी; [3]आकांक्षा; [4]शील-चारित्रका ढोंग करनेवाले।

आदरणीय.....जी,

'असर' लखनवीका एक शेर सुनिये--

इक बात भला पूछें किस तरह मनाओगे ?
जैसे कोई रूठा है और तुमको मनाना है ।।

इसी शेरके अनुसार आपसे एक सलाह लेनी है, और वह यह कि--एक हिन्दीके बहुत ख्यातिप्राप्त लेखकके पास ज्ञानपीठके क़रीब १।। वर्षसे ७००-८०० पृष्ठके प्रूफ़ पड़े हुए हैं। वह न स्वयं पढ़ते हैं और न प्रकाशकको ही पढनेकी इजाज़त देते हैं। वह सम्पादक-लेखक-शोषित-संघ आदि संस्थाओंके संचालक हैं। उनके सम्बन्धमें कहीं भी शिकायत करना अपनी फ़ज़ीहत कराना है। किसी पत्रमें भी उनके सम्बन्धमें नही लिखा जा सकता, क्योंकि उनके प्रायः सभी पत्रोंमें लेख निकलते है। शासक-वर्ग भी हमारी पुकार नहीं सुन सकता, क्योंकि वह राज्य परिषदके भी सदस्य हैं। ऐसी स्थितिमें आप हमें एक हिन्दी-हितेषीके नाते सलाह दीजिये कि क्या करना चाहिए। यदि आप उन्हें जानते भी हों तो हमें आपसे पक्षपातकी उम्मीद नहीं।

सुना है बनारसके एक न्यायी मजिस्ट्रेटकी पत्नीने अपनी मेहतरानीको गाली दी तो उन्होंने मेहतरानीकी ओरसे गवाही दी थी, और उनकी पत्नी-पर अदालतसे जुर्माना हुआ था। सैकड़ों पत्र उनके पास अनुनय-विनयके पहुँचाये गये, किन्तु अब उन्होंने पत्रोत्तर देनेकी भी क़सम खा ली है। कृपया नेक सलाह दीजिये।

आपका

.....

शेरने जादूका काम किया। १५ रोज़के अन्दर समूचे प्रूफ़ संशोधित होकर लौट आये और उन सहृदय तपस्वीने मुक्त हृदयसे दाद भी दी।

'असर'का एक शेर और सुनाना चाहता हूँ। मगर एक गुज़रे हुए वाक़येके साथ, ताकि शेरका पूरा लुत्फ़ उठाया जा सके।

मेरे एक परिचित युवककी शादी थी। युवक महाशय एम० ए० थे और अच्छे-ख़ासे ख़ुशपोश रहते थे। बारातकी रवानगीपर इत्तफ़ाक़ देखिये कि उनके मुँहपर ततैयेने काट लिया। ससुराल पहुँचते-पहुँचते मुँह कुप्पा हो गया। मुँह, नाक, आँख सब यकसाँ नज़र आते थे। ससुरालमें अच्छे ख़ासे टेसू बनाये गये। दो रोज़ वहाँ उसी धजामें रहे। शादीका सारा मज़ा किर-किरा हो गया। तीसरे रोज़ घर पहुँचे तो फिर पहली हालतमें आ गये क्योंकि ततैयेके काटनेका वरम तीन रोज़ बाद उतर जाता है। मिलनेपर मैंने इस घटनापर अफ़सोस ज़ाहिर किया तो 'असर'-का यह शेर सुनाकर हज़रत हँसने लगे---

यह इत्तफाक़ तो देखो बहार जब आई।
हमारे जोशे-जुनूँका वही ज़माना था॥

नैतिक कलाम

'असर'की ग़ज़लोंमें इस तरहके नैतिक अशआ़र काफ़ी मिलते हैं---

तुमको है फ़िक्रे-तन-आसानी 'असर'।
ज़िंदगी क़ुर्बानियोंका नाम है॥

टुक तूफ़ानकी मौजोंसे उलझ।
नाख़ुदा कौन? सफ़ीना कैसा?

किसीके काम न आये तो आदमी क्या है?
जो अपनी फ़िक्रमें गुज़रे वोह ज़िंदगी क्या है?

हुई ख़िदमते-ख़ल्क़ जिन-जिनका मज़हब।
ख़ुदाके वही बन्दे मक़बूल निकले॥

जो दर्दसे वाक़िफ़ हैं, वोह ख़ूब समझते हैं।
राहतमें तुझे खोया, तकलीफ़में पाया है॥

प्रेरणात्मक

अकर्मण्य और कापुरुषोंको इस शायराना अन्दाज़में प्रेरणा की है कि

बात दिलमें भी उतर जाय और कहनेवाला मौलवियाना एवं नसीहताना ऐबसे भी बच जाय—

न हौसला, न तमन्ना, न वलवला, न उमंग।
यह बेहिसी[1] नहीं ऐ दिल! तो बेहिसी क्या है?
जज़बये-मंसूर[2] कैसा! बेहिसी यह है 'असर'।
दावते-दारोरसनपर[3] अंजुमन ख़ामोश है॥
अहले हिम्मतने हसूले-मुद्दआमें जान दी।
और हम बैठे हुए रोया किये तक़दीरको॥
यह सोचते ही रहे और बहार ख़त्म हुई।
कहाँ चमनमें नशेमन बने कहाँ न बने॥

(देश विजित भी हो गया और हम मोर्चेके उपयुक्त स्थानकी तलाश ही करते रहे।)

ये नेता

जिन नेताओंकी बदौलत भारत-विभाजनके वक़्त साम्प्रदायिक नरमेध-यज्ञ हुआ, उनपर 'असर'का यह शेर कितना सही चस्पाँ होता है—

अपने वोह रहनुमा हैं, कि मंज़िल तो दरकिनार।
काँटे रहेतलबमें[4] बिछाते चले गये॥

काश यह सम्प्रदायवादी 'असर'के इस शेरपर अमल करते—

क़ाफ़िलेवालो! जरसके शोरमें क्या इम्तयाज़[5]।
गूँजने दो जयके नारे और तकबीरें कहीं॥

(मन्दिरोंमें भी अज़ान हो और मसजिदोंमें भी शंख बजने लगे तो फिर इन मज़हबी दीवानोंको कौन पूछे?)

---

[1]अकर्मण्यता; [2]फाँसीपर झूलनेकी उमंग; [3]बलिदान-निमंत्रणपर; [4]लक्षके मार्गमें; [5]भेद-भाव।

भारत-विभाजनके बाद एक मुसलमान साहित्यिकको शरणार्थी कैम्पसे पाकिस्तान भेजा जाने लगा तो उसने जानेसे क़तई मना कर दिया और जब न जानेका सबब पूछा तो बोला—"मुझे मेरे वतनमें अब रहनेको स्थान न मिले तो न सही, क़ब्रके लिए तो गज़भर जमीन मिलेगी! अपने वतनमें मैं इतने दिन जिया हूँ, तो मरने अब मैं कहाँ जाऊँगा?" अब असरका एक शेर सुनिये—

यहीं पै उम्र गुज़ारी, यहीं पै मरने दो।
तुम्हारे दरके सिवा और दर मैं क्या जानूं?

और जब विश्वस्त और परखे हुए साथियोसे भी आये दिन वफ़ादारीके हलफ़ उठवाये जानेकी बात चलती रहती है तो 'असर' झल्लाकर कहते हैं—

ठुकराये जा रहे हैं ख़ुद अपने दयारमें।
और इसलिए कि भटकें न राहे-वफ़ासे हम॥

स्वतंत्र भारतमें रहे हुए मुसलमान एक घुटन-सी महसूस करते हैं। उसका आभास अगस्त १९५१में कह गये 'असर'के इन दो शेरोंमें मिलेगा।

गुलशनमें जब कहीं कोई जाए-अमाँ न हो।
फिर क्यों बहार अपनी नज़रमें ख़िज़ाँ न हो?
वोह तायरे-असीर कहाँ जाय क्या करे।
आज़ाद होके जिसको नसीब आशियाँ न हो॥

१९३९में प्रकाशित 'असर'की ग़ज़लोंके ४८० पृष्ठके संकलन 'बहारां'से और 'निगार', 'शायर', 'माहेनौ' आदि पत्रोंमें प्रकाशित अगस्त १९५१ तक कही गई ग़ज़लोंके चन्द अशआर हम अपनी पसन्दके यहाँ और दे रहे हैं—

जिधर दिल उठ्ठे उस जानिब बिला ख़ौफ़ो-ख़तर जाना।
यहाँ जिसने यह जाना उसने जीनेका हुनर जाना।
मुहब्बतमें इसीका नाम है कुछ काम कर जाना।
किसीके वास्ते जीना न जी सकना तो मर जाना॥
दिला-ज़ारीको लज्ज़तके लिए दिल रख भी लेते हैं।
सितमगर वादा कर ले फिर तिरी मर्ज़ी, मुकर जाना॥
तुम्हीं इन्साफ़से कह दो यह आना कोई आना है।
न कुछ कहना न कुछ सुनना, इधर आना उधर जाना॥

इस तरह शोर मचाती हुई आई है बहार।
बेड़ियाँ आप पहन लीं तेरे सौदाईने[1]॥
है इश्क़ जिन्हें, दिलका वोह कहना नहीं करते।
मर जाएँ मगर अर्ज़ेतमन्ना[2] नहीं करते॥
यूँ तड़पे क़ल्बे-मुज़तर[3] यूँ निकले जाने-ज़ार[4]।
ख़ंजरे-क़ातिल सदा-ए-मरहबा[5] देने लगे॥

हुए जो शकिस्ता[6]ओ-मुन्तशिर[7] यह उन्हींसे ज़ीनते-दहर[8] है।
जो हैं आइने, वोह सजे हुए हैं दुकाने-आइना साज़में॥
है हरेक साँस रुकी हुई, है हरेक नब्ज़ थमी हुई।
यह कहाँका दर्द भरा हुआ था दिले-शकिस्ताके साज़में॥
जज़्ब करले जो तजल्लीको[9] वोह दिल पैदाकर।
सहल है सीनेको दाग़ोंसे चराग़ाँ[10] करना॥
मेरे नियाजेइश्क़की[11] मजबूरियाँ न पूछ।
रोना है जिसको मनअ वोह चश्मेपुरआब[12] हूँ॥

---

[1]प्रेमोन्मत्तने; [2]अभिलाषा-प्रकट; [3]बेचैन दिल; [4]निर्बल आत्मा; [5]साधुवाद; [6-7]टूटे और बिखरे हुए; [8]संसारकी शोभा; [9]प्रकाशको; [10]दीपावली; [11]विनयपूर्ण प्रेमकी; [12]अश्रुपूर्ण नेत्र।

मेरी ज़बान और है मेरा बयान और।
है शरह[1] जिसकी दर्द, वोह ग़मकी किताब हूँ॥

बरबाद कर चुके वोह, मैं बरबाद हो चुका।
अब क्या रहा है? रोऊँ और उनको रुलाऊँ मैं॥
लाचुक नसीमे-सुबह[2] पयामे-विसाले-दोस्त[3]।
कबतक मिसाले-शमअ़ रगे-जाँ जलाऊँ मैं?

ख़ुद मेरे ज़ौक़े-असीरीने[4] मुझे रक्खा असीर।
उसने तो क़ैदे-मुहब्बतसे किया आज़ाद भी॥
किस तरह तड़पे जिसे यह डर लगा हो हमनशीं[5]!
दर्दमें शामिल न हो जाये किसीकी याद भी॥
शौक़ बढ़ता गया गुनाहोंका।
लज़्ज़ते-इनफ़आलने[6] मारा॥
जहाँ पलकोंके सायेमें हज़ारों फ़ितने सोते थे।
वहीं फ़ितरतने चुपकेसे निगाहे-शरमगीं[7] रख दी॥
बिनाए-मसजिदेनौ[8] इसलिए हुई वाइज़[9]!
वहाँसे फेरका रस्ता शराबख़ाना था॥
वोह गुज़रा इधरसे जो बेगानावार[10]।
चराग़ेलहद[11] झिलमलाने लगा॥
क्या हसरते-दीदार[12] है? हरबार यह समझा।
गोया कभी दीदार मयस्सर न हुआ था॥

---

[1]भाष्य, टीका; [2]प्रातःकालीन वायु; [3]प्रेयसी-मिलनका संदेश; [4]बन्दी होनेके चावने; [5]पड़ौसी; [6]पापोंकी शर्मके चस्केने; [7]शरमीली आँखें; [8]नवीन मसजिदका निर्माण; [9]उपदेशक; [10]बेपरवाहीसे; [11]समाधि-दीपक; [12]देखनेकी इच्छा।

जिन ख़यालातसे हो जाती है वहशत दूनी।
कुछ उन्हींसे दिले-दीवाना बहलते देखा॥

नज़रें उठीं और उठके झुकीं तमकनतके साथ।
गोया यही जवाब था मेरे सवालका॥

ऐसी तौबासे तो मयख़्वार ही रहना था 'असर'!
दिलपै इक हाथ है, इक हाथमें साग़र टूटा॥

सैयादने छेड़ा वहीं अफ़सानये-गुलशन।
जब क़ैद असीरोंने[1] किया तर्के-फ़ुग़ाँका[2]॥

मुक़द्दरने जो पहुँचाया भी उनके आस्तानेतक[3]।
यही दिल है तो हमको होश सजदेका कहाँ होगा?

हमवारियेवफ़ासे[4] उलटने लगा था दम।
ख़ुश हूँ कि तुमने क़स्द किया इम्तहानका॥

रहे दाग़ होकर, बहे ख़ून होकर।
'असर' है वह दिल कामयाबे-मुहब्बत॥

थे जो ख़फ़ा, हैं वोह ख़फ़ा आजतक।
क्यों हैं ख़फ़ा? यह न खुला आजतक॥

उसनें किस लुत्फ़से पूछा कि 'असर' कैसे हो?
बेख़ुदीका हो बुरा, कह दिया "कुछ याद नहीं"॥

पूछनेवाले तूने पूछा, लुत्फ़ेकरम, अहसान किया।
लबपर आये हर्फ़े-तमन्ना, इश्क़के यह आदाब नहीं॥

अहले दिलसे पूछो 'असर' क्या लज़्ज़त है नाकामीमें।
हाथ उठा बैठे मतलबसे, मतलब गो नायाब नहीं॥

---

[1]बन्दियोंने; [2]आह न करनेका; [3]दर्वाज़ेतक; [4]निरन्तरकी भलाईसे।

तासीर[1] पेशे-रू थी बाबेक़ुबूल[2]-वा[3] था।
माँगी गई न मुझसे माँगी हुई दुआएँ॥

रास्ते बन्द हैं, किधर जायें?
तुम हो पेशेनज़र, किधर जायें॥

'असर' तेरे कूचेसे बच-बचके निकला।
अभी होश इतना है दीवानगीमें॥

कौन 'असर' की नज़रमें समाये।
देखी हैं उसने तुम्हारी आँखें॥

हवामें कुछ धुआँ-सा उठके फ़ौरन फैल जाता है।
क़फ़समें याद जब आता है मेरा आशियाँ मुझको॥

ख़ूबिएनाज़[4] तो देखो कि उसीने न सुना।
जिसने अफ़साना बनाया मेरे अफ़सानेको॥

इसी उलझनमें उन्हें लिखा न अब तक नामा[5]।
कोई मज़मून शिकायतका रक़म[6] हो कि न हो॥

हाल पूछा था तो इस तरह न पूछा होता।
रहगई अर्ज़े-तमन्नाकी तमन्ना मुझको॥

खोये हुए-से रहना दिनको, रोते फिरना रातोंको।
जो हैं आक़िल वोह क्या समझें, इश्क़-ओ-जुनूँकी बातोंको॥

फ़ानूसके परदेमें लौ शमअ़की थर्राई।
अल्लाहरे अन्दाज़े-जाँ-सोज़िये-परवाना[7]॥

जुनूँके जोशमें अपनी बलाएँ लेता है।
कहा जो नाज़से तुमने 'असर' को 'दीवाना'॥

---

[1]हमारे इश्क़का प्रभाव उनके समक्ष था; [2]-[3]स्वीकृतिका पृष्ठ खुला हुआ था; [4]उनके गर्वकी ख़ूबी; [5]पत्र; [6]लिखना; [7]पतंगेके जल-मरनेका अन्दाज़।

ऐ हसीं! हम वाक़िफ़े-आदाबे-मजलिस हैं, मगर--
इस क़दर प्यार आ गया, मुँह तेरा तकते रह गये॥

तेरी मर्ज़ी हो जहाँ भेज दे ऐ दावरे-हश्र[1]!
मुझसे दुहराई न जायेंगी ख़तायें अपनी॥
तकिया कलाम ही सही, इश्क़से मर रहा हूँ मै।
क्यों कहो बात-बातपर "देखो भला-सा नाम है"॥
क़ासिद! पयाम उनका न कुछ देर अभी सुना।
रहने दे महवे लज़्ज़ते-ज़ौक़े-ख़बर[2] मुझे॥
जानता हूँ कि नशेमन नहीं बाक़ी सैयाद!
फिर भी इक लुत्फ़ेख़लिश[3] हसरतेपरवाज़में[4] है॥
इक रोज़ दिलमें तेरी मुहब्बत थी जागुज़ी[5]।
अब-तू-ही तू है तेरी मुहब्बत नहीं रही॥
हुआ तो हश्रके दिन उनका सामना लेकिन।
हुजूमेआममें क्या अर्ज़-मुद्दआ करते॥
वोह बेवफ़ा है कि हम बेवफ़ा, ख़ुदा जाने।
हयात ख़त्म है और उनकी आमद-आमद है॥

दूरसे गाह-गाह एक निगाह।
उसको भी मुद्दते मदीद हुई॥
दिले-ग़मदीदा काँप-काँप उठा।
यासके[6] बाद जब उमीद हुई॥

कौन कहता है कि मौत अंजाम होना चाहिए।
ज़िंदगीका-ज़िंदगी पैग़ाम होना चाहिए॥

---

[1]प्रलयके दिनका न्यायाधीश; [2]प्रेयसीके संदेशके आनेकी प्रतीक्षामें लीन; [3]चुभनका आनंद; [4]उड़नेकी अभिलाषामें; [5]आसीन; [6]निराशाके।

आग़ाज़े-मुहब्बतकी लज़्ज़त, अंजाममें पाना मुश्किल है।
जब दिलको मसोसे रहते थे, अब हाथ लगाना मुश्किल है॥

तेरी नज़र नहीं होती हरीफ़[1] शोख़ीकी।
नज़रसे आज यह किसको गिरा दिया तूने?
ख़ता मुआफ़ मेरी बेकसीपै करके नज़र।
कुछ और हौसलयेग़म बढ़ा दिया तूने॥

हाय उनकी शोख़ियाँ और शौक़की रुसवाइयाँ।
देखते थे वोह हमें हम उनको क्योंकर देखते॥

उनके आनेकी बँधी थी आस जबतक हमनशीं[2]?
सुबह हो जाती थी अक्सर जानिबेदर[3] देखते॥

ईमाँ ग़लत, उसूल ग़लत, इद्दआ[4] ग़लत।
इन्साँकी दिलदही[5] अगर इन्साँ न कर सके॥

मिज़गाँसे[6] यूँ टपक पड़ा इक अश्के-ख़ूँ 'असर'!
पटका हो जैसे जाम किसी बादाख़्वारने[7]॥

कुछ देर फ़िक्र आलमे-बालाकी छोड़ दे।
इस अंजुमनका[8] राज़[9] इसी अंजुमनमें है॥

नज़र उस हुस्नेताबाँतक[10] ब-आसानी नहीं जाती।
मगर जाकर पलटती है तो पहचानी नहीं जाती॥

हुई मुद्दत कि उसने नाज़से दामनको झटका था।
अभीतक मौजयेगुलकी[11] परेशानी नहीं जाती॥

कुछ और बढ़ गई हैं परीशाँ निगाहियाँ।
दमभर जो तेरे ग़मसे तबीयत बहल गई॥

---

[1]प्रतिद्वंद्वी; [2]पड़ोसी; [3]दरवाज़ेकी तरफ़; [4]दावा; [5]हृदयको सांत्वना; [6]पलकोंसे; [7]शराबीने; [8]महफ़िलका; [9]भेद; [10]चन्द्रमुखीतक; [11]फूलोंकी।

अल्लाहरी बदगुमानी देता हूँ जब दुआएँ।
कहता है चुपके-चुपके "इसमें भी कुछ दग़ा है"॥
यह भीगी रात और यह बरसातकी हवाएँ।
जितना भुला रहा हूँ, वह याद आ रहा है॥

न पूछ सादगिये-शौक़, मान जाता हूँ—
यह जानते हुए वादा फ़क़त बहाना है॥
चल गया उस निगाहका जादू।
कह गये दिलकी बात क्या कहिये॥
जबतक उसकी बातका मैं दूँ जवाब।
इतने अरसेमें क़यामत हो गई॥
याद करले भूलनेवाले मेरे।
अब तो बिछुड़े एक मुद्दत हो गई॥
अपनी लज्जतमें गुम हुए नग़मे।
अब ख़मोशी सुख़नसे बहतर है॥

यह भी नसीब ! माइले-पुरसिश[1] वोह जब हुए।
जो मेरा मुद्दआ था, मुझीपर अयाँ[2] न था॥
हंगामये-हस्तीकी[3] बस इतनी हक़ीक़त थी।
इक मौज थी जो उठकर फिर मिल गई दरियासे॥

हज़ार हुस्न थे काफ़िरकी सादगीमें निहाँ।
न इश्वा[4] था, न करिश्मा, फ़क़त जवानी थी॥
न देखनेकी तरह हमने ज़िन्दगी देखी।
चराग़ बुझने लगा जब तो रोशनी देखी॥
मुद्दआ पूछनेवाले ! तेरी बातोंके निसार।
अब वोह आलम है कि हसरत है न अरमाँ कोई॥

---

[1]दिलका हाल जाननेको उत्सुक; [2]प्रकट; [3]ज़िंदगीके ज़ोर-शोरकी; [4]रूपका अभिमान।

ऐसे भी लमहे गुज़रे हैं, हैरते-जमालपर।
जलवा नज़रके सामने दिलको मगर थक्कों नहीं॥

रहमपर ग़ैरके जीना कैसा?
ज़िंदगीका यह क़रीना कैसा?

नाख़ुदाका[1] कभी अहसान उठाया न गया।
मैं हरइक मौजे-बलाख़ेज़को[2] साहिल[3] समझा॥

मजलिसेवाज़से[4] इक रिन्द[5] यह कहता उट्ठा—
"क़ाफ़िर अच्छे हैं दिलाज़ार मुसलमानोंसे॥"

मज़ाक़ें-इश्क़ हो कामिल तो सूरते-शबनम।
कनारे-गुलमें रहे और पाकबाज़ रहे॥

'असर' तेरे क़ुर्बान, दिल लेनेवाले।
फिर एक बार कह दे—"किसीका इजारा"॥

अब आये बहार या न आये।
आँखोंसे लहू टपक रहा है॥

बहम[6] सर-गोशियाँ[7] होने लगीं तीमारदारोंमें[8]।
तुम अपने घर सिधारो अब यहाँ कुछ और सामाँ है॥

हम अपने हाले-परेशाँपै मुसकराये थे।
ज़माना हो गया ऐसे भी मुसकराये हुए॥

ज़बाँपै हर्फ़ेतमन्ना 'असर' न आया था।
कि वोह निगाह फिरी, क्यों फिरी? नहीं मालूम॥

चमनवालो! चमनका तुमको नज़्ज़ारा मुबारक हो।
घुटा है मेरी आँखोंमें नशेमनका धुआँ अबतक॥

---

[1]मल्लाहका; [2]भयंकर लहरको; [3]किनारा; [4]मौलवीका व्याख्यान सुनकर; [5]शराबी; [6]परस्पर; [7]कानाफूंसी; [8]परिचर्या करनेवालोंमें।

पलकतक अश्क आता था, मगर जबसे नहीं आया।
नज़रमें एक बिजली कौंदती मालूम देती है॥
वोह मग़रूर अफ़सोस इतना न समझा।
तमन्ना है इक शै[1] अलग इल्तजासे[2]॥
वोह आये हैं पुरसिशको[3] ऐ नामुरादी!
बहरहाल अब मुसकराना पड़ेगा॥
इधरसे आज वह गुज़रे तो मुँह फेरे हुए गुज़रे।
अब उनसे भी हमारी बेकसी देखी नहीं जाती॥
काश! न कहते मुद्दआ खाके निगाहका फ़रेब।
आस थी इक बँधी हुई वह भी रही-सही गई॥
बहाना मिल न जाये बिजलियोंको टूट पड़नेका।
कलेजा काँपता है आशियाँको आशियाँ कहते॥
किससे कहिये और क्या कहिये सुननेवाला कोई नहीं।
कुछ घुट-घुटकर देख लिया कुछ शोर मचाकर देखेंगे॥
हरचन्द उसको मुनफ़इलेजौर[4] कर दिया।
दिलपर जो गुज़री बाद अज़ां कुछ न पूछिये॥
उभर न बहरे-जहाँमें[5] हुबाबके[6] मानिन्द।
जो तहनशीं[7] हुआ क़तरा दुरेयगाना[8] हुआ॥
भूलता ही नहीं वह नाज़से कहना तेरा—
"ख़ैरसे इन दिनों कुछ कम तो है सौदा तेरा"॥
बेहोशियोंमें अहदेजवानी बसर हुआ।
पीरी चली है उम्रेरवाँके सुराग़में॥
ग़म नहीं तो लज़्ज़ते-शादी नहीं।
बे असीरी लुत्फ़े-आज़ादी नहीं॥

---

[1]चीज़; [2]माँगनेसे; [3]हाल पूछनेको; [4]अत्याचारोंसे शरमिंदा; [5]संसार- सागरमें; [6]बुलबुलेकी; [7]दरियाके नीचे; [8]अनमोल मोती।

जहाँ हो दुरंगी बहारोख़िज़ांकी।
चमन वोह नहीं आशियानेके क़ाबिल॥
नामाबरको मैं क्या पता बतलाऊँ?
ख़ैरसे घर नहीं उनका कोई॥
पूछनेवाले दर्दे-पिनहाँके।
अपने चेहरेका रंग भी देखा?
याद चमनकी जाये क्या? चैन क़फ़समें आये क्या?
हमसे छुटा जब आशियाँ दिन थे वही बहारके॥
उसकी बेदादका नहीं शिकवा।
मेरा ही शौक़ मेरा क़ातिल था॥
नज़अमें जब हम सुनेंगे तेरी बातें प्यारकी।
दिल ठहरता जायगा और दम निकलता जायगा॥
शाहिदे-सुबहने हँसकर जो ज़रा देख लिया।
कोहो-सेहरापै फटा पड़ता है जोबन कैसा?
मिटे हैं किसपै किसीको गुमाँ नहीं होता।
मज़ाक़े-इश्क़ हमारा अयाँ नहीं होता॥
बेताबियोंने आह गुनहगार कर दिया।
दिलकी लगीसे उनको ख़बरदार कर दिया॥
तुझसे कहते थे कि ऐ दिल! हिज्रमें आँसू न पी।
क़तरा-क़तरा जमा होकर मौजज़न दरिया हुआ॥
मुझे हरख़ाकके ज़र्रेपै यह लिक्खा नज़र आया—
"मुसाफ़िर हूँ अदमका और फ़ना है कारवाँ मेरा"॥
बहरे-हस्तीसे सुबकबार गुज़रना सीखो।
तुमको जीना नहीं आता है तो मरना सीखो॥
माजराए-शबेग़म दिलको सँभालूँ तो कहूँ।
ठहरो-ठहरो मैं ज़रा होशमें आलूँ तो कहूँ॥

तासीर दर्देदिलमें या रब! कहाँकी भर दी।
उसने भी आज आख़िर चुपकेसे आह कर दी॥
आन-की-आन उनको देखा था।
जबसे थर्रा रही है नब्ज़े-निगाह॥
वोह कामकर, बुलन्द हो जिससे मज़ाक़े-ज़ीस्त।
दिन ज़िंदगीके गिनते नहीं माहो-सालसे॥
महशरसे यूँ चले हैं गुनहगारे जुर्मे-इश्क़।
गोया इन्हींमें बँट गया जितना ग़रूर था॥
हायरे तेरी जुस्तजूका फ़रेब।
हर क़दमपर गुमाने-मंज़िल था॥
नहाकर निखरना तेरा याद है।
पसीनेमें डूबा गुलाब आगया॥
उठे बादाकश झूमकर नाराज़न।
दमेवाज़ नामेशराब आगया॥
पूछते क्या हो कि रातें हिज्रकी क्योंकर कटीं?
ख़ुद मुझे अहसास अपने हालका मुश्किल हुआ॥
शोख़ीसे उसने बातका लहजा बदल दिया।
इक़रार लबतक आते ही इनकार हो गया॥
है उनका शौक़ बर्क़के परदेमें मुज़तरब।
मूसा समझ रहे हैं कि दीदार हो गया॥
वादेके दिन गुज़र गये फिर भी है मुन्तज़िर।
कुछ हमको इन्तज़ारका आज़ार हो गया॥
हाय वोह दिल जिसके अरमाँ सफ़ेमातम हो गये।
हाय वोह महफ़िल ग़मोंने जिसको बरहम कर दिया॥
चन्द क़िस्में जुनूंकी हैं नासेह!
तुमको सौदाये-वाज़ो-पिन्द हुआ॥

बेख़ुदी परदादारे ग़फ़लत है।
गम उठानेका हौसला न रहा॥
आबले दिलके बहे यूँ फूटकर ।
जिस तरह दरियामें उठ-उठकर हुबाब॥
तुम जब उसे सुनोगे सर देरतक धुनोगे।
पुर दर्द इस क़दर है, अफ़सानये-मुहब्बत॥
आह किससे कहें कि हम क्या थे?
सब यही देखते हैं क्या हैं हम॥
दमे-आख़िर भी आप क्यों आये?
जाइये-जाइये ख़फ़ा हैं हम।
अब करमकी भी दिलको ताब नहीं।
किस तरह कुश्तये-जफ़ा हैं हम॥
सख़्तियाँ झेलके तकमीले-मुहब्बत क्या ख़ूब?
इश्क़बाज़ी है 'असर' पेशयेमजदूर नहीं॥
तायरे-जाँको परे परवाज़ है यह क़ैदे-तन।
हम लिये फिरते हैं अपने साथ जिन्दाँ, क्या करें?
उसकी रहमतको हया आने लगी।
किस क़दर आलूदये-तक़सीर हूँ॥
बिजली बनेंगे ख़ानये-सैयादके लिए।
तिनके बचे हुए जो मेरे आशियाँके हैं॥
बेरब्त होगई थी इबारत कहीं-कहीं।
काफ़िरने नक़ल की वही ख़तके जवाबमें॥
पजमुर्दा होके फूल गिरा शाख़से तो क्या?
वोह मौत है हसीन जो आये शबाबमें॥
हंगामये-फ़िराक़में थी दिलकी क्या बिसात।
इक आबला था फूट गया, इज़्तराबमें॥

ख़बर अपनी नहीं इबरतके क़ाबिल रंगे-गुलशन है।
हँसो आती है फूलोंको जो ग़ुंचे मुसकराते हैं॥
रहा है साबक़ा ग़मसे यहाँतक हमनशीं! मुझको।
ख़ुशीके नामसे भी अश्क आँखोंमें भर आते हैं॥
गुज़ारी उम्र सारी राज़े-हस्तीके समझनेमें।
परस्तिश तेरी करता, इतनी फ़ुरसत थी कहाँ मुझको?
वोह तड़पता नहीं कभी ज़ालिम!
जिसने भरपूर चोट खाई है॥
इस सादगीपै जान मेरी क्यों फ़िदा न हो।
जब दिल दुखाके तू कहे—"अच्छा ख़फ़ा न हो"॥
जिस दरपै मैं गया यह सदा आई—"दूर-दूर"।
ऐसा भी कोई तेरी नज़रसे गिरा न हो॥
क्या-क्या दुआएँ माँगते हैं सब मगर 'असर'!
अपनी यही दुआ है, कोई मुद्दआ न हो॥
ऐ महवेग़ौक़ आये भी वोह और चले गये।
क्यों तूल दे रहा है अबस इन्तज़ारको॥
बूए-वफ़ा न फूटे कहीं, उनको ख़ौफ़ है।
फूलोंसे ढक रहे हैं, हमारे मज़ारको॥
रोइये यासपर उस कुश्तयेग़मकी कि जिसे।
जौक़े-फ़रियाद न हो, हसरते-बेदाद न हो॥
उसकी रहमतने कहा—"जो माँगना हो माँगले"।
मेरी ग़ैरत बोल उठी "तू ही दिले-साइलमें है"॥
दीदयेगुल थे सुबहको नमनाक।
जो भी हँसता है बहुत रोता है॥
माना ख़िरामेनाज़ भी दिलकश है इक अदा।
हम तुमको देखते कि क़यामतको देखते॥

मैं इधर चुप हूँ, वोह उधर चुप है।
इक तमाशा हुई हया न हुई॥
उसकी रहमतको नाज़ हो जिसपर।
तुझसे ऐसी 'असर' ख़ता न हुई॥

इतना तो सोच ज़ालिम! जौरोजफ़ासे पहले।
यह रस्म दोस्तीकी दुनियासे उठ न जाये॥

ज़ाहिद इधर खड़े हैं, गुनहगार उस तरफ़।
देखें तेरे करमका सज़ावार कौन है॥

कोई इस गुलशने-हस्तीमें क्या महवेतमाशा हो।
चटकनेमें कलीके नज़अ़का आलम निकलता है॥

होश मेरे उड़ गये जब यह सुना—
"हश्र है, दीदार उनका आम है"॥
यह महवियतका आलम है किसीसे भी मुख़ातिब हूँ।
ज़बाँपर बेतहाशा आप ही का नाम आता है॥

कोहो-सहरामें जहाँ बैठके मैं रोया था।
उन मुक़ामोंसे सुना जाता है दरिया निकले॥

अदा है याद तेरे मुसकराके आनेकी।
और उसके बाद वोह दामन छुड़ाके जानेकी॥
जहाँपै रास्ता भूला है बार-हा ज़ाहिद।
वहींसे राह मुड़ी है शराबख़ानेकी॥

सिसकते रहे जाँ-ब-लब कैसे-कैसे?
अयादतको आते रहे आनेवाले॥

फिर उसके बाद वोह शरमाये और बहुत शरमाय।
गदा समझके सुना तो किये सदा मेरी॥

तुम्हारा हुस्न आराइश तुम्हारी सादगी जेवर।
तुम्हें कोई जरूरत ही नहीं बनने सँवरनेकी॥

यूँ गुजरते हो कभी गोया शनासाई न थी।
दिल-नवाजीके वोह सब अगले तरीक़े क्या हुए॥

मुझको अपनी ख़बर नहीं ऐ दोस्त!
हाय! किस वक़्तमें तू आया है॥
है तसव्वुरकी भी निराली शान।
जो हैं नादीदा उसको पाया है॥

झोलियाँ भरती है क्यों बादेसहर।
फूल किसकी क़ब्रपर बरसायगी॥

२७ जनवरी १९५२ ई०]

शेर-ओ-सुख़न

भाग ३-४

[मौजूदा दौरके ग़ज़ल-गो-शायरे-आज़म]

पुरातन शायरीका कायाकल्प और लोकोपयोगी भावोंका समावेश,
पवित्र प्रेमकी आराधना, नारीका सम्मान और १९०१ से
१९५३ ई० तककी घटनाओंका ग़ज़लपर प्रभाव

तीसरा भाग

[देहलवी रंगके सर्वश्रेष्ठ शायर]

१. 'शाद' अज़ीमाबादी
२. अमरनाथ 'साहिर'
३. दत्तात्रिय 'कैफ़ी'
४. 'आज़ाद' अन्सारी
५. 'हसरत' मोहानी
६. 'फ़ानी' बदायूनी
७. 'वहशत' कलकतवी
८. 'यगाना' चंगेज़ी
९. 'अमजद' हैदराबादी
१०. 'आसी' ग़ाज़ीपुरी
११. 'असग़र' गोण्डवी
१२. 'जिगर' मुरादाबादी
१३. अलीअख्तर 'अख्तर'
१४. रज़्म रदोलवी

चौथा भाग

[दाग़ स्कूलके उस्ताद शायर]

१. 'सीमाब' अकबराबादी
२. लम्भूराम 'जोश'
३. 'नातिक़' गुलाठवी
४. नवाब 'साइल'
५. 'आगाशाइर' क़िज़लबाश
६. 'बेख़ुद' देहलवी
७. 'नूह' नारवी
८. 'अहसन' माहरहरवी
९. 'नसीम' भरतपुरी
१०. 'बेख़ुद' बदायूनी
११. 'आसी' उदनी
१२. 'शाग़ल' देहलवी
१३. 'अहसान' रामपुरी आदि ३१
शायर

इनके अतिरिक्त प्रगतिशील, उदीयमान अनेक शायरों और शायराओंका कलाम

मूल्य प्रत्येक भागका तीन रुपया

[प्रेस में]

शायरीके नये दौर

१९२० ई० से १९४० ई० तककी क्रान्तिकारी शायरी

इन्क़लाबी दौर

पुरातन शायरीका काया-कल्प, नवीन शायरीका जन्म, सामाजिक, धार्मिक राजनैतिक, ऐतिहासिक, पौराणिक, आर्थिक और वास्तविक नज़्मिया शायरीका विकास। बंग-भंग, प्रथम विश्वव्यापी युद्ध, रौलट ऐक्ट, जालियानवाला-हत्याकाण्ड, सत्याग्रह, असहयोग, ख़िलाफ़त, शुद्धि, तबलीग़ किसान–मज़दूर आदि आन्दोलन और उर्दू-शायरी, नज़्म आन्दोलनका विस्तृत इतिहास, विवेचन एवं आलोचना

इस दौरके ख्यातिप्राप्त युगान्तरकारी कुछ शायर

१. 'जोश' मलीहाबादी
२. तिलोकचन्द 'महरूम'
३. 'ताजवर' नजीबाबादी
४. आनन्दनारायण मुल्ला
५. 'रविश' सिद्दीक़ी
६. विश्वेश्वरप्रसाद 'मुनव्वर'
७. सुखदेवप्रसाद 'बिस्मिल'
८. हरिश्चन्द्र 'अख्तर'
९. 'हफ़ीज़' जालन्धरी
१०. 'सागर' निज़ामी
११. 'अलम' मुज़फ़्फ़रनगरी
१२. 'माहिर' उलक़ादिरी
१३. 'शफ़ीक' जौनपुरी
१४. 'अफ़सर' मेरठी
१५. गोपीनाथ 'अमन'
१६. 'अहमक़' फ़फ़ून्दवी
१७. रघुपति सहाय 'फ़िराक़'
१८. 'अहसान' बिन दानिश
१९. 'फ़रहत' कानपुरी
२०. मोहनसिंह दीवाना आदि

[प्रेस में]

शायरीके नये मोड़

[१९४१ से १९५४ ई० तक]

प्रगतिशील युग

उर्दू शायरीकी नयी करवटें, अभूतपूर्व परिवर्त्तन, द्वितीय महा-युद्धकी—राशनिंग ब्लेक मारकेटिंग कण्ट्रोलिंग आदि—विभीषिकाओंका उर्दू-शायरीपर प्रभाव, किसान-मज़दूर, पूँजीपति, भारत-विभाजन, स्वराज्य, काँग्रेसी-शासन आदि पर नवयुवक शायरोंका दृष्टिकोण

इस युगके कुछ प्रतिनिधि शायर

१. फ़ैज़ अहमद 'फ़ैज़'
२. सरदार जाफ़िरी
३. 'मजाज़' लखनवी
४. 'जज्बी'
५. 'एजाज़' सिद्दीक़ी
६. 'निहाल' सेवाहरवी
७. बालमुकुन्द 'अर्श'
८. जगन्नाथ 'आज़ाद'
९. नरेशकुमार 'शाद'
१०. 'फ़िक्र' तोसवी
११. मनहर लाल 'ज़िया'
१२. अख्तर' अन्सारी
१३. अहमद 'नदीम' क़ासिमी
१४. 'सलाम' मछली शहरी
१५. 'साहिर' लुधियानवी
१६. 'शौक़त' थानवी आदि

ज्ञानपीठके सुरुचिपूर्ण हिन्दी प्रकाशन

श्री० बनारसीदास चतुर्वेदी

हमारे आराध्य ३)
संस्मरण ३)
रेखाचित्र ४)

श्री० अयोध्याप्रसाद गोयलीय

शेरोशायरी ८)
शेरोसुखन [चारों भाग] १७)
गहरे पानी पैठ २॥)
जैन-जागरणके अग्रदूत ५)

श्री० कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर

आकाशके तारे : धरतीके फूल २)
जिन्दगी मुसकराई ४)

श्री० मुनि कान्तिसागर

खण्डहरोंका वैभव ६)
खोजकी पगडंडियाँ ४)

डॉ० रामकुमार वर्मा

रजतरश्मि २॥)

श्री० विष्णु प्रभाकर

संघर्षके बाद ३)

श्री० राजेन्द्र यादव

खेल-खिलौने २॥)

श्री० मधुकर

भारतीय विचारधारा २)

श्री० सम्पूर्णानन्द जी

हिन्दू विवाहमें कन्या-दानका स्थान १)

श्री० हरिवंशराय बच्चन

मिलनयामिनी ४)

श्री० अनूप शर्मा

वर्द्धमान ६)

श्री० शान्तिप्रिय द्विवेदी

पथचिह्न २)

श्री० वीरेन्द्रकुमार एम० ए०

मुक्तिदूत ५)

श्री० रामगोविन्द त्रिवेदी

वैदिक साहित्य ६)

श्री० नेमिचन्द ज्योतिषाचार्य

भारतीय ज्योतिष ६)

डॉ० जगदीशचन्द्र चतुर्वेदी

दो हज़ार वर्ष पुरानी कहानियाँ ३)

श्री० नारायणप्रसाद जैन

ज्ञानगंगा ६)

श्रीमती शान्ति एम० ए०

पंचप्रदीप [गीत] २)

श्री० 'तन्मय' बुखारिया

मेरे बापू २॥)

ज्ञानपीठके सांस्कृतिक प्रकाशन

१. महाबन्ध महाधवल सिद्धान्त [भाग १]	१२)
२. महाबन्ध „ „ [भाग २]	११)
३. मदन पराजय	८)
४. कन्नड़ प्रान्तीय ताडपत्रीय ग्रंथसूची	१३)
५. न्यायविनिश्चयविवरण [प्रथम भाग]	१५)
६. तत्त्वार्थवृत्ति [हिन्दीसार सहित]	१६)
७. सभाष्य रत्नमंजूषा	२)
८. नाममाला सभाष्य	३॥)
९. केवलज्ञानप्रश्नचूड़ामणि	४)
१०. आदिपुराण [प्रथम भाग]	१०)
११. आदिपुराण [द्वितीय भाग]	१०)
१२. वसुनन्दि-श्रावकाचार	५)
१३. तत्त्वार्थवार्तिक [राजवार्तिक] भाग १	१२)
१४. समयसार [अंग्रेजी]	८)
१५. थिरूकुरल [तामिल भाषाका पंचमवेद]	५)
१६. जातक [प्रथम भाग] मूल अट्ठकथा सहित	९)
१७. आधुनिक जैनकवि	३॥)
१८. जैन शासन [द्वितीय संस्करण]	३)
१९. हिन्दी जैन साहित्यका संक्षिप्त इतिहास	२॥=)
२०. कुन्दकुन्दाचार्यके तीन रत्न	२)

भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस ५